द-प्रकाशन—५

ओस की बूँदें

[मौलिक सामाजिक उपन्यास]

लेखक

'भीगी पलकें', 'अनारकली', 'अपना देश', 'आसमाँ'

आदि के रचयिता

श्री "प्रह्लाद" शर्मा-विद्यालंकार

अरावली प्रकाशन

वड़ा वाजार, दरभंगा।

प्रकाशक

अरावली प्रकाशन

बड़ा [illegible]

दीप मालिका सम्वत् २०१३

प्रथम संस्करण

नवम्बर १९५६

मूल्य ४)

वितरक

ग्रन्थालय-दरभंगा

सुदर्शन प्रेस, दरभंगा में छपवाकर लेखक द्वारा प्रकाशित ।

ओ

स

की

बूँ

दें

विलोड़ित [illegible] के चक्र से यह तक्र मानस का ।
बदलता दम्भ और छल छद्म में क्यों रूप इस रस का ॥

कहाँ मिलता अरे, नवनीत का लघु अंश जीवन में ।
पिघलता बरफ सा यह तन नहीं है हाय रे, बस का ॥

सुरंगी हँसिनी हे! चीर में भी घुल गया पानी ।
विहंगी व्योम की हे ! स्वप्न की नगरी न पहचानी ॥

"प्रह्लाद"

लेखक की आगामी कृतियाँ

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर

अरावली

पृष्ठ ३५० (अनुमानित) मूल्य ५)

और "ओस की बूँदें" के चरण चिन्हों पर

वासना

पृष्ठ–३७५ (अनुमानित) मूल्य ५)

[दोनों पुस्तकें प्रेस में]

दोनों का अग्रिम मूल्य ७॥) रुपये

प्रह्लाद विद्यालंकार का सुप्रसिद्ध उपन्यास

भींगी पलकें

का संशोधित संस्करण २॥) रुपये में

ग्रन्थालय–दरभङ्गा

से खरीदें।

उस अभागी "अर्चना" को ही—
जिसे माँ-बाप ने किसी और नाम से सम्बोधित किया,
अपने कलेजे के ये आँसू—
ये ओस की बूँदें—
अर्पित कर रहा हूँ।

दीप प्यार का जला न पर, जल रही प्राण की बाती
नाजुक दिल गल सका न पर, गल रही शिला की छाती

देहरादून की यह सुहानी शाम है। हिमालय के आग़ोश में युग युग का संचित सौन्दर्य प्रकृति खुले हाथों यहाँ लुटा चुकी है। मानव ने स्वार्थ लिप्सा से लिप्त वासना को बहलाने का जो कृत्रिम जाल बिछाया है, सो अलग ही अपनी आभा देदिप्यमान करता है। निसर्ग और नर के वैभव से परिपूर्ण इसी नगर में अविनाश ने जीवन के स्वप्न, नगराज के उत्तुंग शिखरों से भी अधिक उच्चस्थल पर अवस्थित किये हैं।

धन कुबेर सेठ हरदेव लाल का यह इकलौता बेटा, दिल्ली से देहरादून ऐश्वर्य की अभिवृद्धि हेतु नहीं, सरस्वती की उपासना हेतु, कई साल से तपस्वी सा ही जीवन बिता रहा था, भला हो पिता का, जिन्होंने प्राणों से भी अधिक प्रिय पुत्र के शुष्क जीवन में, ओस की बूँदों के छींटों स्वरूप, आज से कई साल पूर्व अर्चना को अविनाश ही की संरक्षता में, डॉक्टरी पढ़ने के लिये पठाया। न जाने कैसे अविनाश को कभी की यह खबर हो चुकी कि अर्चना उसके भावी जीवन में पत्नी

स्वरूप सहयात्री रहेगी, सो वह एम० ए० की परीक्षा देते देते अर्चना में आवश्यकता से अधिक रूचि लेने लगा।

और यह अर्चना, लखनऊ के करोड़पति सेठ मोती लाल की एकलौती बेटी है। दिल्ली के सेठ हरदेव बाबू और मोती बाबू पुराने मित्र हैं। अतः बेटा-बेटी की शादी के लिये दोनों का वचनबद्ध होना असंगत तो नहीं था, पर अर्चना का बचपन से यह विचार कि नारी पुरुष की भोग्या नहीं स्वआश्रिता सबल शक्ति है, सेठ मोती लाल के अंतर में शंका को जन्म दिये था कि कहीं लड़की आजन्म अविवाहिता रहने का व्रत न ले बैठे। अतः दोनों मित्रों के गंभीर विचारोपरान्त ही अर्चना अविनाश की देख भाल में डॉक्टरी पढ़ने देहरादून भेजी गई थी। यहाँ आकर उसकी उछृङ्खल प्रवृति ने संयत और गभीर रहना कब से सीखा, यह तो ठीक से ज्ञात नहीं, पर अब अविनाश-अर्चना, दूध-पानी से घुले मिले हैं। दोनों के अलग अलग अस्तित्व की कल्पना कभी कोई कर भी सका, यह नियंता ही जाने।

आज जब दोनों संध्या की नीरव बेला में झरने के किनारे कल कल प्रवाह में पैर डुबो शान्त बैठे, तो अर्चना ही बोली— अवि रे,..... मालूम पड़ता है जैसे बड़ा सा पत्थर पीठ पर से उतर गया। वस्तुतः ये दिन तो घर लौटने की खुशी को शीघ्र उपभोग करने के इन्तजार में बड़ी कठिनाई से बीते हैं .

जी तो करता था......परीक्षा अधूरी ही छोड़ तेरे साथ चल पड़ूँ ....पर डर तेरा ही था......जो ऐसा न कर सकी।"

सुनकर अवि हँस दिया। जल दर्पण में अर्चना की सलौनी छवि को लक्ष्य कर उसने कहा—"चलो......अवि को इतना संतोष तो हुआ कि तू मुझ से वस्तुतः डरती है......अब कभी भय दिखाकर मनोवांछित कार्य कराने में सोचना न पड़ेगा... पर अभी तू मन रखने के लिये तो ऐसा नहीं कह रही न ?"

सुनकर अर्चना भी हँसे बिना न रह सकी। तनिक भौंहें तिरछी कर उसने व्यंग्य के लहजे में कहा—"अवि तुमने कहीं पढ़ा है न......कि मनुष्य स्वार्थ का पुतला है......मैंने वास्तव में तुम्हें यहाँ रोक रखने के लिये ही तुम्हारी बातें मान ली थी, वरना तो तुम्हें सताने में आनन्द ही मिलता......अब इतना तो हुआ कि लखनऊ तक की नीरस यात्रा तुम्हें चिढ़ाने में खुशी खुशी कट जायगी...नहीं तो, अकेले सफर में जी घुट जाता।"

अवि अर्चना के व्यंग्य को ताड़ गया। शरारत के लहजे में बोला—"स्वार्थ की देवी......कभी परमार्थ की बात भी सोचोगी तो अधिक न बिगड़ेगा......मुझे तो कल दिल्ली लौटना ही है...बाबूजी का तार आया पड़ा है...सच मानो तो कह दूँ कि तुम्हारे सहवास के लोभ से ही मैं भी रुका था वरना तो दिल्ली का रास्ता अभी भी भूला नहीं हूँ... यों न चलोगी तो ताड़ना भी देना अनुचित न समझूँगा......

अवसर मिला तो ट्रेन में ही कुछ मांगूगा...दोगी तो नहीं ही... ऐसा पहले ही से विश्वास है... ।"

"फिर जानते हुए भी अदेय की याचना करना ठीक है क्या ?" अर्चना ने धीमे स्वर में पूछा - "शासन का अधिकार मन ने जो अनजाने ही तुम्हें प्रदान कर रखा है उसका दुरुपयोग तो नहीं करोगे न... ।"

सुनकर अवि खिलखिलाकर हँस पड़ा। झिलमिल तारे उसके हास्य से आसमान की नीली छाती पर बिखरे थे, या निसर्ग ने स्वयं ही अपने रात्रि शृङ्गार की झलक उपस्थित की, इसमें अन्तर ठीक से न जान पड़ा। पर अवि ने जब कहा— "समर्पण की भावना नारी में जन्मजात है, इसका विरोध व्यक्त" करते हुए भी तुमने अवि के पुरुष को स्वयं पर शासन करने की स्वीकृति—क्या बिना चिन्तन के ही दी थी ? अगर हाँ कहोगी तो विश्वास रखो, अधिकार का दुरुपयोग न करूँगा... पर साथ ही तुम्हारी 'ना' भी अवि के किसी जन्म के अतृप्त अरमान को पूरा करने का गौरव धारण कर लेगी...ऐसा भी मत सोचना। मैं परिस्थिति और पात्र देखकर ही याचना करना जानता हूँ ...फिर ऐसे में कोई भी वस्तु दाता के लिये अदेय नहीं रहती—ऐसा मुझे विश्वास है... ।" अर्चना विभोर होती सी जल में बड़ा सा ढेला फेंकती हुई बोली —इतनी लम्बी भूमिका बाँधने से अच्छा है सीधे ही कह दो ...कौन सी

वस्तु अदेय है जिसके लिये आमुख, मूल से भी अधिक बढ़ा रहे हो...साथ तो चलूँगी ही फिर अभी भी कहना चाहो तो परिस्थिति प्रतिकूल नहीं।"

"ना...ना इतना शीघ्र बताने का नहीं...अनुमान के चक्कर में भटको... मुझे आनन्द ही मिलेगा" कहकर अवि उठ चला। अर्चना सोचने की मुद्रा में ही पीछे हो ली।

ऊँची पगडन्डी पर छोटे शिला खण्ड से छेड़ खानी कर चलते हुए अवि को अर्चना ने टोका—

"कलका चलना निश्चित है न...?...तुम भी लखनऊ ठहरोगे न...पिताजी ने बहुत आग्रह किया है .. ।

"मैं वहाँ रूकने वाला नहीं"—अवि ने कहा—"कहते हैं अपनी सरहद में गीदड़ भी शेर सा खूँखार बन जाता है... फिर वहाँ मेरे किये अपराधों का बदला लोगी तो...मेरा क्या हाल होगा ? ना बाबा...मैं नहीं जाने का।"...सुनकर अर्चना हँस पड़ी—"मुझे पल भर भी कभी अपने पर हामी होने का अवसर दिया है क्या...? अवि रे, सचमुच वह बड़े भाग का दिन होगा...जब तुम अर्चना की सत्ता मान अपने को तनिक देर भी हीन अनुभव कर सकोगे...।" अबकी अवि भी चलते-चलते पीछे घूमकर खड़ा हो गया अर्चना के मुख की गम्भीरता से चिंतन कर शायद वह अनुमान लगाने लगा कि वस्तुतः अर्चना सत्ता की भूखी है या फिर यों ही उसने कह दिया।

अवि सदा देहरादून में अर्चना पर शासन करता आया हैं। न जाने किस तरह अर्चना का स्वच्छन्द नारीत्व अवि के पुरुष की पोश मानने लग गया, इस पर अर्ची को भी कभी-कभी कम आश्चर्य नहीं होता।

अवि ने जब देखा कि अर्चना निर्विकार भाव से प्रश्न कर गई है। इसलिये विशेष ऊहापोह किये बिना ही उसने कह दिया—"अर्ची...यों तो नारी को सदा ही पुरुष के सामने याचना के लिये हाथ पसारना पड़ा है...पर सच जान . मैंने अभी तक यह कभी नहीं सोचा कि किसी दिन मेरा पुरुष दाता के रूप में भी अर्चना के सम्मुख उपस्थित हो सकेगा।...शासन सत्ता का अधिकार जो अनजाने ही मिल गया है, न जाने इसका गौरव मुझे क्यों नहीं हुआ ..अगर स्वीकृति दो तो ऐसा कह दूँ कि शायद तुम मुझे भ्रान्ति में रखना अधिक पसन्द करती हो... वरना तो स्वभावानुसार मुझे जो तुम से नहीं मिलता...वह मैं, ताड़ना और अधिकार के बल पर प्राप्त नहीं कर लेता क्या? लेकिन न जाने क्यों बल का प्रयोग मुझे समीचीन नहीं जान पड़ता। जब जब हृदय ने साहस का संबल ले मनोगत भावों को व्यक्त करने का प्रयास किया . अंतर के, जाने किस कोने से आवाज आई कि पगले...अर्चना का नारीत्व सीमा में आबद्ध नहीं होगा रे...वह तो यों ही सागर की लहरों के सदृश्य... किसी अनजान साहिल से पल भर टकरायेगा और फिर

उन्मुक्त पंछी सा दूर कहीं आगे बढ़ जायेगा...।"

सुनकर चलती हुई अर्चना पल भर रुकी। उसे अवि आज बिल्कुल निःसहाय, नादान बच्चा सा जान पड़ा। फिर तनिक हास्य की धुमिल रेखा भी यह जानकर बिखरी, कि ऊपर से इतना भारी जान पड़ने वाला अवि...अन्दर से बिलकुल हल्का है। मन तो हुआ कि उसकी सारी उलझने दूर कर अर्चना यह कह दे—ले अवि ..अब से विश्वास कर ले...कि अर्चना केवल अवि की भोग्या है...उसका जन्म ही इसीलिये हुआ है रे...कि वह अपने को अवि में तिरोहित कर दे—पर न जाने क्यों वह ऐसा कह न सकी। जो कुछ बोली...वो तो इतना ही—"अवि रे···नारी अवगुण्ठन में ही रोचक जान पड़ती है ..मैंने इस सिद्धान्त का पालन अनजाने ही किया हो, तो तुम इसे भ्रान्ति क्यों कर कहोगे ?...अगर मैं ऐसा कहूँ कि तुम्हें स्वयं पर ही विश्वास नहीं...और तुम उसको दृढ़ करने के लिये अनजाने ही याचना करते हो कि अर्चा, लज्जा को भी अपने साथ लेकर तुम से न मिले, तो क्या ऐसा संगत है ?... मन का अध्ययन करो...और उससे जब प्रेरणा मिल जाय तो आना मेरे पास, कह दूँगी—अर्चना ने तुम्हारी सत्ता मान ली रे···।" अवि विभोर होता सा अर्चना के दोनों बाजू सहसा ही पकड़ बोल गया— निहाल हो गया अर्ची...बस अब मुझे कुछ नहीं मांगना है। आज तो बिन मांगे ही सब कुछ मिल

गया, युग युग से उसी की तो याचना थी ।"

अर्चना अवि के भाव को लक्ष्य कर गद्गद् होती हुई बोली—"आने जाने वालों का तो विचार करो ..मैं कहीं भागी नहीं जा रही, जो तुमने इतना कसकर पकड़ा है...और जान रखो... अर्चना जब जायेगी ..हजार मनौतियाँ करने पर भी लौटेगी नहीं.. फिर अभी डरते क्यों हो ...?" अवि सहमकर हाथ छोड़ता हुआ बोला—"जी तो चाहता था कि...अब तुम्हारी एक न सुनूँ ...पर लोगों का खयाल कर छोड़े देता हूँ...चलो, कल तो फिर ट्रेन में खुलकर बातें करने का अवसर मिलेगा ही......।"

और अवि अर्चना ने शीघ्रता से पैर बढ़ाये ।

*　　*　　*

दूसरे दिन दोपहर की गाड़ी से अवि-अर्चना देहरादून से रवाना हो गये । फर्स्ट क्लास के निर्जन कम्पार्टमेंट में अवि ने अर्चना से क्या याचना की, यह तो ज्ञात नहीं हुआ, पर वे अभी निद्रा निमग्न अवश्य थे ।

उधर दूर क्षितिज का गवाक्ष खोल, रजनी अभिसारिका का सौन्दर्य लूटने के लिये, छलिये भ्रमर सा प्रभात झाँकना चाहता था और इधर बगल के बर्थ पर सोयी अर्चना, सहसा ट्रेन की रफ्तार में सुस्ती का अनुभव कर, चौंक कर उठी । शायद लखनऊ आ रहा था ।

समीप के बर्थ पर ही तो अविनाश भी सोया था। अर्चना ने नींद की सब्ज परी में विभोर हो घुले मिले अवि को झक-झोरा—

"उठोगे नहीं अवि...लखनऊ आ रहा है......।"

पर अवि अभी भी सुध बुध भूले सोया ही रहा। परवाने नन्हे नन्हे पंख फड़फड़ा, शायद अवि को आग का प्रतीक जान कर ही उस पर मड़रा रहे थे। अब भला अर्चना उन नादानों को क्या समझाती कि पुरुष में आग विद्यमान अवश्य है...पर वह भड़कती कभी कभी ही है, और जिस दिन भड़क जाती है... किसी का अस्तित्व भष्मसात होता ही है—

अवि जब नहीं उठा तो उसने और भी झकझोरते हुए कहा—"उठते हो कि पानी लाऊँ ..यह भी खबर नहीं कि यह साहिल से बिछुड़ने की बेला है...।"

अर्चना ने तो धीरे ही से कहा था, पर ज्ञात नहीं—अवि जाग ही रहा था क्या, जो उसने यह सब सुनकर अनजाने ही जागृत हो अर्चना के झुके हुए गले में बाहें डाल दी। अचानक ही वह सिहर उठी। सारे बदन में सनसनी सी फैल गई। अवि नयनों में युग युग की प्यास लिये – आतुर तृषित सा उस की ओर देखने लगा।

अर्चना मदहोश होती सी बोली–"क्या इरादा है...?... उठोगे कि पानी लाऊँ......?"

सुनकर अवि गद्‌ गद्‌ होता हुआ बोला—"अर्ची, क्या यह सम्भव नहीं कि जिन्दगी बाकी की तमाम उम्र...यों ही गुजार दे... नैय्या को साहिल से कभी बिछुड़ना ही न पड़े...।" अर्चना चिन्तन में लीन होने की मुद्रा में बोली—"सभी साध तो मनुष्य की पूरी नहीं होती न अवि...फिर तेरे इतना करीब रहना भी कौन चाहेगा...?"

"तुम रहोगी...और कौन . ?"—अवि ने कहा।

"यह तुमने कैसे जाना—"अर्चना बोली—"अकेला जान डरा के हाँ भरना चाहते हो क्या... ?"

सुनकर अवि के अधरों पर हास्य की धूमिल रेखा खिंच गई। वह विभोर होता सा बोला -"काश...ऐसा कर पाता... अर्ची,...विश्वास कर ले ..मन की बड़ी लम्बी साध है री, कि एक बार तुम पर जुल्म करूँ...और तुम सहायता के लिये जब गला फाड़ फाड़कर चिल्लाओ, तो सारी दुनियाँ बहरी हो जाय...उस समय तेरे निराश मन को अवि का पुरुष ही संबल देने के लिये प्रगट हो जाय...कितना शुभ दिन होगा वह ?" सुनकर अर्ची अवि के मन की थाह लेने का प्रयास करने लगी। इधर गाड़ी की चाल और भी मन्द हो रही थी। अर्चना ने गले से बाहें बिलग करते हुए कहा—

"अपने को तो बड़ा निडर कहा करते हो अवि...आज अकेली नारी पर बस नहीं चलता न ..?"

"कुछ ऐसी ही बात है अर्ची"—अवि ने उठते हुए कहा—"तुमसे मैं हमेशा डरता हूँ ..पर कारण आज तक मालूम नहीं हुआ, मन से जब भी पूछा, उसने कह दिया—मान क्यों नहीं लेता कि अर्ची एक ऐसा भूत है जो आँख मुँदे पर भी तुम्हें दिखाई देता है, यह सत्य है क्या ?..."

अर्ची हँस पड़ी—"झूठे कहीं के...चापलूसी करना सीख गये न.. वरना तो मन से कहो—दिल्ली जाकर जिसे भूलना ही है उससे इतनी पहचान क्यों ..? बेगानों से घुलना मिलना अच्छा लगेगा क्या ? ..."

"हाँ अर्ची—अवि ने लम्बी श्वाँस भरते कहा—"सुन ले... मेरे दिल की धड़कनें कुछ ऐसा सा ही कहती हैं री...वरना मैं तो बचपन से ही बड़ा भुलक्कड़ हूँ...शायद मेरी इस कमजोरी को पहचान कर ही जीवन की आज हर श्वाँस तुम्हारे नग्मे बारबार याद रखने की कोशिश करती हैं...फिर मैं तुझे कैसे भूलूँगा री...?"

गाड़ी तब तक लखनऊ में प्रवेश कर रही थी। अर्चना ने अविकी ओर देखा और उठकर केश सँवारे। अवि भी हड़-बड़ाकर ओवरकोट पहनते बोला—"बाप रे...तुम्हारे पिताजी आये होंगे..."

तबतक प्लैटफॉर्म ही आ चुका और सुबह की इस अलसित बेला में अर्चना अटैची सम्हालते हुए अवि से यह कहे बिना न

रह सकी—"पत्र लिखने का अनुरोध नहीं करूँगी, लेकिन मन नित्य ही तुम्हारे स्वास्थ्य का हाल जानने को व्यग्र रहेगा...सो याद रखना...।"

अवि ने कोट की बटन बंद करते हुए कहा—"भले चंगे को डॉक्टर की नसीहत देना संगत है क्या ?"

"हाँ रे हाँ...भला डाक्टर अपनोंको पहले से ही सचेत कर के रखता है, ताकि कोई भी कभी भूल से रोग के चंगुल में न फँस जाय।"

"तब तो डाक्टर को भूखे ही मरना पड़ेगा..."

"बहस की जरूरत नहीं"-अर्चना बोली—"मैंने जो कहा है करना ही है‥'क्यों' और 'कैसे' का तो उत्तर नहीं दिया करती न‥?"

सुनकर अवि रुकती हुई गाड़ी की ही तरह धीमे स्वर में बोला"—तो यह अनुरोध नहीं, अर्ची की आज्ञा है ?"

"मन मान ले तो ऐसा ही समझ लेना"—अर्ची बोली—"अगर तेरे बिना न रह सकी...तो दिल्ली ही चली आऊँगी..."

"ऐसा जुल्म न करना"—अवि हड़-बड़ाकर बोला—"फिर तो लखनऊ की रौनक वर्षों नसीब न होगी—ऐसा करना...जब मन नहीं लगे तो मुझे फोन कर लेना।...हवा के पंखों पर उड़ा चला आऊँगा...।"

अर्चना को हँसी आ गई। फिर भी वह गम्भीरता से ही बोली—

"तुम मेरा जी रखने के लिये ऐसा कह रहे हो...यह मैं जानती हूँ...वरना कभी न आओगे...पढ़ना तो समाप्त हो गया न..."दरवाजा खोलते हुए अवि ने कहा—"अर्चीं ने, अवि के पंख तो बहुत पहले ही काट दिये हैं, फिर हवा की पंखों पर तो नहीं, हाँ, चिन्तन के तारों पर तो सदा ही समाया रहूँगा...फिर चिन्ता काहे की ? लो विश्वास भी कर लो, कि कभी अवि की सदेह भी याचना करोगी, तो निराश न होना पड़ेगा...तुम्हें तो आज ही संध्या तक पत्र लिख देना है...।

"हाँ रे ऐसा ही करूँगी"—अर्चना ने लम्बी श्वाँस भरते हुए धूमिल प्रकाश में जब आँख फाड़ते हुए देखा तो हड़बड़ाये हुए पिता मोतीलाल आँधी की तरह लपकते हुए दृष्टिगत हुए...

"अरी कहाँ हो बेटी"—और सेठजी मानो डॉक्टर बेटी को गोद में ही भर लेने को लपके। अर्चना डिब्बे से उतर कर उनकी छाती से लग गई। शिष्टाचार के नाते अवि ने भी उतर कर प्रणाम किया। साथ में आये हुए मुनीम ताऊ ने अवि से कहा—

"तुम भी सामान उठाओ बेटा..."

और सेठजी भी बोले—हाँ, बेटा ..अब तो रूक कर ही जाना होगा...।"

"नहीं बाबूजी-अवि बोला"—पिताजी ने न जाने क्यों तार किया था . यों मैं एक दिन लेट ही जा रहा हूँ अर्ची का एक

पर्चा बाकी जो था...रूक जाना पड़ा "

बूढ़े मोती बाबू ने कृतज्ञता प्रगट करते कहा—"अच्छा किया बेटा...वरना तो इस बूढ़े को नाहक तकलीफ हो जाती न...?"

अर्चना व्यंग्य करती बीच ही में बोल पड़ी—"लेकिन बाबूजी वही अच्छा होता...भर रास्ते अवि ने मुझे सोने नहीं दिया .. आप रहते तो आराम से सोकर आती...यों अकेला आना भी कहीं अच्छा था।"

सुनकर मोती बाबू प्रसन्न नहीं हुए। अवि चुहल बाजी के लहजे में बोला "बाबूजी...आपलोग कहा करते हैं न, कि इस युग में भले का बदला बुराई से मिलता है वरना तो अर्ची ऐसा न कह पाती..."

मोती बाबू ने बीच ही में सह दे दी—हाँ, बेटा...यह पगली झूठ ही कह रही है...हैं...रे, बिटिया 'पास' तो कर जायगी न पर्चे अच्छे किये तो...?"

अवि के बोलने से हले ही अर्चना बोल पड़ी—

"अवि क्या जानेगा बाबूजी, यह कबीर का रहस्यवाद थोड़े ही है जो थिसिस लिख मारेगा।"

सुनकर मोती बाबू खिन्न से हुए, पर अवि ने उत्तर दे ही दिया—"निर्गुण का जानने वाला, अर्ची के सगुण को जानकर भी अनजान ही रहेगा। बाबूजी.: यों मुझे फूल की पंखुड़ियाँ बिखेरने के बजाय, उसका सजा-सँवारा रूप ही पसन्द है।"

और अवि शरारती अर्चना की ओर देखने लगा। अर्ची व्यंग्य का भाव लक्ष्य कर चुप न रही-"फूल का अस्तित्व अक्षुण्ण रखने के लिये उसके रोगी किटाणुओं का इलाज करना असंगत नहीं बाबूजी, फिर यह भी तो, जो जानता है वही कर सकता है ?"

मोती बाबू वातावरण को बोझिल जान, तनिक पुत्री के खट् चट् जवाब देने पर अप्रसन्न ही हुए।

इधर तब तक गार्ड ने प्रस्थान के लिये 'सिटी' भी दे दी थी। अतः बूढ़े बाबू हड़बड़ाये से बोले "अरे वो गाड़ी छूट रही है.. तुमलोगों की [illegible] ही में कहीं अवि लखनऊ और सामान दिल्ली चला जाय...।"

अवि ने डब्बे में बैठते हुए लम्बी श्वाँस भर कहा—"लेकिन [illegible] उलटा ही बाबूजी, मैं तो चला जाऊँगा...पर सामान सारा साथ न दे सकेगा···"

"ऐसा क्यों ?"—विस्मय से सेठजी बोले—"कुछ छूट तो नहीं गया अवि ! सम्हाल कर लो..."

'सीट' पर बैठ खिड़की से मुँह निकाल अवि ने, अर्चना की ओर देखते हुए कहा "सम्हाल करने से ही क्या होता है बाबूजी...अर्ची ने जान बूझकर कुछ ले लिया होगा...तो...?"

सुनकर अर्चना चुप न रही -"निश्चित रहो अवि...अर्ची कुछ तुम्हारे साथ ही छोड़ रही है...फिर जो कुछ छुटा होगा उसकी कीमत मेरे सामान से कतई अधिक न होगी...।"

बाबूजी तो कुछ नहीं समझे पर अवि ने मतलब समझते हुए कहा—"कीमत से तो सामान का महत्व नहीं न...हाँ प्रयोजन से मूल्यांकन कर लूँगा। फिर अर्चा इस बात को भी भूलना नहीं, कि जो कुछ भी साथ लिये जा रहा हूँ...मांग होने पर अविलम्ब लौटा दूँगा...परीक्षा ले लेना...।"

अर्चना तनिक व्याकुल होती सी बोली—"दी हुई वस्तु अर्चा कभी मांगेगी नहीं...हाँ तुम न रखना चाहोगे तो···खोटा भाग्य समझ संतोष कर लूँगी..."

अब की मोती बाबू चुप न रहे - अरे यह क्या जानवरों की भाषा में बहसकर रहे हो...हाँ अवि.. लो गाड़ी तो चली... तुम...पहुँच की चिट्ठी जरूर दे देना। अवि ने लम्बी श्वाँस भरते हुए कहा—"अच्छा बाबूजी...आप सब को नमस्कार..."

और गाड़ी चल पड़ी। अर्चना कुछ कहना चाह कर भी, कह न सकी। बरबस ही रुमाल निकाल गाड़ी से झाँकते हुए अवि की ओर हिलाने लगी। बूढ़े बाबू और मुनीमजी कातर दृष्टि से अवि की जाती हुई गाड़ी को देखने लगे। अर्चना की आँखों में न जाने क्यों आँसू भर आये। पता नहीं, दूर जाते अवि ने उन्हें देखा भी या नहीं, पर गाड़ी जब नजरों से ओझल हो गई, तो सुबह की उस अलसित बेला में अर्चना बाप के साथ अलसाई हुई ही लौट चली।

———

२

और यह वैभव विलासिनी दिल्ली का रमणीय प्राँगण है। कहते हैं, प्रत्येक युग में गिरगिट की तरह रंग बदलने वाली इस समृद्धि शालिनी ने आज भी आगोश में मुगलिया शानो शौकत की रौनक आबाद कर रखी है। इन मुगल कालीन विशाल प्रासादों के ऐसा तो नहीं, आधुनिक शिल्प कला का भव्य नमूना, सेठ हरदेव लाल का गगन चुम्बी प्रासाद, नई दिल्ली के चाँदनी चौक मुहल्ले से थोड़ा सा ही हटकर है।

जमाने की गर्दिश में सनी विजया, इसी मायाविनी नगरी में तीन दिन से भटक रही है। धर्म और मजहब की छाती पर, इन्सानियत की उठी हुई इमारत का लड़खड़ाता हुआ ईमान, जब पंचनद के प्यारे प्रदेश में खुलकर खून की होली खेल रहा था, इस उन्नीस-बीस वर्ष की अभागी बालिका ने लाहौर में

ऐश्वर्य भरा प्रासाद, लाड़ प्यार से भरे हुए माँ-बाप और सगे सम्बन्धी सभी को दंगे की ज्वाला में जलता देख, नन्हे भाई राजू के साथ, जीवन के मोह में पागल की तरह दौड़ते हुए मानवों के साथ, इसी नगरी की ओर कदम बढ़ाये थे। कहते हैं माँ, रास्ते ही में मरी थी और कल की लक्षाधीश उस देवी को मरने पर कोई गज भर कफ़न भी न दे सका। अभागी को अंतिम संस्कार से भी हीन रहना पड़ा था। बेचारी विजया अकेली करती भी तो क्या ? चार वर्ष के इस अभागे भाई के साथ, कितनी मुश्किल से वह दिल्ली के इस शरणार्थी खीमे में पहुँच सकी थी, उसका जी ही जानता है।

फिर यहाँ भी तो उसे आराम नहीं मिला। शहर में दर् दर् की ठोकरें खाने पर पेट भर अनाज नहीं और खीमे में समाज-सेवा के चोले में वासना के शिकारियों की घृणित वासना पूर्ति की आना कानी में उसके नन्हे भाई को इस बुखार की अवस्था में दवादारू नहीं। करे भी तो क्या ?

विजया पर सौभाग्य ने जहाँ अवहेलना की हँसी बिखेरी थी, वहाँ रूप ने अपनी छटा से उसे सजा सँवारा भी था। तभी तो इन मलिन वस्त्रों में भी कीचड़ में कमल खिला उद्भासित हो उठता था। पर यह रूप ही तो असहायों को पाप के पंक में धँसा देता है। बेचारी विजया अब कैसे अपनी सुरक्षा करे, यह प्रश्न उसे बार बार कुरेदता था। जी तो करता था,

यमुना की चंचल लहरों में जीवन का अंत कर दे ..पर माँ के अंतिम शब्द कि राजू वंश का अंतिम दीप है... काश तू इसकी रक्षा कर पाती...उसे जीने को मजबूर किये हुए थे।

आज संध्या की इस नीरव वेला में राजू की अवस्था शरणार्थी खीमे में अधिक अवनत हो गई। विजया का भावुक हृदय फूट-फूटकर रो पड़ने को हुआ। लेकिन समीप में बैठी प्रौढ़ा ने जब कहा—नादान...यहाँ किसके भरोसे बैठी है...उठ कर किसी डाक्टर को क्यों नहीं लाती ? वरना यह दम तोड़ देगा—विजया, सुनकर बेतहाशा भागी। मन ने इतना अवकाश भी नहीं दिया कि वह यह भी सोचती कि डॉक्टर बिना पैसे के क्यों और कैसे आयगा ?

उद्देश्य हीन बहुत दूर दौड़ने के बाद, अचानक चाँदनी चौक में सेठ हरदेव लाल के बड़े राज प्रासाद को देख आप से आप उसके पाँव रुक गये। भवन पर एक नजर डाल मानस ने कहा—लाहौर में ऐसा ही तो था अपना मकान...पर अब... और विजया की आँखों में आँसू भर आये।

तो यह भवन अविनाश के पिता सेठ हरदेव लाल का है। इनकी उम्र अभी पचास से थोड़ी कम ही है, पर इतने अर्से में जीवन का वह कौन सा कुकृत्य है जो इन्होंने नहीं किया। छल से दौलत के अम्बार वासना में स्वच्छन्द खेलने से मुख पर पाप की कालिमा और ऐय्यासी में सुरा-सुन्दरी के खिलौने से

नित्य विनोद करने से रईशाना ठाट-बाट इनकी अमीरी के गुण विशेष है।

अविनाश इस काजल की कोठरी में रहकर भी स्याही से कैसे बचा रह गया, इस पर आश्चर्य तो होता है, पर जब यह स्मरण पड़ता है कि बचपन से ही माता की गोद त्यागने वाले इस बेटे को सेठ जी ने बड़ी लगन और देखभाल के साथ पाला पोसा था, फिर बारह तेरह वर्ष का होते होते, अपने नमक हलाल मुनीम के साथ अवि को देहरादून भेज उच्च शिक्षा का पूरा प्रबन्ध भी किया, तो मान लेना पड़ता है कि शायद सेठ जी की यही अभिलाषा बेटे को सदा अपने से दूर रखे रही कि उनके अपने पाप मय कृत्यों की पहचान अवि को न हो पाये। इसीलिये अवि जब छुट्टियों या विशेष कार्यों पर दिल्ली आता सेठजी के वासना मय संसार में अनजाने ही व्यवधान उपस्थित हो जाता। यों आजकल वो अपने मुनीम के कंधों पर कारबार का सारा उत्तरदायित्व सौंप निश्चित से मौज बहार की दुनियाँ में लीन रहते हैं, क्योंकि मुनीमजी अपने छोटे बाबू अवि को बेटे का सा प्यार प्रदान कर, उनके बी० ए० में पहुँचने से कुछ दिन पहले ही, अर्चना को उसकी संरक्षणता में छोड़ अब दिल्ली रहने लगे थे।

तो आज बेटे का इन्तजार बेसब्री से करते हुए भी सेठ जी अभी अभी किसी वारांगना के कोठे से ही मद में चूर आये

थे। यद्यपि बेटे के आगमन की संभावना ने भय का सृजन अवश्य कर दिया था, पर वर्षों की लगी आदत ने मुक्ति कहाँ दी ?

विजया जब सेठ साहब के प्रासाद निकट मनों प्रदेश में खोई थी, अचानक हरदेव बाबू के विश्वासी नौकर रामसिंह ने उसे आकर टोका—"क्या है .. यहाँ क्यों खड़ी हो ?" वाणी में अमित वेदना घोल विजया ने कहा—"भैय्याजी मेरा राजू बीमार है, मालिक से कुछ पैसे दिला दो...तो डॉक्टर बुलालूँ.." चिंतन में लीन होते रामसिंह ने सोचा—क्या यह प्रासाद मालिक के उपभोग हेतु नहीं ? और उसने विजया को अंदर आने का संकेत किया।

भीतर कमरे में सेठ साहब शायद कपड़े ही उतार रहे थे कि रामसिंह ने कोई गंदा सा संकेत कर कहा—"मालिक यह जरूरत मंद है, कुछ सहायता कर दीजिये, हरदेव बाबू ने सलोभ जो विजया की ओर देखा, तो दंग से रह गये। वासना ने अनजाने ही मदिरा के संसर्ग से उभार खाया और वे उस अभागी का सर्वस्व लूटने को बेजार हो गये। रामसिंह तो संकेत पा खिसक गया पर सेठजी लड़खड़ाते कदमों से उठ आलमारी तक आये। रुपयों का पुलिन्दा विजया की ओर जो हुआ, तो उस अभागी के मानस पट में राजू का परीक्षण, शहर का सबसे बड़ा डॉक्टर करता हुआ दृष्टिगत हुआ। उसने

सहमते हुए आगे बढ़ना चाहा तो सेठजी बोले—"साहूकार की हवेली में आई हो...यों भीख लोगी क्या...? सौदा करती तो उत्तम था।"

विजया शंकित हुई—"मेरे पास क्या है बाबू.. भाई के अच्छा होने पर नौकरी कर सधा सकी तो उऋण हो जाऊँगी .. फिर आप तो पिता तुल्य दाता है"—सुनकर सेठजी का ईमान लड़खड़ा गया। कहीं कोई वर्षों की दबी सद्वृत्ति न जाग जाय, इसी भय से या फिर न जाने वासना के अधिक उभाड़ खाने से उन्होंने झटक कर कमरे के किवाड़ भिड़का दिये।

और इस तरह वासना के इस नरक में एक और पाप के इतिहास का पृष्ठ बढ़ गया। विजया अपना सब कुछ लुटा, भागी विक्षिप्त सी आँधी की तरह इस भवन से। हत भागी का यह कौमार्य ही तो अक्षुण्ण था, जिसके गौरव में जीने का बहाना मिल गया था, पर अब, जब वह भी नहीं रहा तो जी कर क्या होगा? ऐसा सोचकर वह बौराई सी अनजान दिशा की ओर जीवन का शीघ्र से शीघ्र अंत कर देने को बढ़ी जा रही है।

विधि की विडम्बना भी कैसी है, कि अविनाश उसी समय तो कार में स्टेशन से लौट रहा था। विजया ने आव देखा न ताव, झटककर, दौड़कर आती हुई कार के सामने ही आ खड़ी हुई। ड्राइवर ने सतर्कता प्रकट करते हुए भी एक धक्का मार

ही दिया। चीख विजया के मुँह से नहीं—अवि के मुँह से निकली। विजया तो हल्की चोट से तनिक दूर जा गिरी। हड़बड़ाकर अवि उतर कर उसके पास आया तो वह चिल्लाई—गाड़ी क्यों रोक ली बाबू...मुझे मरने क्यों नहीं दिया...चलाओ गाड़ी और मेरे इस शरीर को कुचलकर टुकड़े टुकड़े कर दो... मेरा सब कुछ लुट गया।"

हक्का-हक्का अवि विस्मय से उसकी ओर देखने लगा—"क्या हुआ है? ड्राइवर ने भूल की है...क्षमा मांगे लेता हूँ

"नहीं बाबू...यह ऐहशान मुझ पर करही देते वरना यमुना में डूबकर मरना ही है। वो ही मेरे कलंक को धो सकेगी"—विक्षिप्तावस्था में ही विजया ने कहा। अवि उसे उठाकर सबल गाड़ी में ले जाते हुए बोला—"कैसा कलंक?... आप दुखी हैं...? क्या हुआ है?"

"अमीर ने मेरी इज्जत लूट ली...मुझे छोड़ दो, मैं नहीं जीना चाहती"—और विजया तुड़ाव करने लगी। अवि ने लोगों के इकट्ठा होने के भय से, उसे जबरन गाड़ी में खींचते हुए ड्राइवर को शीघ्र ही गाड़ी चलाने का संकेत किया।

मोटर जब चल चुकी तो अवि ने विजया से पूछा—"यह जघन्य कृत किस नर पिशाच ने किया..?...मैं शायद आपकी सहायता कर पाता"—और वह जिज्ञाशा से विजया की ओर देखने लगा। वह पुनः बौरायी सी बोली "मुझे छोड़ दो...

किसी की भी सहायता नहीं चाहिये..."

पर अवि ने उसे छोड़ा नहीं। शायद वह जान चुका था कि अप्रत्याशित अत्याचार से यह मानस का संतुलन खो चुकी है। अतः अभी इसके लिये आत्महत्या करना तनिक भी कठिन नहीं। फिर गाड़ी तो रफ़्तार में थी ही।

अचानक जब उसी नारकीय प्रासाद में मोटर ने मोड़ ली तो विजया फिर कोहराम कर रो पड़ी—"मुझे उसी नरक में न ले जाओ बाबू यहीं तो मेरा सब कुछ लुटा है"—सुनकर अवि पर बिजली सी गिरी। वह कुछ ही विचार कर पाया था कि मोटर के रुकने पर सेठ हरदेव बाबू जो लपक कर बेटे का स्वागत करने आये, उन्हें देखते ही विजया चिल्लाई—"ले नराधम और लूट ले इज्जत...वासना की आग न बुझी तो..."

"लड़की...???" बीच ही में चौंककर अवि ने टोका – एक बारगी ही सेठ साहब दो कदम पीछे हटे। अपने कुकृत्य का सजीव रूप सामने देख हतप्रभ रह गये। अवि ने जो उनका चेहरा देखा तो दंग रह गया। पाप की कालिमा साकार हो अवि को बाप के गुनाहों की गवाही देने लगी। वह अधमरा सा हो गया। आसमान सिर पर टूट गिरा। जमीं पांवों तले से खिसक गई। दम तोड़ती सी आवाज में बोला—"आप इतना नीचे गिर सकते हैं...यह मैंने स्वप्न में भी न सोचा था, काश, माँ से पहले ही मेरा अंत हो गया होता...!"

सुनकर, जैसे अपने बचाव के लिये खूनी बहस करता है, उसी तरह क्रोध का बरबस ही सम्मिश्रण कर सेठ जी चिल्लाये—"क्या बकता है अभागे...एक बाजारू छोकड़ी की बातों पर विश्वास करते तुझे शर्म नहीं आती ? तेरी नजर में इस कमीनी की इज्जत की बड़ी कीमत है और बाप की जुबान का कोई मोल नहीं ? भगा दे इसे...वरना गला घोंट दूँगा इसका।" और वो बरबस ही भूखे भेड़िये से विजया की ओर लपके। अवि ने उसे अपनी ओट में लेते हुए कहा—"एक पाप को छिपाने के लिये दूसरा न करो बापू...मुझे भी आज अंतिम निर्णय करना है।" सेठ जी चोट खाये साँप से कड़के—"कैसा निर्णय रे तू...क्या चाहता है...?"

अवि अविचल हिमालय सा गम्भीर वाणी में बोला—"आपको क्या अधिकार था, जो कुल देवों के इस मंदिर को भ्रष्ट किया...मैं कैसे रह सकूँगा यहाँ ..?"

अब तो सेठ जी और भी आपे से बाहर हो गये—"बड़ा आया है मुझसे कैफियत मांगने वाला...तू होता कौन है रे... एक पाप की औलाद, नमक हराम नौकर का अंश होकर, आज मुझे ताव दिखा रहा है ? अभागे, पत्नी कही जानेवाली उस बदजात तुम्हारी माँ की तरह, अगर तुझे भी जहर देकर मार डालता, तो झगड़ा ही खतम था।" और वो क्रोध में हाँफने लगे।

अवि पर यह दूसरा वज्राघात हुआ। उसे कभी के सुने उस कथन पर आज विश्वास हुआ, कि उसकी माँ—जो सेठजी

ही की पत्नी थी—किसी अपराध के कारण, पति ही द्वारा ज़हर देकर मारी गई थी। लेकिन क्यों ? इसका जवाब उसे आज मिल गया। विजया अपनी अवस्था भूल क्षण भर अवि की मनोदशा ही में खो गई। सेठजी न जाने गुस्से में अपने जीवन के इस बड़े रहस्य को खुल जाने से घायल हुए या किसी हृदय रोग की पीड़ा से, पर अब वो सीधे खड़े न रह सके। कलेजा पकड़ धक् से रह गये। अवि ने शायद अंतिम बार ही कहा—"धन्यवाद बापूजी...अपने जीवन वृत्तान्त की कथा सुन आभारी हुआ...कहे सुनेको क्षमा करेंगे।" और वो विजया का हाथ पकड़...बेतहाशा भागा...भवन से। सेठजी दम तोड़ते से उसकी ओर देखकर भी न देख सके। अधर बुद बुदाये अवश्य...पर किसी ने कुछ सुना भी, ज्ञात नहीं। हाँ...नौकर च्याकर तो बाप-बेटों को क्रोधित देख दुबक कर भाग गये थे, पर ड्राइवर ने मालिक की देह को टूट कर गिरते हुए देखा, तो अवश्य बढ़कर सहारा दे दिया। उसके कंधे पर हाथ रख सेठजी सिर्फ इतना ही बोले—"इस घटना की किसी को खबर नहीं हो"—और वे अधमरे से सीढ़ियाँ चढ़ने लगे।

न जाने यह अप्रत्याशित तूफान विजया पर हुए बलात्कार का बदला लेने आया, या फिर किसी नये वातावरण की सृष्टि करने, यह नियंता ही जाने।

३

उसी दिन के बाद पिता और पुत्र, दोनों ही के जीवन ने एक नई मोड़ ग्रहण की। अविनाश जो विजया के साथ निकला था, सीधे शरणार्थी खीमें में, राजू की परिचर्या हेतु किसी डॉक्टर के साथ पहुँचा। बच्चा उसी समय खीमें की औरतों के संरक्षण में, दीदी के वियोग अथवा ताप के संताप से रह रह कर कराह उठता था। डॉक्टर ने जब उसकी परीक्षा की, तो अवि-विजया दोनों ही परिणाम जानने के लिये अतीव व्यग्र हो उठे। लम्बी श्वाँस भर विजया ने जब कहा "डॉक्टर, मेरा भाई बच जायगा न, इसे कुछ होगा तो नहीं, वरना मैं जिन्दा न रह सकूंगी डॉक्टर ?"

अवि कातर दृष्टि से जब डाक्टर का मुंह देखने लगा, तो उसने स्वाभाविकता से ही कहा " घबराइये नहीं...बस तनिक

बुखार ही है ..शायद परेशानी और हरारत का परिणाम है चलिये...दवा दे देता हूँ बिलकुल अच्छा होजायगा। ”

विजया ने व्यग्रता के स्वर में ही पूछा “ मेरा मन रखने के लिये तो नहीं कह रहे न ? देखो यह कराह रहा है।” विजया के कथन पर डॉक्टर नहीं, अवि चौंका। उसके मानस में अचानक ही अर्चना का चित्र उपस्थित होगया। कारण विजया ने वैसी ही भाषा में प्रश्न किया था, जैसा अर्चना बराबर करती थी। पर जैसे ही डॉक्टर ने बेग सम्हाल उठने का प्रयास किया; अवि की विचार धारा टूटी। जाते हुए डॉक्टर को फीस बढ़ाते हुए बोला—“अरे रुपये तो लेजाइये... फिर दवा भी तो लानी है।”

डॉक्टर ने रुपये ले लिये। विजया नयनों में कृतज्ञताके आँसू ले बेबस सी अविका मुँह निहारने लगी। मानस में विचार उठा—“येही तो चाँदी के चन्द सिक्के थे, जिनकी प्राप्ति में आज उसका सर्वस्व लुट गया, एक वो भी इन्सान ही था...और एक यह भी...शायद उसी का अंश।” विजया अधिक न सोच सकी। अवि ने विचार शृङ्खलामें व्यवधान उपस्थित करते हुए कहा—“ मैं जरा दवा लाने बाहर जा रहा हूँ, हो सका तो कोई घर भी खोजूंगा यहाँ तो अच्छे भले का दम घुट जाता है।...फिर रोगी को कैसे आराम होगा ?”

विजया रुँधे गले से बोली—“आप हमारे लिये इतना परेशान क्यों हो रहे हैं ? दवा मैं ले आऊँगी...फिर जब भाग्य

ने अपना सब कुछ छीन ही लिया, फिर महल तो रहने को नहीं मिलेंगे न...?...यों आप को भी घर लौट जाना चाहिये .. पल भर के दुराव को, जीवन भर का खिंचाव बना लेना अच्छा है क्या ?" अवि 'घर' शब्द के उच्चारण से ही व्यग्र हो गया। लम्बी श्वाँस भर बोला—"जिस घर का जिक्र कर रही हैं, वहाँ तो शायद इस जन्म में न लौट सकूँगा...हाँ सिर छिपाने के लिये आश्रय अवश्य ढूँढ़ना है ..शायद कहीं मिल जायगा......फिर दवा भी आपको न लाने दूँगा......आप की अवस्था ठीक नहीं न...?...हो सका तो अभी ही कोई मकान का प्रबन्ध कर लूँगा...आप तैयार रहियेगा ?" और अवि जब जाने लगा तो विजया ने टोका—'सुनिये ..आप के इस अस्थिर जीवन में, हम बोझ नहीं बनेंगे...फिर हमें यहाँ उतना कष्ट भी नहीं..." सुनकर अवि तनिक ऊहापोह में संलग्न अवश्य दृष्टिगत हुआ, फिर एकाएक दृढ़निश्चय के स्वर में ही बोला—"बहस की आदत मुझे बहुत कम है, यों मैं अभी जो कुछ भी कर रहा हूँ, आवश्यकता उसको आपको भी है, अच्छा होता, आप तर्क का परित्याग कर देतीं, वरना इस बच्चे को यों सुव्यवस्था के लिये लेजाते समय मुझे कोई रोक भी नहीं सकेगा...।"

सुनकर विजया तनिक अचंभित सी हुई। बोलना चाह कर भी वह कुछ बोल न सकी। अवि तब तक बाहर चल दिया। विजया के मन ने अनजाने ही कहा—तो क्या...ये मन चाही करेंगे ?...शब्दों में सत्ता का अस्तित्व था न ?

विजया तू इस आधिपत्य को स्वीकार कर रही है क्या...?

और विजया, सहसा ही इसका कुछ जबाब न दे सकी। राजू ने कराहते हुए पानी मांगा, और वह लाने के लिये उठचली।

रात्रि के नौ बजते बजते अवि, एक तांगे पर दवा लिये लौटा। उस समय विजया की, अवि के चिन्तन अथवा भविष्य के अध्ययन में कब आँखें लग गई थी, पता नहीं। पर अवि ने जब सम्बोधित किया—"दवा ले आया हूँ ..एक खुराक पिला दीजिये...फिर मकान भी मिल गया है... अभी ही चलना है..." विजया तनिक चौंक कर उठी। अवि की बातें सुन, न जाने वह कोई विरोध क्यों न कर सकी। आज्ञाकारिणी की तरह राजू को दवा पिला, निश्चिन्त सी बैठने लगी, तो अवि ने टोका—"चलना है...कुछ साथ में है तो ले लीजिये... बच्चे को मैं उठा लूँगा...।"

विजया ने अवि की ओर देखा। अचानक ही उसकी आँखों में आँसू भर आये, पर कारण ज्ञात न हुआ। अवि ने भी उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। वह जब राजू को उठाकर चला, तो विजया ने भी साथ में पड़ी हुई गठरी को मानो जबरन उठा पीछा किया।

तो इस तरह पुरानी दिल्ली के एक मजदूर मुहल्ले में, अवि विजया-राजू, तीनों ने ही अर्ध रात्रि से पूर्व आकर, आश्रय लिया। यह सौभाग्य ही था कि डॉक्टर से दवा लेते समय, उसीने अपना वह मकान अवि को किराये पर दे दिया, जो

इकमंजिला खाली ही था ।

इधर श्रांत्र के यों चले जाने के बाद हरदेव बाबू की अवस्था अच्छी नहीं रही। ड्राइवर के सहारे अपने कमरे में आये, तो कटे पेड़ से बिस्तर पर लुढ़क पड़े। ड्राइवर घबरा कर जब किसी को आवाज देने लगा तो उन्होंने कराहते हुए कहा—

"किसी को बुलाने की आवश्यकता नहीं, तुम भी चले जाओ....खबरदार जो किसी से इस घटना का जिक्र किया .. मुझे आराम की जरूरत है रसोइये से कहो...आज भोजन नहीं करूंगा"—और वो पाँवों पर चद्दर डाल चुपचाप मुँह घुमाकर सोने का उपक्रम करने लगे। ड्राइवर तनिक देर तो किंकर्त्तव्य विमूढ़ सा खड़ा रहा...फिर धीरे से कमरे की किंवाड़ी भिड़का, बाहर आ गया। रसोइये और दीनू नौकर से कहा—"मालिक...सो रहे हैं... उनकी नींद में बाधा न पड़े।"

जब वह जाने लगा तो...दीनू ने कहा—"ड्राइवर...छोटे बाबू आये थे न...वो कहाँ चले गये...बाप बेटे में झगड़ा क्यों हो रहा था ?"...

सुनकर ड्राइवर घूमा-"यों ही...हमें क्या प्रयोजन? मालिक ने कहा है, उस घटना का जिक्र कोई न करे ..मैं तो चला ..। अब उन्हीं से पूछ लीज्यो..."और ड्राइवर चल दिया।

दीनू सेठजी का बहुत पुराना नौकर था। मालिक के शरीर की देख भाल सदा उसने स्नेहमयी माँ का साकार रूप बनकर ही की थी। ऐसी बात नहीं, कि सेठजी के कुकृत्यों से वह

अपरिचित था, पर उसकी अल्प बुद्धि में वे सब कार्य अमीरों के स्वाभाविक कलाप ही जान पड़ते थे। अतः वह चाह कर भी कभी उनका विरोध न कर पाता था।

आज बाप-बेटे के झगड़े का उसे विशेष विवरण प्राप्त नहीं। कारण उसने छोटे बाबू को घर में नहीं देखा और बड़े मालिक को यों चुपचाप जाकर कमरे में पड़े रहते जाना तो इससे उसने अनुमान अवश्य लगा लिया, कि कोई अप्रत्याशित घटना घट चुकी है। अतः वह व्यग्रसा मालिक से मिलना चाहता था, पर ड्राइवर के द्वारा मालिक का आदेश सुन, हताश सा वह उल्टे पाँव ही लौट पड़ा।

इधर हरदेव बाबू निश्चिंत सो गये हों, ऐसा भी नहीं हुआ। चुपचाप कमरे की धरण कड़ियों को गिनते हुए भी उनका मानस किसी विशेष विचार श्रृंखला में उलझा था। मन ने कहा— नादान यह क्या कर दिया? क्यों अपने स्वर्णिम संसार में, जान बूझकर दावानल सुलगाया? तू चुप नहीं रह सकता था क्या? सचमुच में धन कुबेर तू जीवन की बाजी हार गया। वर्षों की साध कि घर में 'बहू' आयेगी बेटा पढ़-लिखकर जवान हो चुका, कारबार सम्हाल लेगा.. उजड़ी हुई गृहस्थी एक बार फिर हँसेगी...बस जायगी...पर आह...आज तो सभी अरमानों पर तुषार पात हो गया।...अपना सब कुछ लुट गया रे...पापी हरदेव आज तेरे सभी पाप साकार हो... तेरा अस्तित्व ही विलीन करने आये हैं...तू आज मिटेगा...

जलेगा...और जिन्दगी की एक एक श्वाँस के लिये तड़पेगा .. पर फिर भी क्या तेरे पापों का प्रायश्चित हो सकेगा...? लाखों की सम्पत्ति के स्वामी...आज तू...कंगाल है...जिन्दा नहीं बचेगा...रहेगा तो केवल तेरा कंकाल ही।' और मानस की इस विचार धारा ने बड़े बाबू को इतना झकझोर दिया कि... तूफानों के थपेड़ों पर जीवन के मोह में ठोकरें खाने वाली नैया के सदृश, वो त्राण के लिये अंग प्रत्यंग से कराह उठे। आँसुओं की धारा इतनी प्रबल वेग से प्रवाहित हुई कि बिस्तर सारा गीला हो गया।

यों ही अपने किये पर आठ आठ आँसू बहाते, निद्रा ने रात्रि के किस प्रहर में उन्हें मुक्त किया, ज्ञात नहीं। प्रातःकाल जब वो उठे तो चेहरा वर्षों के रोगी सा भयानक डरावना था। शायद पाप अपने रूप को बरबस ही प्रगट कर रहा था। जम्भाई लेते हुए विगत के सभी पृष्ठ एक ही दृष्टि में चल चित्र की तरह, मानस में घूम गये। अचानक ही विक्षिप्त अवस्था में पलंग से उठ, वो टेलीफोन पर आये। न जाने किस परिवर्त्तन का अच्छा या बुरा स्वप्न देख उन्होंने मुनीमजी से बातें की।

और यह मुनीम भी सेठजी का पुराना साथी रहा है। जाति-वंश और परिवार तो ज्ञात नहीं, पर अवि जब तीन चार ही वर्ष का था, तभी से तरुणाई को तिलांजलि दे यह जो सेठजी की सेवा में आया, आज तक तिल तिल अपने को गला, न जाने किन ज्ञात अज्ञात पापों का प्रायश्चित कर रहा है? उसे

मालिक का, अवि के साथ हुआ, अप्रत्याशित वर्ताव, बताया न गया था, क्योंकि तीन दिन पूर्व से ही तनिक ज्वर से पीड़ित हो, बूढ़ा मुनीम घर पर ही था। सेवा टहल के लिये, प्रौढ़ा ब्राह्मणी थी, जो दिल्ली आने के बाद ही मुनीम जी के साथ है। लोगों ने दोनों के सम्बन्ध के बारे में कई अनुमान लगाये, पर ज्ञात नहीं दोनों के बीच कैसा लगाव था, जो पास पड़ोसियों की आलोचना के पश्चात भी अटूट रहा।

तो मुनीमजी बड़े बाबू का टेलीफोन पा, किसी असंभावित घटना की आशंका से व्यग्र हो, तुरत आये। तबतक बूढ़ा दीनू-सुबह की चाय ले बड़े मालिक के कमरे में धीरे से घुस गया था।

सेठजी ने जो मुँह फेरा तो अपने विश्वासी भृत्य के हाथ में चाय की प्याली देख संयत स्वर में कहा—"चाय ले जाओ दीनू...जरूरत नहीं...।...।" दीनू सहमकर वेदना विदग्ध हो गया। तनिक साहस बटोर बोला—"ऐसे काम कैसे चलेगा बाबू ?...आप रात भर से परेशान हैं...छोटे बाबू लौट आयेंगे...शरीर का तो खयाल कीजिये।"

"दीनू...???..."

और सहम कर बेचारा दिनू बाहर चल दिया।

आध घंटे पश्चात मुनीमजी अपनी जीर्ण काया को डोलायमान करते, हड़बड़ाये से मालिक के कक्ष में घुसे। दीनू ने, दिवाल से सटकर कोशिश की, कि अन्दर की बातें सुनाई पड़े...

ताकि वह इस अकारण ही घिर आये बादलों के फटने का अनुमान लगा सके। उसका प्रयास व्यर्थ नहीं गया। सेठजी ने मुनीमजी को देखते ही लम्बी श्वाँस भर एक ही स्वर में कहा—

"मुनीमजी...कारण जानने की जिज्ञासा होने पर भी बताऊंगा नहीं...केवल इतना कीजिये कि जितना जल्दी हो... अपना समस्त कार बार सलट जाय। कपड़े और तेल की मिल बेच दीजिये...हवेली और छोटी मोटी जायदाद को छोड़ कर...सभी कुछ जिस कीमत पर बिके बेच डालिये .. मैं अब यहाँ नहीं रह सकूँगा।"

सुन कर बूढा मुनीम स्तंभित रह गया। सहसा उसके कानों को विश्वास ही नहीं हुआ कि ये सब आज्ञा, उसके मालिक की है...भला...फिर इस परिवर्तन का कारण क्या...? क्यों अचानक ही ऐसा आदेश? दबी वाणी में केवल वह इतना बोल सके—"यह क्या कह रहे हैं बाबू...जायदाद क्यों बेच दूँ...आपका जी क्यों नहीं लगता...कहाँ जायेंगे आप?" मुनीम जी असंतुलित अवस्था में काँपने लगे। सेठजी ने मानों वेदना के वेग को जबरन अवरुद्ध कर के ही कहा—"कहाँ जाऊँगा, यह तो मुझे भी ज्ञात नहीं...पर यहाँ न रह सकूँगा... वरना मेरा दम घुट जायगा......मुनीम जी, तुम बहस मत करो...जो कहा है करदो...मुझ में अब इतनी शक्ति नहीं, कि सभी कुछ तुम्हें व्योरे बार समझा सकूँ...फिर पागल मैं नहीं हुआ हूँ...यह तुम जानते हो...केवल अब एक यही रास्ता

है, काश अवि लौट आता, लौट आता" और अवि का नाम होठों पर आते ही सेठ जी मुँह घुमा रो पड़े। मुनीम विस्मय से उनका मुँह निहारने लगा।

हरदेव बाबू ने जबरन आँसू पोंछ कहा—"तुम नहीं समझोगे, तेरे छोटे बाबू सदा के लिये बिछुड़ गये रे...अब वह अभागा कभी नहीं लौटेगा ..जीवन भर दर दर की ठोकरें खाता रहेगा, पर मेरे पास नहीं आयेगा...बड़ा जिद्दी है रे वह...।"

और फिर विकल हरदेव बाबू रो पड़े। मुनीमजी भी अनजाने ही आँसू बहाने लगे। शायद उनके पल्ले कुछ भी नहीं पड़ा था। जिज्ञासा से अश्रुपूर्ण नयन उठा उन्हों ने मालिक की ओर देखा—"बाबू... झगड़ा हुआथा क्या?" रोते ही हुये हरदेव बाबू और भी अधीर हो, बस इतना ही कह सके...—"कहा न......मुझ में ब्योरा देने की ताकत नहीं रही...अगर मेरे नमक को भूले नहीं हो, तो बहस छोड़, केवल अभी मेरे जाने का प्रबन्ध कर दो...साथ में दीनू और रामू को कर देना ..बाकी सभी को विदाई देदो ...जायदाद बेचने से जो कुछ भी आये...अवि के नाम से बैंक में जमा करा देना... जीवन रहा तो कहीं से पत्र लिखूँगा, वरना सब तुम जानो...।"

और सेठजी अधिक रुलाई के कारण और न बोल सके। तकिये में सिर डुबा, वेदना को अवरुद्ध करने का लाख प्रयत्न किया, पर आँसुओं का बहाव तनिक भी कम नहीं हुआ। मुनीमजी किंकर्तव्य विमूढ़ से रोते हुए, ज्यों के त्यों खड़े रहा

गये। मालूम पड़ा उनपर पक्षाघात का प्रहार हो गया। अब और पूछने की तो शक्ति ही नहीं रही।

तनिक देर बाद हरदेव बाबू मानों वायु के कोप में ही बोले—"खड़े क्या देखते हो मुनीमजी, मेरी यात्रा का प्रबन्ध करदो...मेरे सामने तो अवि लौटने का नहीं...फिर मुझे उस से कुछ लेना भी नहीं। तुम्हें ममता हो तो...उसे ढूँढ़ कर ले आना...अगर मिलजाय तो...ये सब कुछ उसको दे देना... वरना मैं अब किसी की चिन्ता नहीं करूँगा...अभी ही चला जाऊँगा।" और मालिक के मुख पर दृढ़ निश्चय की आभा देख बेचारा मुनीम, बे मन से ही, उनकी अनिश्चित यात्रा का प्रबन्ध करने घूम पड़ा।

तो इस तरह दीनू और रामू के साथ सेठ हरदेव लाल ने...बारह बजते बजते...किसी अनजान देश का गमन करने प्रस्थान किया। जाते समय एक हसरत भरी नजर हवेली पर जरूर डाली थी, पर उस में ममता नहीं...विराग की क्षीण ज्योति सी झलकती थी। पल भर में ही हँसता हुआ भवन श्मशान होगया। मोह विराग में परिवर्तित होगया। स्वप्नवत् सी घटना प्रत्यक्ष घट गई।

बेचारे मुनीम को तो बूढ़े मालिक ने बिना कुछ बताये, स्टेशन तक जाने की आज्ञा भी नहीं दी। मालिक के चले जाने पर नौकर चाकरों से पूछ ताछ भी की, तो कोई न बता सका। हारा थका मुनीम मुर्दे सा हवेली की सीढ़ियों पर बैठ चिन्ता

ही करता रह गया।

इधर दिल्ली के मजदूर मुहल्ले में सुबह की सुफेदी में अवि जो जागा तो कल की घटित घटना, सारी की सारी अचानक ही नजरों के सामने घूम गई। रात में वह उन्हीं सब पर चिन्तन करते सोया था, और दिन में फिर आने वाले समय का गढ़ा सा रूप मानस में उपस्थित हो गया। विजया और राजू दूसरे कमरे में सोये थे। पता नहीं वो उठे या नहीं, पर अवि अब बिछौनों पर नहीं रह सका। विजया की गठरी से निकाली हुई इन दो चद्दरों को, दो तीन तह कर वह उठ पड़ा। बरामदे में आते ही आहट पा विजया भी बाहर आगई। अवि ने प्रभात की भीनी भीनी खुशबू से तर, जैसे किसी अर्ध प्रस्फुटित सुमन के अस्तित्व की कल्पना भर कर ली हो, ऐसा ही जान पड़ा। नजर उठा उसने कहा "जरूरत की दो चार वस्तुयें ले आता हूँ...वरना बहुत कष्ट होगा...।"

और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह बाहर हो गया।

नौ बजते बजते, एक काम चलाऊ छोटी मोटी गृहस्थी का सामान कुली के सिर पर लिये हुए अवि ने प्रवेश किया। विजया तब तक घर में पड़े मिट्टी के गगरे में नल से पानी भर कर लाई थी। सामान को देख उसे आश्चर्य अवश्य हुआ, पर वह बोली नहीं। अवि ने सामान रखवाते केवल इतना कहा—

"बाजार के खाने पीने से...कबतक काम चलता.. सोचा पैसे भी अधिक व्यय होंगे......फिर जबतक कोई काम नहीं

मिलता, इन पास के रुपयों ही पर ..दिन काटने हैं न...। यों विशेष चिन्ता की आवश्यकता भी नहीं, बचा नहीं उठा क्या ?" विजया ने कुछ सोचते हुए कहा—"अगर फिर हमारी चिन्ता छोड़ आप......घर लौट जाते तो अच्छा था......भाई की जान बचाली...इस एहसान को भूलूँगी नहीं...फिर इन व्यर्थ सी चीजों का कोई प्रयोजन है क्या ?"

इस बार अवि खिन्न नहीं हुआ। तनिक देर विजया के मुख की ओर देख कुछ अध्ययन करता सा बोला—"मैं भूल नहीं कर रहा, तो आप कोई श्रेष्ठ कुल गोत्र की ललना हैं फिर गृहस्थी की वस्तुओं को निःप्रयोजन कहना संगत है क्या ? .. भिक्षा वृति तो आप ने कभी की नहीं यह मैं जानता हूँ इस-लिये हाथ से रसोई बना, आहार करना बुरा भी नहीं लगेगा। रही मेरे घर लौटने की बात...सो बार बार अंतर की थाह लेने पर भी परिणाम एक सा ही मिलेगा...मेरे मुनीम काका बचपन में ही मुझ से कहा करते थे—"अविनाश...रे...जिस दिन तू जिद छोड़ देगा...तेरा नया जन्म होगा...सो मैं आज तक नहीं छोड़ पाया...बुरा न मानियेगा...मुझे अब विगत की चर्चा सुखद नहीं जान पड़ती। भविष्य को किसी दिन सज सवाँर लूँगा तो उसी दिन इन सब का लेखा जोखा कर लूँगा, अभी तो अच्छा था...हम दोनों ही नियन्ता की मर्जी पर नाव को छोड़ देते... शिकायत करने से भी मुक्ति न मिल सकेगी...आपकी क्या राय है ?" सहसा ही अवि ने प्रश्न किया,

तो विजया जो बातों से ही अवि के अन्तर की थाह लेना चाहती थी, तिलमिला उठी। सूझ ही न पड़ा कि वह क्या जवाब दे। अवि ने कमीज खोलते हुए, लाई हुई बाल्टी जो उठाई तो विजया बोल पड़ी—"पानी तो मैं ले आई हूँ...फिर आपने जो प्रश्न किया है...उसका उत्तर हो सकता है क्या? पल भर में ही जब हम, ऐश्वर्य के पर्वत से भाग्य द्वारा विनाश के गर्त में ही ढकेल दिये गये, तो अब पतवार को होनी ही के हाथ छोड़ना पड़ेगा।...रात से ही कभी कभी चित अत्यन्त व्याकुल होजाता है...जब सोचती हूँ कि मेरे फूटे भाग के साथ आपका सम्बन्ध क्यों जोड़ूँ...विजया तो भाई के लिये, अपना कलंकित रूप लेकर भी जी लेगी...लेकिन आप क्यों हमारे लिये सहेंगे? बाप-बेटे के ऐसे झगड़े तो बराबर ही हुआ करते...हैं।" ... सुनकर अवि टीश का अनुभव कर बोला—

"विजया...यह साधारण झगड़ा तो नहीं रहा न...अगर यह पूछूँ कि आप मेरे स्थान में होकर कभी इसे भुला सकेंगी क्या...? फिर अब उस सम्बन्ध से लगाव ही कैसा...हर पल बदलते हुए संसार में मेरे जीवन ने भी एक मोड़ ग्रहण की है, तो इस पर आश्चर्य नहीं प्रगट करूँगा...अभी नहाने जा रहा हूँ, हो सके तो रसोई बना लीजियेगा...रात से ही भूखा हूँ।..." और वह बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही चल दिया।

विजया तनिक देर मौन खड़ी हुई अवि के बारे में किसी निर्णय पर पहुँचने की ठौर खोजती रही सहसा वह किसी

निश्चित धारणा पर नहीं पहुँच सकी। पर इतना अवश्य सत्य था, कि विजया ने अब यह स्पष्ट अनुभव कर लिया कि यह अविनाश...हाँ...यही नाम तो है, अब उसके साथ हो लिया है। लेकिन 'कबतक'? और 'किस रूप में'—इस पर न तो उसका ध्यान गया और नाहीं अभी इस प्रश्न पर सोचने की आवश्यकता थी। वस्तुतः विजया भी तो उसी माटी की बनी थी, जो नियंता के हाथों, भावी को सौंप निश्चित सी हो जाती है। इसलिये जैसे ही वह घूमी, राजू की आवाज सुनाई दी। विजया झटककर उसके समीप गई, तो देखा—बच्चे की अवस्था अच्छी ही जान पड़ती है। सिर सहलाते हुए पूछा—कैसा जी है रे_भूख लगी है क्या?..."

राजू ने जम्भाई लेते कहा—"क्या हुआ है मुझे...भला चंगा तो हूँ...यह घर किसका है...? खाना देगी दीदी...?"

राजू इधर उधर देखने लगा। विजया ने अनजाने ही कहा—"घर अपना ही है रे...वहाँ तू बीमार हो गया था न... बाबू तेरे लिये बिस्कुट लाये हैं...मुँह हाथ धोले,...तो दूँगी खाने को...।"

"कौन बाबू"—राजू ने कहा—"बिस्कुट कहाँ है?...तो मेरा मुँह धो डालो न दीदी...भूख ज्यादा लगी है...।"

सुनकर विजया उठती हुई बोली—"मैं पानी लाई। बाबू... का नाम, अविनाश, बाबू हैं, तेरे भाग्य ने उन्हें भेजा है, रे।" और वह चल दी।

आकर राजू का मुँह धो, उसे बिस्कुट देकर बोली—"ले, मैं जरा बाबू के लिये रसोई बना लूँ। तू भी...फुलके खायेगा क्या? न हो तो एक खुराक दवा और लेले, फिर बुखार न आयेगा।"...कहकर विजया बाहर आ गई। बिना किसी अधिक उधेड़ बुनके उसने रसोई में लग जाना श्रेयस्कर समझा और वह उसी तरफ चल पड़ी।

अवि नल पर से स्नान करके आया तो कमीज पहन राजू की ओर ही चल दिया। यों उसने रसोई घर से उठते हुए धुँआँ से अवश्य अनुमान लगा लिया था कि भोजन तैय्यार हो रहा है। कमरे में घुसते ही उसने बिस्कुट खाते हुए राजू से पूछा—"कैसा जी है मुन्ना...?" राजू ने गरदन उठा अवि की ओर देखा और फिर दीदी की कही बात को सही जान, बाल सुलभ चपलता में बोला—

'मेरा नाम मुन्ना तो नहीं...राजू...है"

अवि निकट में बैठते हुए बोला—"ओ...राजू...बड़ा प्यारा नाम है रे, देखूँ, बुखार तो नहीं न...अरे तू तो बिलकुल अच्छा है तेरी...वो विजया दी रसोई बना रही है...खायेगा न...!" और अवि, राजू का सिर सहलाने लगा। बच्चा मुद्दत के बाद प्यार का स्वाद चख विभोर होता सा बोला—"दीदी ने नाही की है...कहा है...एक खुराक दवा लेलूँ।"

"अच्छा..." अवि ने कहा—"तू तो बड़ा अच्छा है रे... ला मैं दवा पिलादूँ।"

और अविने राजू को दवा पिलादी।...

आध घंटे बाद एक थाली में भोजन पका कर विजया ले आई। अवि ने तनिक झेंपते हुए ही आहार किया, ऐसा विजया को अनुभव हुआ।

भोजनोपरान्त अवि इतना ही कह कर गया—"शाम तक लौट सकूँगा......देखें कोई काम मिल पाता है क्या?" - और उसके जाने पर विजया ने अनुभव किया, जैसे कि उसके अन्तर के किसी कोने से स्वर ध्वनित हुआ—

भगवान् करे...मिल ही जाय—

पर ऐसा क्यों हुआ, वह कारण न जान सकी। राजू से भोजन करने की फिर जिज्ञाशा नहीं की, स्वयं ही उसने नियत समय पर आहार कर लिया।

फिर अवि के लाये सामान को, यथाविध सजा कर, वह निश्चित सी होगई। कल बलात्कार वाली घटना के बाद आज उस ने संतोष का अनुभव किया था। अन्तर में आत्मघात वाला भाव, अब न जाने कहाँ और क्यों विलीन होगया था, इस पर विजया का ध्यान भी नहीं गया।

संध्या में अवि जो लौटा तो आशा से अधिक ही प्रसन्न था आते ही उसने विजया को सम्बोधित कर कहा—"आसार कुछ बुरे नहीं हैं विजया!, नौकरी मिलगई है। अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ा। रात वाले डॉक्टर ने ही न जाने क्यों सहायताकर दी। फिर तनखा भी बुरी नहीं,...दो सौ में गुजर हो जायगा।

सुनकर विजया अत्यन्त उत्फुल्ल हो उठी। बोली तो कुछ नहीं, पर अवि को ऐसा ज्ञात हुआ जैसे उसने मनौती मान रखी थी...और आशा पूरी होने पर नियंता का अभिवादन मन ही मन किया हो। जो कुछ भी हो विजया ने जब कहा—"कपड़े उतार लीजिये...भोजन तैय्यार है—तो अवि चौंका—"अरे... यह इतना सवेरे...।"

विजया अनजाने ही बोलगई—"सबेरा नहीं...यह तो संध्या है।"

और अवि न जाने क्यों हँस पड़ा—"हाँ सँध्या ही सही अच्छा...भोजन ही कर लूँ।" और वह वास्तव में तैयार होने चल दिया। विजया भी थाली परोसने को उत्सुक हो गई।

अवि जो खाने बैठा तो अचानक ही राजू ने प्रवेश किया—"दीदी...मैं भी खाऊँगा।...भूख लगी है.."

विजया चौंकी "अरे तो खा लेना...लेकिन बुखार जो"... "वो अब कहाँ है"–बीच ही में अवि बोल पड़ा–"आओ राजू... हमारे साथ ही खालो।"

सुनकर विजया हतप्रभ रह गई—"यह क्या कह रहे हैं? यह फिर खा लेगा...तू जा रे...मैं लाती हूँ...तेरे लिये" वह राजू से बोली। तनिक उदास सा वह खड़ा ही रह गया। अवि ने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा—"अरे बैठ भी...ले तनिक हाथ धोले!"

और अवि ने जबरन राजू को अपने समीप बैठा लिया। वह हक्काबक्का सा दीदी का मुँह देखने लगा। विजया को

तो मानो मुर्छा लग गई हो। विश्वास ही नहीं हो रहा था कि जो कुछ वह देख रही है...वह स्वप्न नहीं सत्य है...बिलकुल सत्य...। अचानक ही उसकी आँखों में आँसू भर आये और रूँधे गले से शब्द निकले—"हत भागे पर इतना प्यार न जताओ, कि वह अपनी औकात ही भूल जाय...?"

"विजया...???"

तनिक देर तो प्रलय काल की सी शान्ति छा गई। फिर विजया मुँह घुमा, तड़ तड आँसु टपकाती भागी अपने कमरे की ओर। अवि राजू देखते हो रह गये। तनिक अपनेको संयत कर, अवि ने बिशेष किसी उलझन के, राजू से कहा—"खा राजू...हम दीदी को मना लेंगे" और राजू अनजाने ही भोजन करने लगा। अवि ने भी पुनः खाना प्रारम्भ कर दिया।

विजया कमरे में अधिक देर आँसू न बहा सकी। शीघ्र ही अपनी स्थिति साधारण कर वह रोटी लिये हुए, अवि के निकट पहुँची—"यह ले लीजिये...!"

और जब उसने रोटी थाली में डाल दी, तो अवि ने संयत वाणी में कहा "इतना खा सकूँगा क्या...? फिर भी जूठा न गिराऊंगा..."

सुनकर विजया तनिक मुस्कुरा दी। अवि को यद्यपि मुस्कुराने का कोई कारण नहीं जान पड़ा, फिर भी उसने अपनी मुद्रा अधिक से अधिक सरस बनाने का ही प्रयास किया।

तो इस तरह विजया और अवि दोनों की जीवन-नौका एक साथ ही एक नई मोड़ की ओर आकृष्ट हो गई।

× × × ×

अवि से विलग होने के पश्चात, अर्चना ने उसे कभी याद भी नहीं किया हो, ऐसी बात नहीं थी। वस्तुतः तो वह इस बार लम्बी अवधि के बाद ही लखनऊ लौटी थी। इसलिये, बालापन की बहुत सी सहेलियों के अभियोग उलहने, और बहुत सी की अर्चना की अनुपस्थिति में हुई शादी के बाद प्रियतम के रूप में मिलने वाले पतिदेव के विषय में आलोचना प्रत्यालोचना में दो-चार दिन बीत गये। यों अर्ची को पिता के गिरते हुए स्वास्थ्य का स्वयं ही इलाज करने की धुन भी समा गई थी, जिसे सेठ मोतीलाल लाड़ली बेटी का जी रखने के लिये, चाहे अनचाहे पूरी करने का प्रयत्न करते थे। ऐसी अवस्था में अवि सतत तो नहीं, पर यदा कदा, जब भी अर्चना निश्चिन्त होती, उसके मानस पट पर आ सारे अब यब झकझोर देता था। यों अर्ची को पूर्ण विश्वास भी था, कि गगन के चांद सितारे अपनी प्रकृति परिवर्त्तित कर सकते हैं, अवि ऐसा नहीं जो अर्चना के बिना, कभी भूले से भी, अपने अलग अस्तित्व की कल्पना कर ले।

आज अचानक सुबह उठते ही अवि की स्मृति ने अर्चना के मानस का अनजाने ही मंथन कर दिया। उसे जब याद पड़ा कि अवि को गये हुए अभी चार दिन बीत गये। इस अवधि में पहुँच की चिट्ठी अवश्य आ जानी चाहिये थी जो नहीं आई, तो वह यों ही व्यग्र सी हो गई।

पलंग पर मौन लेटी हुई, वह बहुत कुछ अवि के सम्बन्ध में भला बुरा सोच गई। मन ने कहा – उसे अवकाश नहीं मिला क्या, जो एक भी पत्र न डाला...कहीं वह दिल्ली जाकर गलियों में रम तो नहीं गया ? सम्भव है उसने मुझे भुला दिया हो—और इस विचार के आते ही जैसे वह अर्ध मूर्छित सी हो गई। कराहती सी आवाज में उसने सरजुग नौकर को आवाज दी। वो तो नहीं, स्वयं पिता ही अर्ची के कमरे में चले आये। बेटी को इतनी देर तक बिछौनों पर लेटा देख बोले—"अरी... उठेगी नहीं क्या ?... दिन चढ़ गया है... स्नान कर ले बेटा..."

"नहीं बाबूजी न जाने क्यों आज मन उचट रहा है... अवि का कोई पत्र नहीं आया न... ."

अर्चना के कथन पर सेठ मोतीलाल कुछ चौंके—"अरे, तो क्या... बेटी... अवि के बिना... नहीं रह सकती... ?" मन में उठी समस्या का निदान हुआ या नहीं यह तो ज्ञात नहीं, पर अर्चना से वो अवश्य बोले—"बस इत्तीसी बात के लिये नित्य क्रम में व्यवधान उपस्थित करना अच्छा है क्या...? उचित समय पर आहार-पान नहीं करोगी तो समझूँगा... डॉक्टरी की पढ़ाई के पैसे व्यर्थ गये...।"

ऐसा कहकर मोती बाबू कुर्सी पर बैठ गये, पर आँखें अर्चना ही के मुख पर थीं। वह पिता के कथन पर सन्तुष्ट नहीं हुई। उसे तो अवि के विषय में जानना, न जाने क्यों नितान्त वाञ्छनीय जान पड़ा... सो वह पिता के कथन पर बिना

कुछ विचारे ही बोल पड़ी—"बाबूजी, मैं दिल्ली जाऊँगी...न जाने मन क्यों कह रहा है, कि वहाँ अवि अपनी साधारण अवस्था में नहीं...सम्भव है, वो बीमार ही पड़ गया हो, उसे देख आना अनुचित है क्या ?" सेठ मोतीलाल ने स्पष्ट अनुभव किया, कि कल तक बाप के वियोग में घुलने वाली नारी, आज जीवन-साथी...शायद पति को पल भर भी देखे बिना चैन नहीं पाती. इस विचार के उत्पन्न होने से वो अप्रसन्न हुए हों, ऐसी बात नहीं...वस्तुतः तो उनके अंतर में प्रसन्नता की अव्यक्त लहर सी ही दौड़ी, यह जानकर कि बेटी और उसके भावीपति में अभी से अतीव प्रेम है...जो सुव्यवस्थित सुन्दर जीवन का द्योतक हैं। इसलिये उन्होंने बेटी से कहा—"तू अब अवि के बिना पल भर भी नहीं रह सकेगी क्या ?...पर चिन्ता कैसी...? न हो तो मुंशीराम को साथ लेकर, दिल्ली हो आ... दिल भी बहल जायगा...और अपने अवि की अवस्था का भी परिज्ञान हो जायगा...यों उसे कुछ हुआ नहीं री...जो तू इतना परेशान हो रही है उठ स्नान तो कर ले..." और पिता ने मानों जबरन ही अर्चना को उठाया।

दस बजते बजते अर्चना जब मुंशी राम के साथ दिल्ली के लिये रवाना हुई, तो पिता एक लम्बी श्वाँस भरकर रह गये।

संध्या की नीरव वेला में जब वह हरदेव बाबू की हवेली में प्रवेश कर रही थी, बूढ़ा माली मोटर में, अपने छोटे बाबू को आया जान, खुर्पी फेंक लपका उसकी ओर। लेकिन गाड़ी

जब रुकी और उससे अवि के बजाय, अर्चना उतरी तो अंतर की अभिलाषाओं पर तुषार पात हो गया। बेचारा अर्ची के आगमन से अप्रसन्न हुआ हो, ऐसी बात नहीं, वरन् वो जो नहीं आया, जिसके चले जाने से पल भर में हँसता खेलता उद्यान मरघट सा वीरान हो गया, इसके लिये उसे दुख हुआ।

यों माली अर्चना देवी का बहुत ही सम्मान करता था, क्योंकि पहले भी बीसों बार आने वाली यह नारी, उसकी भावी मालकिन और छोटे बाबू के श्वांस की फांस है, इसे वह अच्छी तरह जानता था। इसलिये अर्ची को सामने देख उसने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कदम बढ़ाये और मोटर से अटैची उतारी। अर्ची ने उसे देख टोका—"अच्छा तो रहा रे तेरे छोटे बाबू बीमार तो नहीं...?"

न जाने अर्चना के मुँह से अचानक ही कैसे निकल गया। उत्तर की प्रतीक्षा में दिल सहम सा गया, पर माली कुछ बोला नहीं। वस्तुतः इस कठिन परीक्षा के लिये वह तैयार नहीं था। फिर अर्चना के पास इतना धैर्य भी नहीं। वह हड़बड़ाई सी हवेली में, अंदर प्रविष्ट हुई, तो मोटर की ध्वनि सुनकर ही कमरे से हड़बड़ा कर आनेवाले मुनीम काका से रास्ते ही में भेंट हो गई। उन्हें देखते ही अर्चना पाँवों में लुढ़क पड़ी—"काका...अच्छे तो रहे न," गद्गद् होते हुए मुनीमजी ने बेटी को आशीर्वाद दिया—"सदा सुखी रहे मेरा बहू बेटा"—और फिर आने वाले विषम समय में कठोर परीक्षा देने के लिये

तत्पर से हो गये। अर्चना 'बहू-बेटा' शब्द से चौंकी नहीं। इस बात को वह अच्छी तरह जानती थी, कि अवि और उसका सम्बन्ध निश्चित हो जाने के बाद, वह जब जब भी यहाँ आई है, लोगों ने बहू-बेटा या 'बहूरानी' ही कहकर सम्बोधित किया है। इस शब्द को सुन—अर्ची के अंग-प्रत्यंग में मादक सिहरन हुआ करती थी, सो आज भी हुई, पर उसका स्पष्ट ज्ञान किसी को न हुआ। उसने मुनीम काका से एक ही श्वाँस में पूछ दिया—"काका, अवि ने आने के बाद मुझे चिट्ठी क्यों नहीं लिखी...? किस काम में डूबा रहता है वो...मैं, शिकायत का लम्बा चौड़ा चिट्ठा लेकर आई हूँ...तुम्हें...और बाबूजी को... निर्णय देना होगा।" सुनकर मुनीमजी जैसे लकवे से पीड़ित हो गये। अवि और हरदेव बाबू ..दोनों की आकृति मानस में घूम गई। अर्द्ध जागृतावस्था में मानो, कुछ भी न सुन वे हक्का-बक्का सा खड़े रह गये। अर्चना ने अपनी बातों का उत्तर न मिलने पर हवेली में, इधर उधर दृग-पात किया, तो कलेजा एक बारगी ही सन्न...से रह गया। न राग-रंग; न चहल पहल, न भृत्य-समुदाय का कोलाहल और न बड़े बाबू का रौबदार स्वर निनाद। श्री से हीन—हवेली विधवा की उजड़ी मांग के सदृश्य डरावनी मालूम पड़ी। अर्चना ने घबरा कर कहा—"काका...मेरी बात का जवाब नहीं दिया...वो लोग घर में नहीं क्या...यह कैसी शान्ति है, मुझे भय लग रहा है..." मुनीमजी की बूढ़ी आँखें रो पड़ी। जबरन आँसुओं का वेग अवरुद्ध

करने के प्रयास में, आँखें पोंछते हुए वो इतना ही कह सके—"सभी कुछ उजड़ गया रे बेटा...पल भर में हम लुट गये, और आज तक यह भी न जान सके कि इस बरबादी का कारण क्या था...किससे पूछूँ...?"

सुनते ही अर्चना ने जैसे बिजली का नंगा तार छू लिया हो, इसी तरह से चौंकी—"क्या कह रहे हो काका...अवि...और बड़े बाबू......"

"दोनों...ही हमें छोड़कर चले गये"—मुनीमजी रोते हुए बोले—"देहरादून से आने वाली शाम में ही, न जाने क्यों...किसी भिखारिन को लेकर बाप बेटे में झगड़ा हुआ...और अवि तो उसी समय चल दिया...बड़े बाबू...दूसरे दिन कहाँ गये...कैसे बताऊँ...न उसका ठिकाना...न इनकी खबर...जाते जाते मालिक ने काम भी सलटाने को कह दिया था...सब सलटा रहा हूँ...अर्ची...बेटा...हम मिट गये रे...सदा के लिये मिट गये...।" और मुनीमजी ढ़ाँ ढ़ाँ रोने लगे। अर्चना माथा पकड़ कर वहीं बैठ गई। मुंशीराम हतप्रभ सा खड़ा ही रह गया। माली अटैची रख, रुलाई आने से मुँह घुमाकर चल दिया। तनिक देर तो प्रलय काल का सा दृश्य उपस्थित हो गया। फिर अर्चना ने रुँधे गले से पूछा—"अवि की खोज की गई थी क्या?"

"नहीं बहूरानी"—मुनीमजी बोले—"बड़े बाबू कहते थे वह भूल तो नहीं गया, भुलाया गया है.. फिर मेरे रहते वह कभी

नहीं लौटेगा, यह मैं जानता हूँ...आना होगा तो स्वयं ही आयेगा—ऐसा उनका विश्वास था—इसीलिये तो...वो भी किसी अनजान देश को चल दिये...और हम अभागे यहाँ तड़-पते ही रह गये...।"

सुनकर अर्चना ने मस्तिष्क पर बहुत जोर दिया कि झगड़े का असली कारण ज्ञात हो जाय, पर निष्कर्ष कुछ भी नहीं निकला। हारी थकी बेजार सी वह, वहीं फर्श पर लुढ़क पड़ी—"काका, अब मैं क्या करूँ...?" और वह फूट-फूटकर रो पड़ी। मुनीमजी ने अपने आँसू पोंछ-धैर्य बँधाने का बहुत प्रयत्न किया—"ना बेटा, रोया नहीं करते...हम उन्हें ढूँढ़े बिना थोड़े ही रहेंगे...देख लेना...अभागा अवि...यहीं दिल्ली में कहीं...भूखा भटकता होगा...फिर बड़े बाबू भी...यही कोई काशी गये होंगे...चिंता काहे की रे...?"

सुनकर अर्चना और भी सिसकने लगी।

यों ही वेदना का ज्वार जब अल्पकाल के बाद कम हुआ तो उसने अपने कर्त्तव्य को स्थिर किया, कि वह पिता को फौन से सारी स्थिति बता, यहीं रहेगी...और अवि की खोज करेगी।

दूसरे दिन से अर्चना, अवि की तलाश में दिन रात भटकी। दर् दर् की ठोकरें भी खाई, पर उसे न मिलना था...और वह मिला भी नहीं। चौथे दिन हारी थकी अर्चना ने जब पिता से फौन पर बातें की तो वो बोले—"बेटा...अभी लौट आ...फिर विशेष सूत्र मिलने पर वृहत् पैमाने पर खोज करेंगे...

आखिर जायेगा कहाँ...यों क्रोध शांत होने पर स्वयं भी लौट सकता है।... परेशान होने की आवश्यकता नहीं।" और पिता की सलाह युक्ति संगत जान, अर्चना दूसरी कोई युक्ति न देख, पुनः लखनऊ ही लौट पड़ने को व्यग्र हो गई। फिर दिल्ली में उसका मन भी नहीं लगा। अतः वह यहाँ अधिक रूकती भी तो क्यों कर ?

× × × ×

दिल्ली के इस मजदूर मुहल्ले में अवि ने अपने जीवन को बहुत कुछ संयत और शान्त करलिया था। उचित समय पर पेरीवाल कम्पनी के दफ्तर जाना और नियत समय पर लौट आना, उसने दैनिक कार्य बना रखा था। राजू भी पूर्ण स्वस्थ हो चुका था। विजया की बहुत कुछ झिझक तो दूर हो गई थी, शेष भी विलीन होती जारही थी। अवि से यदा कदा हुआ सम्भाषण, शनैःशनैः अधिक खुलकर बात करने का साहस बढ़ा रहा था।

विगत पर यद्यपि दोनों ही मनन नहीं करना चाहते थे, फिर भी अंतर के घाव पूर्णतःशान्त नहीं हुए थे। यदा कदा स्मृति के छींटे उछलते तो अवि और विजया दोनों ही मर्म में वेदना का अनुभव कर, इस निर्णय पर पहुँते कि उनके घाव मिटे नहीं नासुर बनकर जड़ जमा चुके हैं, जो जीवन पर्यन्त पीड़ा का कारण बनकर रहेंगे। फिर भी जहाँतक होता दोनों ही सदा इस प्रयत्न में रहते कि वर्त्तमान ही चर्चाका विषय बने, विगत

से लगाव अच्छा नहीं। इस लिये विजया तो बिना विशेष ऊहा पोह किये, ऐसा समझ बैठी थी, कि भाग्य को जबतक यह रूप पसंद है, जीने से जी नहीं चुराऊँगी। वरना यों जब भी परिवर्तन की आवश्यकता होगी, उसे अपनाने में विशेष विचारना न पड़ेगा।

फिर अवि भी कुछ ऐसे ही विचार अंतर में पाल रहा था। हरदेव बाबू से बिछुड़ने के बाद, उसने एक दिन भी ऐसा प्रयत्न नहीं किया कि उनका हाल मालूम हो सके। अर्चना के विषय में उसने कभी न सोचा हो, सो बात भी नहीं। वह बराबर मानस लोक में उपस्थित हो, उस से अधिकार की याचना किया करती थी। पर न जाने क्यों वह अंतर में इस विचार को पालते जारहा था कि—अपने वर्त्तमान रूप में, उसके सन्मुख उपस्थित होना। अच्छा नहीं, फिर वह यह भी तो पूछेगी, कि पिता से इस दुराव का कारण क्या है? ये लाखों की सम्पत्ति छोड़, रास्ते का भिखारी बनना सँगत है क्या? और इस भिखारी को वह ठुकरा भी तो सकती है...। इन विचारों के अतिरिक्त मानस में न जाने यह भाव भी क्यों पनप रहा था—अवि है... पुराने सभी नाते रिश्ते तोड़...जीवन का आरम्भ नये सूत्र से कर। जब पिता का अटूट सम्बन्ध भी खण्डित होगया, तो अर्चना का भी त्याग करदे। ममता और मोह के सभी जीर्ण बन्धन तोड़......एक बार ससार में अपने नैसर्गिग रूप में आ निरानन्द का अनुभव कर, और अगर यह तुझ से सम्भव नहीं,

तो छोड़ दे नैया को लहरों की मर्जी पर... फिर देख...कौनसी जगह किनारा पाती है ?

तो अवि इसी अंतर धारा में लीन रह, अधिक विचार से घबराता था। विशेष लोगों के बीच रहने में भी, न जाने क्यों, उसे एक प्रकार का भय लगता था। तो दफ्तर से लौट कर वह घर से बाहर भी बिना आवश्यक कार्य के, न निकलना चाहता था। ऐसी अवस्था में बेचारी अर्चना क्योंकर उसे खोज पाती ? फिर मुनीम काका या अन्य को भी तो उसका कोई पता नहीं था।

घर आकर अवि, विजया से कुछ चीज वस्त लाने देने के बारे में बात भी किया करता था, और जब ऐसा कोई प्रश्न ही न रहता, तो या तो राजू से घड़ी भर हँस गा लेता, या फिर दफ्तर की ही कुछ फाइलें उठा लाता, जिन में डूब कर दिन बिता देता। यों फिर यह अवश्य सत्य था, कि विजया और अवि के बीच जो आदर सूचक शब्द –'आप' था...उसका शनैः शनैः विलोप हो रहा था। कितने ही अवसरों पर अब विजया भी अवि को 'तुम' ही कहलेती थी, तो अस्वभाविक नहीं जान पड़ता था। अवि तो उसे प्रायः विजया–या फिर विज्जी तक भी कहने लगा था। इस से विशेष भी दोनों ने दोनों के विषय में सोचा हो, ज्ञात नहीं पड़ता।

उस दिन अवि जब दफ्तर में था, तो न जाने क्यों चित्त तनिक उदास था। कार्य में मन न लगा, तो दैनिक अखबार का व्यर्थ सा ही अवलोकन करने लगा। अल्पकाल के पश्चात

ही दृष्टि अचानक एक समाचार पर गई—जो हरदेव बाबू की तीर्थ यात्रा के सम्बन्ध में था। अवि तनिक चौंका और साथ ही इस बात पर भी ध्यान गया, कि यह सम्बाद शायद मुनीम काका ने इसी हेतु प्रकाशित किया है, कि अगर अवि पढ़ले, तो बड़े बाबू के वैराग्य पर उद्भ्रान्त हो, दौड़ा चला आये। या फिर बड़े बाबू ने ही ऐसा सोचा होगा कि उस दिन की घटना के बाद, यह कभी सम्भव नहीं कि अवि यों ही उनके सामने चला आवे। अतः उसे लौटने के लिये वो तीर्थ यात्रा का ही कोई ढोंग रच कर देखें।

जो कुछ भी हो, समाचार पढ़ कर अवि इतना सोचने पर भी, विक्षिप्त हुए बिना नहीं रह सका। फिर कार्य में अब और उस का मन भी नहीं लगा। इसलिये उठकर, मैनेजर के कक्ष की ओर गया। सामने जाकर दबी आवाज में अवि बोला—"शायद जी अच्छा नहीं... अवकाश मिलजाता तो आभारी होता।" कह कर वह मैनेजर का मुख देखने लगा। वह बड़ा भला आदमी था। फिर अवि का सम्मान भी, उसके दो चार दिन के कार्यों ने ही, उसे करना सिखादिया था। अतः उसके अवकाश मांगने पर वो खिन्न नहीं हुआ। अवि की ओर जब दृष्टि डाली तो मैनेजर ने स्पष्ट अनुभव किया, कि युवक आवश्यकता से अधिक ही... अन्तर द्वन्द्व से पीड़ित है, सो वह बोला "घर जाइयेगा क्या...बुखार तो नहीं न...? जी अच्छा रहे तो कल आ ही जाइयेगा ..कलकत्ता ऑफिस खोलने पर परामर्श करना है..."

"जी अच्छा" और अवि शीघ्र ही कार्यालय से निकल पड़ा।

विजया जब तनिक आराम करने को उत्सुक ही हुई थी, कि अवि ने असमय ही प्रवेश किया। आहट पा, वह आश्चर्य में डूबी सी बाहर आई और अवि का चेहरा लाल देखकर घबरा सी गई। निकट आ उसने पूछा—"सवेरे ही लौट आये क्या? .. शरीर में ताप तो नहीं ...मुँह लाल है ?"

सुनकर अवि न जाने क्यों वेदना विदग्ध हो गया। बरबस ही आँसू ढुलक पड़े और उसने मुँह घुमा, बिना कुछ उत्तर दिये ही, कमरे में प्रवेश किया। अब तो विजया स्थिर न रह सकी। जैसे कोई महा अनिष्ट हो गया हो, ऐसी ही आशंका में, अवि के पीछे आई। पलंग पर बेसुध सा पड़ते हुए अवि, ढाँ ढाँ रोने लगा।

विजया हतप्रभ सी रह गयी। बहुत कुछ सोचने पर भी रुलाई का कारण न जान पड़ा। तनिक पलंग के निकट आ विजया ने अवि के माथे पर हाथ रखा, तो शरीर जलता हुआ मालूम हुआ। वह सिहर उठी और अनजाने ही सिर सहलाती वेदना विदग्ध हो बोली—"शरीर तो जल रहा है. आँसुओं से आग बुझेगी क्या...?...अगर फिर कोई महानाश का सम्वाद आया है. तो कह दीजिये...सब सह लूँगी।"...और विजया की आँखों से भी आँसू ढुलक पड़े।

अल्पकाल बाद अवि जब जी भर रो चुका, तो दिल कुछ हल्का हो गया। मन में विचार उठे—अरे तू रोया क्यों...? पर उत्तर किसी ने नहीं दिया।

विजया अब भी सिर सहला रही थी। आँखें बारबार जो भर आती थीं उन्हें पोंछकर वह रुलाई छिपाना चाहती थी, सो हुआ नहीं।

तनिक देर पूर्ण शान्ति रही। फिर अवि ने पड़े-पड़े ही विजया से कहा—"बाबू तीर्थाटन के लिये गये हैं, जानती हो क्यों...?"

विजया इस प्रश्न से अप्रतिभ सी हो गई। क्या जवाब दे, कुछ सूझ ही नहीं पड़ा। फिर भी बोलना तो था ही...

"सुना है...तीर्थ पुण्य कमाने ही लोग जाया करते हैं..." यह कहकर वह अविकी ओर देखने लगी। वह गम्भीर वाणी में बोला- "हाँ विजया, पर वो पुण्य बटोरने नहीं गये... बाबू को मैं जानता हूँ री...किये का प्रायश्चित करने की उन्हें आदत नहीं ..झुकना वो जानते नहीं वरना तो उस दिन भी पश्चात्ताप के आँसू ले अवि के सामने खड़े होते...तो...मेरे पुरुष को झुकना ही पड़ता...सम्भव था...तुम्हारा नारीत्व भी क्षमा सिन्धु को साकार कर लेता..."

विजया बीच ही में बोल पड़ी—"मैं उन्हें अवसर आने पर क्षमा कर दूँगी .."

"उस समय तक बाबू जिन्दा रहेंगे क्या ..?" "अवि बोला—"फिर मैं अभी उनकी ओर से कोई वकालत भी नहीं करता...अब तो जब मेरा मन भी उन्हें पिता के रूप में स्वीकार करने को तत्पर नहीं, तो बहस नहीं करूँगा, जहाँ तक क्षमा का प्रश्न है—वो कह देने मात्र से तो नहीं होगा न...?...

अगर किसी दिन...तुम्हारा जीवन बना सका, तो अधिकार समझकर नहीं...याचना के स्वर में मागूँगा दे सकोगी तो उसी दिन. क्षमा का दानकर देना...समझ लूँगा...जिसने मुझे पाल-पोसकर, चाहे किसी भी रूप में रहकर, इतना बड़ा बनाया, उनके उपकारों का बदला, पूरा नहीं तो, कुछ लौटा सका हूँ..."

सुनकर विजया अतीव गम्भीर हो गई। अवि का अन्तर उसे अथाह जान पड़ा। डरते डरते उसने पूछ दिया—"तो क्या आप कभी न लौटेंगे? बड़े बाबू ने तीर्थ यात्रा के बहाने... क्या आपके लौटने की याचना नहीं की?"

"की है विजया"—अवि बोला—"पर तुमने आसमान से टूटते तारे को देखा है न...पर्वत का परित्याग कर, समुद्र की ओर बहनेवाले प्रवाह की कथा भी सुनी होगी वे पुनः अपने उद्गम की ओर नहीं लौटते विजया..."

सुनकर विजया चुप न रही। उसने संयत स्वर में अवि के कथन का विरोध किया—"पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानने वाले ऐसा नहीं कहा करते, अवि बाबू...उनके मतानुसार जल की धारा उद्गम की ओर पुनः लौटती है।"

"हाँ विजया, इतना तो मैं भी उस सिद्धान्त को मानता हूँ, तभी तो अन्तर की यह अभिलाषा है कि इस जन्म में नहीं, तो किसी दूसरे ही जन्म में हरदेव बाबू का बेटा बनकर पैदा होता...और अब कि अल्पकाल में ही पितृ-वात्सल्य का सारा सागर अगस्त्य मुनी की तरह पी जाता, ताकि भाग्य के किसी

दोष के कारण फिर कभी ऐसी अवस्था उत्पन्न होती तो कोई भी साध बाकी न रह जाती...।"

सुनकर विजया का मन हुआ कि वह फूट फूटकर रो पड़े। अवि भी पुनः विक्षिप्त सा हो गया। फिर भी आँसुओं को, अबकी पलकों के बाहर आने की स्वीकृति, उसने नहीं दी। तनिक देर दोनों शान्त रहे। फिर विजया ने पूछा—"अब जी कैसा है ताप का भय हो तो...कोई डाक्टर का प्रबन्ध करना होगा न...?"

सुनकर अवि तनिक हँसा—"बीमार अभी नहीं पड़ूँगा—ऐसा विश्वास है, हाँ अन्तर की आग जरूर भड़क उठी थी... शायद उसी से ताप का लक्षण था"

विजया ने कहा—"यों दुखी होने से . और भी तो चैन से नहीं रह पाते ."

तनिक आश्चर्य से अवि ने विजया की ओर देखा। वह भी अनजाने ही सिहर सी गई। फिर अवि ने ही कहा—"अगर आग जलत ही रही, तो एक दिन भयानक विस्फोट होगा न...उस दिन हम कोई भी न बच सकेंगे...।" सुनकर विजया की आँखों में आँसू आ गये। वह घबराती सी बोली—यों ही दुख क्या कम है ..जो तुम . और बढ़ा रहे हो..."

अवि ने विजया के 'तुम' शब्द पर ध्यान नहीं दिया...वरन् वह तो, यह जानने को अधिक व्यग्र हुआ कि यह रो क्यों पड़ी। अपने कहे हुए शब्दों पर जब दृष्टि गई, तो वह उनमें

सुधार करने की नियत से बोला—"अब अधिक इस झमेले में नहीं रहूँगा...मन करता है तनिक सो लेता...तुम सिर सहलाना छोड़ दो..."

सुनकर विजया ने कहा—"क्यों...क्या सोने में बाधक हूँ ? फिर सिर का दर्द कैसे कम होगा ?"—"जैसी इच्छा"—कह कर अवि ने करवट बदल ली। विजया चुपचाप सिर सह-लाती रही। मानस में कितने ही विचार आये और गये, पर चित्त किसी एक पर, पल भर भी स्थिर नहीं हुआ।

मानस के इसी द्वन्द्व में अवि कब सो गया, विजया को यह ज्ञात नहीं हुआ, पर उसकी पलकें भी अनजाने ही बोझिल होगई थी। शनैः शनैः नींद ने घेरा और वह भी अवि के सिर निकट माथा रख, बैठे बैठे ही निद्रा वशीभूत हो गई।

धीरे धीरे दिन ढल रहा था। सूर्य की जवानी बुढ़ापे में तिरोहित हो रही थी। दूर क्षितिज पर पँछी शोर मचा रहे थे। संध्या का शुभागमन बस होने को ही था।

अचानक अवि ने करवट बदली और पलकें अनजाने ही खुल गईं। पता नहीं विजया के स्पर्श से उसे शान्ति अनुभव हो रही थी अथवा उसकी अवस्था ही सुधर चुकी थी, पर वह पूर्ण संयत ही था। निद्रा निमग्न विजया की ओर जब उस का ध्यान गया, तो एक बारगी ही सहानुभूति से वह द्रविभूत हो गया। मानस में विचार उठे—अरे...यों सोने में इसे पीड़ा हो रही होगी...सौम्य मुखड़े पर ये श्रम-सीकर, शायद परेशानी

के ही चिन्ह है.. या होसकता है—यह अपने मानसिक घात प्रति घातों से सुसुप्तावस्था में भी पीड़ित रहती हो। वस्तुत इस नारी ने आगोश में कितनी वेदना समेट रखी है . इस पर भी पाप के पंकिल कीड़े, इसे नर्क में ही ढकेलना, मानों अपना अधिकार समझ बैठे हैं। और अवि अत्यधिक समवेदना से सरस हो गया। अन्तर का प्रत्येक तार एक ऐसी रागिनी से मुखर होगया, जिसकी हर थिरकन में विजया के प्रति आकर्षण-कौतुहल-जिज्ञासा और मोह ध्वनित होने लगे। अवि के मन ने कहा पगले गिरते हुए का दामन थाम ले।

वह और भी कुछ सोचता कि अचानक राजू ने प्रवेश कर; दीदी को यों सोया देख झक-झोरा—"उठो ना...दीदी साँझ होगई, सोयी ही रहोगी क्या,?" विजया चौंक कर उठी, तो अवि ने अनजाने ही पलकें मूँदली। राजू भी न देख सका था। जम्भाई लेती विजया बोली—"अरे... मैं कब सोगई... राजू...रे शोर न कर, बाबू जाग जायेंगे न...?" अवि ने अभी अभी जागने का उपक्रम कर आँखें खोलदीं। विजया ने माथे पर हाथ रख ताप का अनुमान लगाने का प्रयास किया। अवि ने कहा—"अच्छा हूँ बिज्जी...जी करता है एक प्याला चाय मिलजाता तो स्फूर्ति लौट आती..." सुनकर विजया हड़बड़ाई सी उठी—"मैं अभी लाई ...।"

तो विजया बाहर चलदी और राजू अवि के निकट पलंग पर बैठगया। तनिक देर, कभी वह अवि की ओर देखता और

कभी कमरे की दिवाल की तरफ। फिर उठ कर बैठते हुए अवि ही बोला—"बोलता नहीं रे...नाराज है क्या ..?"

और राजू का सिर गोद में लेते हुए अवि प्यार से उस का माथा सहलाने लगा। राजू ने चंचल होते हुए कहा—"मैंने देखा—आप रो रहे थे।...किसी ने मारा था क्या ? दीदी भी आप को देख रो पड़ी ..ऐसा क्यों करते हैं बाबू .."

सुनकर अवि सहम गया। उत्तर के लिये वह प्रस्तुत तो था नहीं. सो राजू की ओर हास्य से देखते हुए अवि ने कहा "जब तुम हम से बोलते ही नहीं . ...तो रुलाई ही आयेगी न, अब तुम आगये तो देखो...हम कहाँ रोते हैं,।" राजू ने अतीव प्रसन्न हो कहा—"दीदी कहती थी...आप बाबू से लड़कर आये हैं...और मेरी बुखार आप ने ही दूर करदी अच्छा बाबू... आप घर से क्यों झगड़े...किसी ने कुछ कहा था क्या......?"

"नहीं रे, झगड़ा कहाँ हूँ ? दीदी ने झूठ कहा होगा।" राजू और भी चंचल होते हुए बोला—"नहीं—दीदी कभी झूठ नहीं बोलती...अम्मी कहती थी...मेरी दीदी परियों की रानी है...और रानी कभी झूठ क्यों बोलेगी...?"

अवि सुनकर हँस दिया—"हाँ रे हाँ...तू ही ठीक कहता है... अच्छा राजू ! तेरी अम्मी कहाँ गई रे..."

"मुझे नहीं मालूम"—राजू ने तनिक उदास होते हुए कहा— "दीदी कहती थी —वो मेरे लिये अच्छे अच्छे खिलौने लाने गई है, पर बाबू ! वो तो जंगल में सो गई थी, दीदी उसे वहीं छोड़

कर चली आई, कहीं वो खो तो नहीं जायेगी ?...दीदी ने बहुत जगाया था. पर वो उठी नहीं...अब तुम ला दो न...माँ को..."

"हाँ हाँ जरूर लादूँगा –" अवि ने गम्भीर होते हुए कहा। शायद विषय अच्छा नहीं छिड़ा। इसलिये अवि बोला–"राजू रे... तेरी अम्मी एक दिन जरूर आयेगी अच्छा तू देख तो दीदी ने चाय बनाई क्या...?"

और जैसे ही राज उठने को हुआ, विजया दूध का गिलास लिये उपस्थित हो गई। अवि ने चाय की जगह दूध को देखा, तो तनिक विस्मित हुआ—"चाय तो थी न फिर यह दूध "

"चाय की आदत ठीक नहीं...फिर यह खराबी भी करती है न ? मुझे अच्छी नहीं लगती"—सहमते हुए विजया ने कहा। अवि अनजाने ही बोल पड़ा—"पीनी मुझे थी—तुम्हारी अच्छाई-बुराई का प्रश्न क्यों कर उठा ?" विजया सुनकर धक् से रह गई। भय की सिहरन ले, उसकी पलकें एक बार अवि की नजरों से मिल गई। अवि को भी अब ध्यान आया कि शायद उसके शब्द संगत नहीं थे। अतः तनिक देर मौन रह कर वह विचारने लगा कि परिस्थिति का सुधार कैसे हो, पर तब तक तो विजया दबे स्वर में बोल पड़ी—"रोगी की इच्छा के अनुसार तो पथ नहीं मिलेगा न ? खान-पान के बारे में मैं कुछ नहीं सुनूँगी।"

विजया ने तो नजरें झुका ली, पर अवि, अचानक ही शब्दों में, शासन की सत्ता का अनुभव कर तनिक सिहरा। तबतक

विजया ने गिलास आगे कर दिया था। अनजाने ही किसी शक्ति के वशीभूत हो, उसने दूध का गिलास ले लिया। पुनः विजया की ओर देखते हुए बोला—"रोग तो बहुत पाल रखें हैं कितनों का सुधार करोगी? एक दिन उकता कर 'ना' तो कहना ही है, वरना तो तुम्हारे मार्ग का अनुसरण भला ही लगता, मन ऐसा कहता है।"

और अवि ने एक ही श्वाँस में सारा दूध पी लिया। मूक बनी विजया ने फिर ढालने का उपक्रम किया, तो अवि सहमता सा बोला—'मनाही की आज्ञा नहीं है क्या...? फिर भी व्यर्थ न आयेगा...राजू को पिलाये देता हूँ...।"

और राजू के अधरों से अवि ने गिलास लगा दिया।

विजया तनिक अधीर सी होकर बोली—"मैंने नारी के नखरों की कहानी सुनी थी, पर पुरुष के नाज का अन्दाज न था।"

सुनकर अवि चौंका—अरे, यह तो मुझ पर ही व्यंग्य है, और वह जब तक सम्हले, राजू ने गिलास खाली कर दिया। तनिक और भी दूध विजया के बर्त्तन में था, उसीको लक्ष्यकर अवि ने कहा—"राजू, यह बाकी का दूध भी पीले, वरना तुम्हें भी कुछ सुनना पड़ेगा—"और अवि ने ही गिलास में दूध ढाल दिया। विजया तनिक झेंप गई। राजू ने चंचल होते हुए कहा—'ना बाबा...मैं नहीं पीऊँगा.. दीदी पी लेगी—"

सुनकर विजया तो नहीं, अवि चौंका- "हैं...रे, दीदी को जूठा पिलायेगा क्या?"

"क्यों, क्या जात चली जायेगी"—विस्मित सी विजया बोली—"देखती हूँ, मुझे कौन रोकता है ?" और गट् गट् दूध विजया के कंठ से उतर गया। अवि भौंचका सा देखता ही रह गया। सोचने की मुद्रा बनकर भी न बन सकी। विजया ने जब पलकें उठा, उसकी ओर देखा, तो वह तिलमिला कर मुँह घुमा गया।

फिर योंही दिन बीतने लगे और विजया अवि के बीच की दूरी शनैः शनैः कम होती गई।
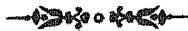
४

दिल्ली से विदा लेने के बाद, पल भर भी कभी हरदेव बाबू चैन की श्वाँस ले सके, याद नहीं पड़ता। दर दर भटके शहर गाँव अटके, पर मन पर से वेदना का भूत, कहीं भी, पल भर न उतरा, मथुरा-वृन्दावन में, कृष्ण के केलि-कुञ्जों में रस की अनुभूति कहाँ हो पाई ? कालिन्दी कूल के तप्त सिकता कण, मानस को ही नहीं अंग प्रत्यंग को झुलसा कर, मोह-ममता की रस माधुरी सोख लेना चाहते थे। जिन्दगी से हारा-थका जुआड़ी, कृष्ण की सलोनी प्रतिमा के सन्मुख खड़ा...फरियाद कर गया कि—जन्म-मरण देने वाले, या तो यह जीवन लौटाले या फिर इतनी ताकत दे, कि अन्तर का सारा प्यार उड़ेल एक बार फिर अपने को दाव पर चढ़ा सकूँ। क्या यह सम्भव नहीं कि हरदेव के पापों का प्रायश्चित, बची हुई उम्र में होसके ?'

लेकिन कौन था जो अन्तरात्मा की पुकार सुन पाता ? हताश निराश, हरदेवबाबू, भगवान् शंकर की पावन नगरी काशी में, गंगा के कछार पर कुटिया बना रहने लगे। अब भी साथ में रामू रसोइया और दीनू नौकर थे। वासना की रास इतनी शीघ्र कैसे कसा गई, जान नहीं पड़ा। कहते हैं नगराज के उत्तंग शिखरों से आने वाली पतित पावनी गंगा, अपने कलकल निनाद में संसारियों के लिये ऐसा स्वर्गीय संगीत मुखरित करती है, कि युगयुग से राग की राख के अंचल में दबी हुई विराग की चिनगारी पल भर में शरीर झाड़, मानव की आत्मा को परम ब्रह्म में लीन होने को अनायास ही उत्सुक कर देती है।

हरदेव बाबू के साथ भी ऐसा हुआ, यह पूर्ण सत्य नहीं, तो इतना निर्विवाद मानना होगा कि उसी दिन की घटना के बाद, सुरा और सुन्दरी की चितवन, पल भर भी उन्हें अपनी ओर उन्मुख न कर सकी। राग के प्रति वैराग्य जागा, पर अवि के प्रति मोह का रंग और भी गाढ़ा होगया। दिन रात, बेटे की स्मृति मानस को झकझोरा करती और बूढ़ा बाप, शरीर में एकसाथ ही हजार हजार बिच्छुओं के दंशन का अनुभव कर, कराहता और पीड़ा के दावानल में तिल तिल जलता। सेवक दीनू जब भी आँखों में लाख लाख आँसू ले कुछ पूछने की हिम्मत करता, सेठजी का भयावना चेहरा देख, अव्यक्त भय से सिहर कर रह जाता। न तो सेठजी ही किसी से बोलते थे और न दीनू और रामू ही कभी साहस कर उन्हें बुलाने का उद्योग

करते थे। दिन पर दिन शरीर बुढ़ापे के दलदल में धँसता जा रहा था, यह सभी अनुभव कर रहे थे।

संध्या की नीरव बेला में आज, न जाने क्या सोचकर सेठजी ने मौनता भंग कर, दीनू को आवाज दी। वह उन्मना सा तनिक देर से ही, उपस्थित हुआ। बड़े बाबू ने करुणा-दृष्टि से एक बार उसकी ओर देख कर कहा—"बोल कब जवाब क्यों नहीं दिया रे, मुँह में जुबान नहीं है क्या ?" दीनू लज्जित सा हुआ। उसने मालिक के आह्वान की अवहेलना की हो, सो बात नहीं, वस्तुतः यहाँ आने के बाद, सदा की मौनता से अभ्यस्त से दीनू ने, तमाकू पीते हुए, पहले यही अनुमान लगाया था, कि मति भ्रम के कारण ही उसे हरदेव बाबू के बुलावे का सदेह हुआ है, वरना तो उन्होंने पुकारा नहीं। लेकिन जब बड़े बाबू ने लगातार दो तीन आवाज दी, तब कहीं वह आ सका था। अतः मालिक के स्वर में तनिक रोष की गंध पा, वह इतना ही बोला—"कुछ चाहिये क्या...?...विश्वास नहीं कर सका कि आप बुला रहे हैं, फिर आप कभी पुकारते भी तो नहीं"

सेठजी सहसा ही अतीव व्यग्र हो वेदना विदग्ध होगये।

"दीनू ..मन नहीं लगता...क्या करूँ ...कहाँ जाऊँरे...कहीं भी शान्ति मिल सकेगी क्या ?"

"यों भटकने से अच्छा है, घर लौट चलिये मालिक...रोग जहाँ लगा है वहीं मिटेगा..."

"अब अपना घर कहाँ है रे.. दीनू...अपना तो सबकुछ

लुट गया . सब जलकर खाक होगया रे..."

और हरदेव बाबू अरड़ा कर रो पड़े। दीनू ने आँसुओं के टूटे हुए बाँध को. अवरुद्ध करने की हजार कोशिश की, पर क्षण भर भी वह रुका नहीं। संध्या के धूमिल प्रकाश में दोनों बूढ़े श्मशान से सुलग उठे। वातावरण बोझिल होगया। हिचकियाँ भरते हुए दीनू ने कहा—"छोटे बाबू बाप से बदगुमान ही रहेंगे क्या? मालिक...मेरा मन कहता है...लौट चलिये, वहाँ बेटा हवेली में आप के बिना बिलख रहा होगा.. कितना पत्थर दिल होगया है आपका उसे यों तड़पता छोड़ कर आना उचित था क्या?"

"तू नहीं जानता रे, अवि अब कभी नहीं लौटेगा। कौन सा मुँह लेकर जाऊँ? दीनू रे, मैं ने स्वयं ही तो आग लगाई है। एक बार, वो मेरे सामने आजाता, तो केवल इतना मांग लेता—जिद्दी बेटे, अगर इस बूढ़े के शब्द भूल नहीं सकता, तो इसे क्षमा करदे. अभागे गृहस्थी को जलता हुआ छोड़ कर न जा, पर वह निर्मम तो लौट कर भी कभी नहीं आयेग दीनू, मैं क्या करूँ?"

और हरदेव बाबू आँसुओं के सागर में डूब गये। दीनू वहाँ ठहर न सका, बिलखता हुआ रसोई घर की तरफ भागा। पलंग पर औंधे माथे गिर सेठजी कबतक रोते रहे, यह ज्ञात नहीं।

रात के ८॥ बजे रामू जब थाली परोस कर लाया तो हरदेव बाबू मुनीमजी को चिट्ठी लिख रहे थे—'अवि लौटकर तो नहीं आया है, यह मैं जानता हूँ ..पर मुनीमजी, एक दिन वह तुम्हें

मिलेगा जरूर.. ऐसा मेरी आत्मा कहती है रे। उस दिन अभागे से कहना—तेरा बाप नहीं, दुश्मन ही सही... लेकिन जिसने तुझे पाला-पोसा, उसकी बस इतनी ही इच्छा है...कि अपना घर बसा ले। अपराधी स्वयं ही पश्चाताप की आग में झुलस रहा है, फिर तू अपनी बरबादी क्यों कर रहा है?... इतना कठोर दिल तो नहीं, जो लाखों की सम्पत्ति होते हुए, तुम्हें दर् दर् भीख मांगता देख सकूँ?...अधिक दिन इस बूढ़े को नहीं जीना .बाबा विश्वनाथ, इतनी दया अवश्य करेंगे, कि यह पापी अब और भार बनकर न रहे।...मुनीमजी, बस इतना ही चाहता हूँ कि अवि, जीवन में न सही, मरण में अवश्य शरीक हो जाय। कितना सन्तोष मिलेगा मुझे जब मेरा अवि, मेरी चिता में आग लगा देगा? काश...मेरी यह इच्छा, बाबा विश्वनाथ पूरी कर देते। और क्या लिखूँ?

और बिना बछड़े के रम्भाती गाय की तरह, हरदेव बाबू विलाप करने लगे। 'रामू' टप् टप् आँसु गिराता, वहीं खड़ा का खड़ा रह गया।

बड़े बाबू ने जब मोड़कर काँपते हाथों से पत्र को लिफाफे में बंद करना चाहा, तो रामू ने धीमे स्वर में कहा –

"थाली ले आया हूँ, भोजन कर लीजिये।"

और सेठजी ने लिफाफा बढ़ाते हुए कहा—"खाऊँगा नहीं रे, ले यह चिट्ठी, सबेरे गिरा देना।...दीनू और तू खा ले...मुझे तो जरा भी भूख नहीं।"

"मालिक...ऐसे कबतक जिन्दा रहियेगा, एक तो यों ही रूखा सूखा मिलता है, वो भी वक्त पर नहीं खाइयेगा, तो कैसे काम चलेगा ? आप भूखे सोयें और हम .." रामू अधिक न बोल सका। रुलाई ने शब्द छीन लिये।

हरदेव बाबू और अधिक व्यग्र हो गये—"अब सब जलाओ मुझे . कह तो दिया भूख नहीं है, अगर मुझ अभागे के साथ तुम्हें भी भूख नहीं लगती तो मरो, खोटा भाग तुम्हारा भी है, जाओ.. मुझे अधिक न सताओ...।" सेठजी दुख के उभाड़ में बोल गये।

रामू निराश मन थाली वापस लिये, लौट गया। हरदेव बाबू अब खाट पर पड़े, सो एक ही करवट सारी रात काट गये। पल भर भी आँख लग जाती, तो बूढ़ा अपने को बड़ा सौभाग्यशाली समझता। लेकिन ऐसा हुआ नहीं।

तीसरे दिन मुनीम काका को, बड़े बाबू का पत्र मिला, तो पढ़कर कोहराम करने लगे। सूझ ही नहीं पड़ा कि अवि को कैसे और कहाँ पायें, जो बाप का पत्र पढ़ा, निर्मम बेटे का कलेजा छलनी कर दें ? काश, अवि मिल पाता, तो बाप के आँसू भरे इस पत्र से, उसके जिद की दीवार, बालू के भीत की तरह पल भर में ही गिर जाती...और बेटा दौड़ पड़ता, पागल सा, रूठे हुए बाप को मनाने।

तो ऐसा सोचते मुनीमजी सजल नयनों से ही, आज एक बार फिर, दिल्ली की खाक छानने निकल पड़े।

समय का संयोग अच्छा, या बूढ़े काका ने किसी भाग्य-शाली का सुबह सुबह सुन्दर मुखड़ा देखा, जो क्वीन्स रोड पर आते ही दफ्तर से लौटता हुआ अवि एकाएक ही सामने पड़ गया। ठिठक कर दोनों जो भौंचके से खड़े हुए, सो दो-एक मिनट तो खड़े के खड़े ही रह गये। अवि के अधर अनजाने ही फड़फड़ाये और 'काका' न जाने क्यों हाँफने लगे। नयनों में गंगा-यमुना की बाढ़ ले, हाथ फैलाये हुए एक बारगी ही मुनीम जी चीख पड़े—"बेटा रे...!!!"

और अवि को भुजाओं में जकड़, बूढ़े ने हजार हजार चुम्बनों से उसका दुलार किया। विभोर होता अवि, मुनीम काका की गोद में रो पड़ा। काका बिलखते हुए बोले—"कितना हैरान किया तूने? कहाँ छिपकर बैठा था रे—खोजते खोजते कमर टूट गई ।"

काका तो रोते रहे, पर अवि ने सड़क पर लोगों के उचक कर देखने से सहम कर, अथवा परिस्थिति के अनुरूप, अपने को संयत कर लेना उचित समझा।

"काका आओ, चलकर बातें करेंगे, वरना तो नाहक ही लोग हमें तमाशा बना रहे हैं...।"

"लोगों की परवाह करने वाले बेटे...इन्हें क्या पता कि बूढ़े को आज कितनी खुशी हुई रे...? चल मेरे साथ, अभागे! तेरा बाप काशी में तड़प तड़प कर मर रहा है...देरी की तो सूरत को भी तरसेगा।"

और मुनीमजी मानों जबरन अवि के साथ हो लिये।

गली में घूम, पार्क में घुसते हुए अवि ने कहा—"अच्छे तो रहे काका! अभागे बेटे की याद आती थी न . ?"

"घर को आग लगाकर पूछ रहा है, याद आती थी न... अच्छा तो होता जब हमारी चिता जल जाती, तब तू आकर कहता—ये कब मर गये ?"

"काका !!!"

और मुनीमजी की गोद में सिर डूबा अवि फफक कर रो पड़ा। बूढ़ा तो व्याकुल था ही, अवि की अवस्था से और भी व्यग्र हो गया।

"रो नहीं रे, अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा. चल, बाबू को काशी से मना लायें। वो तेरे आँसू देख, सारे अपराध भूल जायेंगे। हैं रे, तू उनसे झगड़ कर मेरे पास तो आ सकता था, अर्चना तेरे बिना जिन्दा भी है कि नहीं, भगवान जाने तू सबसे बदगुमान होना कब से सीख गया रे ? इतना निष्ठुर तो नहीं था तू ?"

अब अवि क्या कहता ? कैसे वह इस बूढ़े को बताता, कि घर उसने अपनी इच्छा से नहीं छोड़ा। अपनों का मोह पाश भी 'होनी' ने आप से आप ही काट दिया। फिर वह किसको दोष दे ? किससे फरियाद करे ? काका को कैसे बताये कि अब उसका लौटना उतना ही मुश्किल है, जितना, अधर से टूटे हुए तारे का। अतः बड़े बाबू, अपना प्रासाद और सबसे

अधिक अर्चना का रूप, मानस पट पर, अवश्य ही सजीव हो चलचित्र की तरह घूम गये, पर इन सब ने परिस्थिति को और भी अधिक बोझिल बनाया।

काका ने आँसू पोंछ कहा—"अरे तो अब गुमसुम ही रहेगा, या कुछ फूटेगा भी...इतनी तबाही के बाद भी, अगर तेरा स्वाभिमान अड़ा हुआ है, तो ले अभागे, यह बूढ़ा तेरे पाँव भी पकड़ेगा। हवेली का नमक खाया है, उसे तबाह होते नहीं देख सकूँगा ?"

"काका, यह क्या कर रहे हो ?" झुकते हुए मुनीमजी को अवि ने थाम लिया। पर कुण्ठा का व्यापार, अवि के अन्तर से मिट गया हो, ऐसा नहीं हुआ। वेदना में घुला हुआ वह अवश्य था, पर काका के प्रस्ताव को मान लेना, तो उसके लिये सहज नहीं था न ? अतः वह मुँह घुमाकर फिर आँसुओं के वेग को अवरुद्ध करने का प्रयत्न करने लगा। मुनीमजी थोड़ी देर तो ऊपा पोह में रहे, फिर अचानक बाप के रोष में बोल पड़े—"छोटे सरकार। दुलार से नहीं चलोगे, तो बूढ़े के शरीर में अब भी इतनी ताकत है, कि तुम्हें हवेली तक घसीट कर ले जाऊँ, बड़े बाबू के आँसुओं की अवहेलना कर तुम चले आये, लेकिन इस बूढ़े की जिद के सामने चले जाओ, तो जानूँ, उठ चलो...।"

सुनकर अवि ने विस्मय से काका की ओर देखा। नयनों में रोष से अधिक ममता का सागर लहराता मालूम हुआ। अवि का कलेजा, टुकड़े टुकड़े होगया।

मुनीमजी ने हाथ पकड़ कर जब अवि को सबल उठाने का प्रयास किया, तो वह बोला—"काका, जिद न करो, हवेली के दरवाजे, मेरे लिये बन्द होचुके ..वरना तुम्हारी बात टालता नहीं..." आश्चर्य से मुनीमजी चौंके—"क्यों रे, दरवाजे क्यों बन्द होगये, तू मुझे बहला रहा है क्या ? बापने एक दिन ऊँच नीच क्या कहदिया, तू मान के सिंहासन से गिरपड़ा ? जिस बाप ने पाल पोश कर बड़ा किया, तेरी कॉलेज की पढ़ाई उसे इतनी भी इजाजत नहीं देती, कि कभी भूले से तुझे ऊँच नीच कहदे, तो तू उसके प्राण पी कर ही दम लेगा ? मैं ये सब कुछ नहीं सुनूँगा . तुम्हें चलना होगा। कार बार मैं ने सब सलटा दिया है.. चलकर अपना हिसाब समझ ले, वरना किस के लिये कलंक लेकर मरूँगा ." अवि सुनकर अप्रतिभ होगया। मन ने कहा, यों पिण्ड न छूटेगा। अब क्या हो ? कैसे वह अपने झगड़े का असली कारण इन से कह पायेगा, वह इसी उधेड़ बुन में डूब गया। इधर मुनीमजी तो अधिक इन्तजार नहीं कर सकते थे न ? तनिक रोष में ही बोले— "तू कुछ बतायेगा भी...ऐसा क्या झगड़ा है, जो तू जिद लिये बैठा है...ले देख...बड़े बाबू ने काशी से क्या लिखा है, देखूँ कितना पत्थर दिल है तुम्हारा अब भी अड़े रहो तो जानूँ ?"

और अवि ने पुनः एक बार विस्मित हो, हरदेव बाबू का पत्र मुनीमजी से लेलिया। शंकित मन से जब पढ़ने लगा, तो फिर रुलाई आगई। मुनीमजी सूक्ष्मता से अवि के मुख का

भाव लक्ष करने लगे।

हिचकियों भर रोते अवि ने पत्र लौटाते हुए कहा—"काका, क्वीन्स रोड पर ११ नम्बर में पेरीवाल कम्पनी में आना... तुम्हारा अवि वहीं नौकरी करता है...मुझे अभी माफ करदो, तुमसे ही पूछूँगा...अगर सारी बातें सुनकर राय दोगे, कि मैं लौट चलूँ—तो विश्वास रखो अवि, अड़ा न रहेगा, इच्छा तो थी, तुम से भी नहीं मिलूँ .....पर अब, निर्णय तुम पर छोड़ दूँगा...आज मुझे माफ करो।"

और अवि अतीव व्याकुल हो, उठ चला। मुनीमजी भौंचके से उसे रोकते हुए बोले—"छोटे बाबू...जिद न करो...यों लौट कर गये तो, कल तक बूढ़े को जिन्दा न पाओगे...बाबू के पत्र का जवाब भी तुम्हें देना है...।"

अवि ने रुक कर वेदना के उफान में बस इतना ही कहा—"काका, उन्हें लिख देना, अवि ने आप की बात मान ली। मेरे सिवाय अब उनका है ही कौन? जीवन में न सही मरण में जरूर शरीक रहूँगा काका...जरूर रहूँगा..."

"अरे निर्मम यह क्या कह रहा है?"

पर अवि ठहरा नहीं, रोते हुए भागा। बेचारे मुनीमजी हत् प्रभ से देखते ही रह गये।

जब अवि दृष्टि से ओझल होगया, तो काका भुक्काड़ पाड़ रो पड़े। मानों उनकी वेदना से भींग कर सारा निर्जन पार्क भी उनके साथ ही कोहराम करने लगा, ऐसा ही जान पड़ा।

× × × ×

घर पहुँचने से पहले अवि ने अपने को बहुत कुछ संयत कर लिया। वह रास्ते में व्यर्थ सा ही चहल कदमी करता किसी ओर चल दिया था। जब मन बिलकुल स्थिर हो गया, तभी घर लौटा था।

विजया बरामदे में खड़ी, शायद अवि की ही राह देख रही थी। जब उसने प्रवेश किया, तो न जाने क्यों विजया को अवि के मुख पर वेदना की कालिमा घिरी हुई सी जान पड़ी। वह तनिक शंकित मन से उठ, समीप आई, तो हाथ आप से आप ही माथे पर पहुँच गया। वह गर्म नहीं था, यह अनुभव कर, अव्यक्त संतोष की लहर विजया के अधरों पर दौड़ गई। अवि ने कोट खोल, विजया की ओर बढ़ाते हुए अनुभव किया कि शायद वह अपनी विक्षिप्तावस्था को तिरोहित करने में असफल ही रहा है। फिर भी हास्य के लहजे में बात टालने के प्रयास से ही वह बोला—"सब दिन तो ताप माथे ही पर असर नहीं करता न विज्जी। शरीर के अन्य अंगों पर भी तो आघात होता है किस किस का परीक्षण करोगी ?"

सुनकर विजया तनिक सहमी तो अवश्य, पर बाल सुलभ चपलता में बोले बिना न रह सकी—" लेकिन अभी चिन्ता का विषय तो नहीं, स्वर में दर्द का आभास कहाँ... मुख की मलिनता, कार्य लीनता का सूचक भी तो हो सकती है ?"

"हाँ, पर मन की व्यथा का परिचय कैसे पाओगी...अंतर के पृष्ठ पढ़ लोगी क्या ?"

विजया ने झेंपते हुए कहा—"सुना है, सागर के अंतराल में उठनेवाली लहर भी किनारे से अवश्य टकराती है।...मन की व्यवस्था ऐसी नहीं है क्या ? फिर कुछ छिपाना चाहोगे, तो जान भी कैसे सकूँगी ? यह पानी पड़ा है। हाथ मुँह धोने से कुछ बिगड़ेगा नहीं ? देर से लौटने का कारण भी बताना है, सो जान रखना।"

अवि ने स्पष्ट जान लिया, कि वह पकड़ा गया है। विजया से कुछ छिपा लेना, सहल तो नहीं, कारण मन की दुर्बलता को वह पहचान गई है। अतः तनिक गम्भीर होता हुआ अवि मुँह धोते हुए बोल पड़ा—"अवि का तुमसे कुछ छिपा है क्या, जो आज दावा करूँ ? पल भर की छलना को, अपराध की संज्ञा दे दोगी, तो अवि स्थिर न रह सकेगा। अपनी कमजोरियों के साथ ही कभी अपनाने की याचना करूँगा ..अब यह दूध का प्याला दे ही दो न...?" टेबुल पर पड़े प्याले की ओर संकेत किया। और अवि तो दूध पीने लगा, पर विजया आवश्यकता से अधिक ही चंचल हो गई। अवि का पुरुष आज अनजाने ही भिक्षुक के रूप में, यों उपस्थित होगा, उसने कभी नहीं सोचा था। अवि के प्रश्न का क्या उत्तर दे, यह उसकी समझ में नहीं आया। तनिक देर उसका मुखड़ा देख विजया बोली—"समर्पण की भावना, पुरुष में भी है, इसे भूलूँगी

नहीं। 'याचना' की पूर्ति के लिये मनको परखना है। फिर यह तो नहीं बताया कि देर कहाँ हुई...?"

"कैफ़ियत लेकर ही रहोगी क्या ?"—अवि ने प्याला सरकाते हुए पूछा—"विजया मेरे मुनीम काका हैं री! बचपन से दुलारने वाले उस 'काका' को, मेरे गृह-त्याग से अत्यधिक दुख हुआ है। वो ही मिल गये थे; घर लौटाने की जिद उनकी भी थी। कारण उन्हें ज्ञात नहीं, इसलिये रो पड़े थे। मन तो करता था—इस कुण्ठा का अंत ही क्यों न कर दूँ...? पर ऐसा हुआ नहीं...स्वयं वेदना विदग्ध हो भाग आया...और क्या करता मैं ?"

सुनकर विजया को हुआ कि वह भी नयनों में हजार हजार आँसू ले यही तो याचना, अवि से करे कि वह घर लौट जाय, पर साहस नहीं हुआ। अवि ने एक बार उसकी ओर देखते हुए अपने को तनिक सजल बना, कहा—"बाबू ने सारी जायदाद बेच दी है री। काका कहते थे—चलकर हिसाब ले लूँ, ऐसा ठीक है क्या ?"

"मन माने तो सभी ठीक है—" अप्रतिभ होती विजया बोली—"पर तुम ऐसा करोगे नहीं न ? थोते मान की केंचुली को उतार फेंकना सहज तो नहीं ? ऐसा कह दूँ क्या, कि तनिक झुकने के भय से तुम सदा के लिये दुख अपना रहे हो ?"

"नहीं विजया, वास्तव में उस बनावटी दुनियाँ में नहीं लौटूँगा। एक अर्चना से भी सम्बन्ध था, जो कॉलेज के दिनों

से ही साथ चली है, पर आज, न जाने क्यों, उसका लोभ भी मुझे नहीं होता, सब कुछ त्यागकर देखूँगा, मन का ऐसा ही आदेश है री।"

विजया, अवि के स्वर में दृढ़ निश्चय का आभास पा, दुखी ही हुई। मन ने कहा—अरे, यह तो घर गृहस्थी ही नहीं, और भी बहुत कुछ त्याग रहा है। मुमकिन है—अर्चना का भुलाना सहज नहीं हो। यह कौन है ? फिर उसे क्यों ठुकरा रहा है ? कहीं इसे कोई और लोभ तो नहीं, लेकिन कैसा लोभ...?

वह और कुछ सोचती कि अवि ने न जाने क्या सोच कर बीच ही में टोक दिया—"अच्छा विज्जी, तुमने सौतिया डाह का नाम सुना है न...? कभी अनुभव हुआ है क्या ?"

विजया चौंकी—अरे, कहीं अनजाने ही अर्चना का नाम सुनकर, उसके मुख का भाव तो नहीं बदला न, जो अवि ने यह अप्रासंगिक प्रश्न छेड़ा ? पर वह इस शंका का समाधान न कर सकी। हास्य के लहजे में बोली—"सौतिया डाह के साथ ही मैंने पत्नी की लघुता को, मां की ममता में तिरोहित होते भी देखा है। होठों पर दूध लगा है...कोई गोपी, कृष्ण के स्वार्थ की कहानी न कह दे ..."

अबकी अवि के सहमने की बारी थी। झटक कर विजया की साड़ी ही में मुँह पोंछ कर वह बोल पड़ा—"साची के लिये तो तुम हो ही, यह भी कह दो, पर यह बताना मत भूलना कि बँटाईदार कोई खड़ा ही नहीं हुआ। वरना तो अवि सदा से

किसी के सहारे ही चला है। अकेला कभी रह सकूँगा, इसका अनुभव नहीं हुआ। देख लो ना . अर्चना क्या गई...मेरा खाता फिर बराबर हो गया। जितना देन है, लेन, जरा भी कम नहीं, तुम्हारी क्या राय है ?"

विजया जान गई कि अवि उसके मन की थाह लेना चाहता है। पर 'क्यों' इसका उत्तर उसे, सूझ नहीं पड़ा।

"राय किसी दिन दूँगी—अभी तो राजू को ढूँढ़ लाना ही अच्छा है...वरना किधर चल दिया तो..."

"अरे बाबा"—अवि उछला—"आफत अपने ही सिर आने वाली है। वकील के बिना, अपना तो मुकदमा ही ख़ारिज हो जायगा।"

विजया खिल खिलाकर हँस पड़ी। अवि ने अनुभव किया, जैसे कि फूलों की बरसा हो गई हो। घर-आँगन खिल गये। वह स्वच्छ मेमने के हास्य का, आज पहले पहल उपभोग कर सका। विजया ने उसी मधुरिमा में कहाँ—"इतना कमजोर मुकदमा है तो संधि पहले ही क्यों नहीं कर लेते ? गिरकर भी काम बन जाय तो बुरा है क्या ?"

"मुकदमा तो कमजोर नहीं, पर हाकिम का स्वभाव जान, पेशी हो, तो सफलता की अधिक संभावना रहती है बिज्जी ? जहाँ तक गिरने का प्रश्न है, सो विश्वास रखो, समय आने पर पाँव भी पकड़ लूँगा पर इस बार हार स्वीकार कभी नहीं करूँगा..."

न जाने क्यों विजया विभोर हो गई। 'लाज के लहंगे में सिकुड़ कर, उरहुल के फूल की तरह काया कसूमल बन गई। अवि ने सजल नयनों से जब देखा, तो विजया की पलकें स्थिर न रह सकी। वह छुई मूई सी वहाँ से टल जाने का बहाना ढूँढ़ रही थी कि अवि यह कहता हुआ बाहर चल दिया—' लज्जा का अवगुण्ठन सरस भी है, यह मैंने आज जाना...राजू रे...कहाँ चल दिये ?" और अवि तो चला गया, पर विजया उतनी सी देर में ही बहुत कुछ सोच गई। किसी निर्णय पर भी पहुँची हो, ऐसा ज्ञात नहीं हुआ।

अवि जब राजू का हाथ पकड़े लौटा, तो न जाने क्यों वह अत्यधिक हँस रहा था। विजया अप्रसन्न होती सी गर्जी—"इतना हँसेगा तो, फिर रोयेगा कौन ?"

"हँसने वाले को रोना जरूरी है क्या ?"—बीच ही में अवि ने पूछ दिया। इस व्यवधान से विजया अनजाने ही क्रोधित हो गई—"हाँ इसी हँसी ने तो सब कुछ जला दिया चुप भी रह अभागे...।"

"विजया...???"

और विजया स्तम्भित रह गई। एक बार विस्मय से अवि की ओर देखा, जो अनजाने ही रोष से हाँफ रहा था।

फिर अवि ही बोला—"मैं नहीं जानता, तुझे डाँटने का मुझे कितना अधिकार है ? पर इतना अवश्य कहूँगा, कि विगत को शायद तुम कभी न भूलोगी। यों बार बार कुरेदने से, दबी

हुई आग, कभी शोले बन भड़क उठेगी न ? उस दिन अकेली ही जलोगी, इस भ्रम में न रहना।...कोशिश कर विगत को भूल क्यों नहीं जाती विजया ?"

विजया की आँखें भर आईं। वह मुँह घुमाकर रो पड़ना चाहती थी। अवि भी स्थिर नहीं था। वातावरण अनजाने ही वेदना का दुकूल ओढ़, बोझिल बन गया। राजू सहमा हुआ सा कमरे में चल दिया। अवि ने साहस कर पूछा— "वर्त्तमान को सँवारने में साथ मैं भी दूँगा, हो सके तो ऐसा विश्वास कर लेना . तुम कौन और 'क्या' हो, यह मन ने नहीं पूछा . कभी याचना का भाव जगेगा, तो उस दिन को बड़े सौभाग्य का समझूँगा..." अवि तो कहकर चल दिया। पर विजया अपनी स्वभाविक अवस्था में न रह सकी। मन ने पूछा—जिस याचना के सिंहासन पर अवि तुम्हें देखना चाहता है, उस पर बैठेगी क्या ? अपना हत भाग लेकर, कहीं उस के पंथ में काँटे बिखेर दिये, तो जन्म जन्मान्तर, अभागा तड़-पेगा ? विजया, तुम्हें शीघ्र ही निर्णय देना पड़ेगा कि अवि को अपना लेगी क्या ? उसके चरणों की धूलि, मांग का सिन्दूर बनेगी या आँखों की किरकिरी, इसको अच्छी तरह से तोल ले। वरना कहीं गलत कदम उठ गया, तो अब कि अवि जिन्दा न बच सकेगा, तेरा भी अस्तित्व सदा के लिये विलीन हो जायगा।

और विजया अत्यधिक परेशान सी गम्भीर चिन्तन में लीन हो गई। चलती हुई हवा मानों दम साधकर उस साधिका

के चिन्तन में बाधा नहीं पहुँचाना चाहती. ऐसा ही जान पड़ा।

× × . × ×

दूसरे दिन फिर बूढ़ा मुनीम अवि से मिलने चल दिया। बेचारा रात भर सो न सका था। बड़े बाबू का पत्र पढ़कर, अवि ने जो कहा था, कि बाबू को लिख देना, अवि उनकी चिता में अपने ही हाथों आग देगा, यह कथन ही सब से अधिक मुनीमजी की अशान्ति का कारण बना। उनकी समझ में ही नहीं आ रहा था, कि बेटा इतना शीघ्र 'क्यों' और 'कैसे' बाप से बदगुमान हो गया। एक दिन वो भी था, जब मालिक 'टाइफ़ायड' से पीड़ित हुए थे, इसी अवि ने रो रो कर तन को गला डाला था। यहाँ तक कि स्वयं बीमार हो गया। और आज वही बेटा न जाने क्यों, कहता है कि जीवन में नहीं, मरण में सामिल हो जाऊँगा। वस्तुतः इस दुराव का ऐसा तो कोई कारण नहीं हो सकता? माना कि, किसी बात विशेष को लेकर बाप-बेटे में झड़प हुई। क्रोध में बड़े बाबू ने कह दिया होगा— नालायक, मेरी आँखों से दूर हो जा...या मैं तेरा मुँह नहीं देखना चाहता। तो क्या इत्तीसी बात के लिये अवि इतनी जिद्द पकड़े हुआ है? फिर इसका निपटारा कैसे होगा?

मुनीमजी ने इस समस्या पर बहुत कुछ सोचा था, पर निर्णय इसी बात पर छोड़ दिया था, कि कल अवि से मिलूँगा और झगड़े का कारण जानकर ही, कर्त्तव्य का निर्धारण करूँगा। वरना तो ऐसे हो ही क्या सकता है? तो हवेली

से चलकर, अवि के बारे में बिना किसी से जिक्र किये ही, वो दो बजे तक पेरीवाल कम्पनी में पहुंच गये।

यह कम्पनी 'एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट' के व्यवसाय में, बस कदम ही बढ़ा रही थीं। पन्द्रह-बीस कर्मचारी भी होंगे और अवि उन्हीं में से एक एकाउन्टेन्ट के पद पर अवस्थित हुआ था। इसी के कार्यालय में आने पर, काका को पता चला कि अवि, अभी मालिक के कक्ष में है। मुनीमजी को प्रतीक्षा करनी होगी। यह बात उन्हें बहुत खटकी। भला जो स्वयं लाखों का स्वामी है, आज एक अदने से आदमी की गुलामी कर रहा है। यहाँ तक कि अपने 'काका' को भी उससे मिलने के लिये प्रतीक्षा करनी होगी। और वो अनजाने ही झुँझला उठे।

तनिक देर इन्तजार करने पर अवि जो आया, तो मुनीमजी का क्रोध उसी पर एक बारगी बरस पड़ा—"यही है न .. अभागे, तेरी नई जिन्दगी का नमूना? जिसके दर पर हजारों पानेवाले मुनीम गुमास्ते हैं, वो आज मामूली मुलाजिम है।.. मुझे भी तुमसे मिलने के लिये समय नियत करना होगा?.. छोटे बाबू, मैं यह नहीं सह सकूँगा तुम्हें अभी ही चलना होगा।"

सुनकर अवि हँस दिया—"अरे काका, नाराज क्यों होते हो? चल तो रहा हूँ ..मैं तो बस तेरी ही प्रतीक्षा में था आलोचना से पूर्व लोगों का तो खयाल करो"

"बड़े आये हैं ये लोग? मुझे ऐसे ऐसे, तेरे राज में सलाम करते हैं रे, लेकिन क्या करूँ...अपना ही सिक्का खोटा है ..तो

परखने वाले को क्या दोष दूँ ..." और वो भन्नाए से अवि को खींचते हुए बाहर चले आये। मुनीम की इस अवस्था पर, अवि, न जाने क्यों रंज नहीं हुआ। उसे तो एक प्रकार की प्रसन्नता ही हुई। काका को लिये फिर वह निर्जन स्थान की ओर ही चल पड़ा। कारण, वह जानता था, कि उसे आज मुनीमजी को शायद पिता से दुराव की वजह भी बतानी पड़ेगी और वह स्वयं भी उनका निर्णय सुनेगा, सो चलते हुए उसने काका से कहा—"चाहो तो घर ही चलकर बातें करूँ बस सलीमपुर में मोड़ घूमते ही है। वहाँ विजया भी है काका! शायद मेरे कथन की पुष्टि के लिये प्रमाण की आवश्यकता होगी, तो उसे ही उपस्थित कर दूँगा। फिर तुमने जिस नये जीवन की आलोचना की है, काका, उसे मैंने पसन्द करके ही अपनाया है। सच कहलाओ तो कह दूँ कि तुम्हारे वासनामय नर्क से, यह जिन्दगी बुरी नहीं–यहाँ अबलाओं के सतित्व का अपहरण तो नहीं होता।"

"छोटे बाबू ???"

और मुनीमजी हतप्रभ से ठहर गये। अवि ने उन्हें मानो जबरन ले चलते हुए कहा—"बिगड़ो नहीं काका, मुझे बहुत दिन तक भुलावे में रखा गया है।...आज तुमसे भी पूछूँगा कि अवि को अपने से इतनी दूर रखने में, बाबू का वो भय नहीं था क्या, जो उन्हें मेरी उपस्थिति में रास रंग की महफिल आबाद करने से रोकता था ?...क्या तुम नहीं जानते कि हवेली

के कोने कोने से, लुटी हुई अबलाओं की आहें निकल रही हैं ? काका अब तुम मुझे नहीं छल सकोगे ।"

सुनते ही मुनीम जी को साँप सूँघ गया। वस्तुतः जिसे मालिक की नमक हलाली में, वो आज तक अवि से छिपाये रहे वो अपने नग्न रूप में, शायद अवि के सम्मुख उपस्थित हो गया। पल भर तो काका को यही मालूम पड़ा कि धरती फट रही है और वो उसमें समा रहे हैं। लेकिन दूसरे ही क्षण, वर्षों के बने उस संस्कार ने उभाड़ खाया, जो सदा दोष निर्दोष में मालिक की ही वकालत करता है और उसीको संबल बना वो अवि के साथ 'पार्क' में घुसते हुए बोले—"अवि रे, तू ने दुनियाँ नहीं देखी, दौलत, विलाशिता की सहचरी है बेटा, बड़े मालिक की शान शौकत को तुमने शक की नजरों से देखा है, वरना वो तो गरीब निवाज हैं रे ।"

निर्जन में बेंच पर बैठते हुए अवि को. काका के कथन पर रोष हो आया—"काका, झूठी वकालत न करो तो अच्छा है... बड़े बाबू के गुनाहों की जिन्दा तस्वीर, मेरे साथ है...।"

"तेरे शब्द पल्ले नहीं पड़े रे...क्या पहेलियाँ समझा रहा है...साफ साफ क्यों नहीं कहता...?"

और अब तो अवि अपने को जप्त नहीं रख सका। काका के मुख पर आँखें गड़ाते हुए गम्भीर वाणी में बोला—"चौंक न पड़ना काका, प्रमाण के साथ ही बोल रहा हूँ। मेरे लौटने वाली संध्या को भी, तुम्हारी हवेली में पाप हुआ था, जब

इसका कारण जानना चाहा, तो तेरे बड़े बाबू ने मेरे अधिकार को यह कह कर ललकारा, कि मैं भी पाप की औलाद हूँ, उनका बेटा नहीं, फिर मुझे क्या हक़ है वजह पूछने का ? तो काका, अवि उसी दिन चला आया था...''

मुनीमजी चिल्लाये—''यह सब झूठ है...बेटा ..तेरा मति भ्रम है...बड़े बाबू ऐसे नहीं थे ।''

''घबराओ नहीं काका, अवि का और भी निर्णय सुन लो—बाबू ने जिस लड़की का जीवन बरबाद किया है, उसीके साथ मैं रहता हूँ...होगा तो किसी दिन शादी भी उसीसे करूँगा ।''

यह मुनीमजी पर भयानक वज्राघात हुआ। विस्मय और क्रोध के सन्निपात में, बौराये हुए से वो बोले—''एक इज्जत लुटी हुई छोकड़ी से तू शादी करेगा ? अभागे ! तू पागल तो नहीं हो गया ? खानदान की मान मर्यादा सबको भूल गया...तू आवारा हो गया नालायक...उस डाइन ने तुम पर डोरे डाल दिये क्या ? मैं तेरी एक भी मन चीती न होने दूँगा ...गर्दन दबोच दूँगा उस लड़की की ।''

काका के बौराने पर अवि को विस्मय नहीं हुआ। उसे तो उनकी ऐसी अवस्था का अनुमान था ही। अतः मुनीमजी तो हाँफ रहे थे, पर अवि केवल उनकी ओर साधारण अवस्था में देख ही रहा था। तनिक देर चुप रहने के बाद, काका एकाएक अतीव व्यग्र होकर गर्जे—''बाबू हार मानकर चले गये... लेकिन मैं नहीं मानूँगा रे...जान रख, मेरे जीते यह शादी

कभी नहीं होगी...मैं गला घोंट दूँगा तुमलोगों का..."

अवि तनिक हास्य के लहजे में बोला—"देर क्यों कर रहे हो काका ! मैं तो सामने ही हूँ, घर चलो तो विजया भी मिल जायगी...दोनों का आज ही गला घोंट दो—वरना चुप के से शादी हो गई तो...?"

"चुप रह अभागे...मैं तेरी सूरत भी नहीं देखना चाहता, चला जा यहाँ से।"

"लो मैं तो चला काका...पर बड़े बाबू को भी बुला लो, तो अच्छा हो, वरना बूढ़ी हड्डियाँ शिथिल हो गई हैं...बस न चलेगा...।"

और अवि तनिक मुस्कुराता सा जाने लगा, तो मुनीमजी ने भुक्काड़ फाड़ रोते हुए कहा—"अरे कहाँ चला निर्मम...क्यों जला रहा है...अपना इरादा बदल क्यों नहीं देता...?"

और अवि केवल इतना ही कह कर चल दिया—"काका, ठंढे दिल से विचार कर, कभी घर आना, विजया से मिलने के बाद, अगर ऐसी ही आज्ञा होगी, तो जान रखो, अवि मान लेगा। अभी क्या बात करूँ ? तुमसे कुछ छिपाऊँगा नहीं... और यह भी विश्वास रखो, कि अभी अवि ने शादी का कोई विचार नहीं किया। वो तो मैंने यों ही कह दिया था। बिना तुम्हारी राय के, कुछ करने का अवि में होसला है क्या ?"

तो मुनीमजी ने उस दारुण वातावरण में भी अव्यक्त संतोष का अनुभव किया। अवि जब चला गया तो मुनीमजी

बूढ़ी आँखें पोंछ, पार्क की निर्जनता में गर्म गर्म उसाँसें भरने लगे। आज फिर अवि उनका चैन छीन, एक नया रोग देकर चला गया। अभागा मुनीम, फिर रात भर, इस नयी समस्या पर चिन्तन करेगा, और सोच-सोचकर, सारी रात आँखों में ही काट देगा। जब नियंता की ऐसी ही इच्छा है, तो अपना क्या बस है, यही सोचकर मुनीम जी उठ चले।
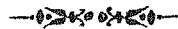
५

दिल्ली से लखनऊ लौटकर अर्चना, एक दिन भी आराम से नहीं रह सकी। अवि के असम्भावित, वियोग ने दिल पर इतना प्रबल प्रहार किया, कि अर्चना उसकी पीड़ा से नींद में भी कराह उठती थी। मोती बाबू से परामर्श कर दो चार योजनाएँ भी बनाई, पर किसी निर्धारित सूत्र के आभाव में, सफल एक भी नहीं हुई। अब अर्चना करे तो क्या ?

अवि के विषय में, विशेष चर्चा करने का साहस, उसमें नहीं था। कारण, एक दिन जब वह अत्यधिक उदास हो पिता के निकट बोली थी—"मैं उसे ढूँढ़ने जाऊँगी बाबू... वह नहीं मिलेगा तो मेरा क्या होगा ?"

इसका उत्तर सेठ मोतीलाल ने यही दिया था—"जो स्वयं छिपता फिरता है, उसे कैसे ढूँढ पाओगी, दुनियाँ छोटी तो नहीं

बेटा ? फिर जब अवि ने यह नहीं विचारा कि घर छोड़ने से पहले, हमें खबर देना आवश्यक है, तो हम हीं उसके पीछे कहाँ तक मारे मारे फिरें ? सच तो यह है बेटा, कि जब हरदेवलाल को अपनी शान का गुमान है, तो मैं पावों में पगड़ी रखने तो नहीं जाऊँगा न ? तेरे लिये पात्रों की कमी नहीं।"

अर्चना पिता के सम्भाषण से दुखी हुई। जी तो करता था, पिता से कह दे कि अवि को भुला देना, अर्चना के लिये इस जीवन में सम्भव नहीं, पर वह बोली कुछ नहीं। चुपचाप निराश मन पिता के कक्ष से लौट आई।

तो उस दिन के बाद, बाप-बेटी में अवि को लेकर; चर्चा नहीं छिड़ी। अर्चना तो अव्यक्त भय से चुप रहती थी और पिता शायद इस विषय को पसन्द ही नहीं करते थे। इसलिये दोनों, दोनों से एक प्रकार से खिंचे हुए थे। अचानक काशी से हरदेव बाबू के पत्र ने आकर, आज पुनः अर्चना के साहस को, पिता के सम्मुख चले आने का संबल दिया।

"पिताजी, बाबू का काशी से पत्र आया है, मुझे बुलाया है।" कक्ष में प्रवेश कर अर्चना ने कहा और अखबार पढ़ते हुए पिता का मुख जिज्ञासा से अधीर बनी देखने लगी। एक बार नजर उठा मोती बाबू ने, दुलारी बेटी के सलोने मुखड़े पर वेदना के शत शत बादल मड़राते देखे और स्वर में संवेदना का रस घोल बोले—"क्या लिखा है मेरे मित्र ने ? चुपचाप गृह-त्याग का कारण तो बताया होगा न ?"

"यह सब तो कुछ नहीं लिखा—केवल इतना ही है कि—दिल्ली छोड़ने के बाद घड़ी भर चैन से सोने के लिये, तड़प रहा हूँ बहू बेटा ! अवि मेरे पास नहीं आयेगा रे...अब तू ही है, जिसकी सूरत देखकर चैन पा सकता हूँ...। अगर एक बार आ जाओ, तो तुम से बहुत कुछ कहूँगा...। वरना बहू बेटा, जान रखना यह बूढ़ा अधिक दिन का मेहमान नहीं..."

और पत्र की पंक्तियाँ पढ़ अर्चना ने पिता के मुख की ओर देखा। उनकी आँखों में न जाने क्यों आँसू भर आये थे, जिन्हें पोंछते हुए बोले—"तुम चली ही जावो बेटा, दिल तो करता है, इस गर्दिश में चल कर, अपने दोस्त को गले लगा लेता... पर क्या करूँ,न तो जी ही अच्छा और न कार बार ही इतना अवकाश देता कि तेरे साथ चलूँ.... मेरी ओर से क्षमा मांग लेना...और हो सके तो उन्हें यहीं ले आना...ताकि अवि को खोजने का प्रयास किया जा सके।"

अर्चना पिता की वाणी सुन अत्यधिक प्रसन्न हुई। उसके मन में कुण्ठा का व्यापार था कि कहीं पिताजी, काशी जाने से इन्कार न करदें। पर जब स्वीकृति इतनी शीघ्र मिल गई तो वह जल्द ही प्रस्थान की तैयारी करने चलदी।

संध्या के झुटपुटे में, खोज करती हुई अर्चना, नौकर के साथ बड़े बाबू की कुटिया में पहुँची। उस समय हरदेव बाबू गंगा किनारे तनिक चहल कदमी करके लौटे ही थे कि बहू बेटा को सामने देख चौंक पड़े—"अरे...तू..कब आई बहू बेटा..."?

और अर्चना ने झुक कर सेठजी के चरण छूए। यद्यपि गुनगुना कर बूढ़े ने आशीर्वाद अवश्य दिया, पर सहसा अपनी परिस्थिति का ध्यान आते ही, वो अस्थिर से कुटिया में घुस गये। अर्चना मुँह ही ताकती रह गई। तनिक देर तो वह किंकर्तव्य-विमूढ़ सी खड़ी रही, फिर अन्दर प्रवेश कर बाबू के निकट आई। एक नजर बड़े बाबू ने देख, भय से सिहर कर यों अपनी पलकें झुकाली, जैसे कि हत्यारे को अधिकारी के सन्मुख अपराध स्वीकार करता हो। या फिर अर्चना को ऐसा अनुभव हुआ, जैसे कि बाबू वेदना के फूट पड़ते श्रोत को अवरुद्ध करने का असफल प्रयत्न करना चाहते हैं, सो वह उनकी ओर पैनी नजर से देख संयत स्वर में बोली –"यह क्या हालत कर ली है बाबू ! शरीर तो केवल हड्डियों का ढाँचा रहगया है। इस तरह गलाते रहे, तो कबतक खड़े रह सकोगे ? मेरे बारे में कुछ सोचा है क्या ?"

हरदेव बाबू को रुलाई आगई। लेकिन अपनी विवशता प्रगट न होजाय, इस भय से मुँह घुमा कर इतना ही बोले–"सब ठीक है बेटा, खड़ी क्यों है बैठ जा ? डाल पर पका आम कब तक रहेगा रे...मुझे अधिक दिन थोड़े ही जीना है...?"

अर्चना की आँखें भर आई। पलंग पर बैठते हुए उसने लम्बी श्वाँस भरी। हरदेव बाबू ने कातर दृष्टि से उसकी ओर देखा और अपनी अवस्था को अधिक से अधिक साधारण बनाने की चेष्टा की। अर्चना हिचकी भर बोली—"बाबू...झगड़े

का कारण नहीं बताओगे न ? अर्चना तुम्हारी मौनता स्वीकार करलेगी, ऐसा विश्वास है क्या ? दिल्ली छोड़ने से पहले खबर करते, तो मैं भी भाग्य को परख लेती। इतना बली तो अवि नहीं था, जो मुझे भी ठुकरा के चल देता। देखती हूँ, उसके वियोग में तुम अधिक दिन नहीं जी सकोगे ?"

"अब जी कर क्या करूँगा बेटा, फिर मुझे किसी के वियोग का दुख नहीं, क्यों करूँ मैं ? बच्चा तो वो रहा नहीं जब उसे मेरा सहवास पसन्द ही नहीं, तो फिर जहाँ जी चाहे रहे। वो समझता है, उसके बिना मैं जिन्दा नहीं रहूँगा...पर देख ले बेटा, मैं अभी भी बहुत सुख से हूँ। रत्ति भर भी मलाल नहीं।"

बड़े बाबू कह तो गये, पर आँसुओं को ज़ब्त न रख सके। अर्चना को वेदना में भी अनजाने ही हँसी सी आगई। उसने स्पष्ट अनुभव किया कि प्राण चले जाने के बाद भी बूढ़े की ठटड़ी लचना नहीं जानती। तनिक शान्ति के बाद अर्चना ने टोका—"तुम्हारे कथन की सत्यता का प्रमाण तो, ये आँसू भी हैं बापू ! एक तरफ वो झूठे मान के वशीभूत हो छिपा फिरता है, दूसरी तरफ तुम स्वाभिमान में अकड़े बैठे हो। अभागी अर्चना अब क्या करे बापू ? तुम ही कहो, संधि की कोई सूरत है क्या ? अवि का ठिकाना भी तो होगा ?" सुनकर हरदेव बाबू की वेदना पूर्ण उभाड़ खागई। बौराये से रोष में ही बोले-"तू भी मुझे ही दोष दे रही है...कैसा स्वाभिमान है मेरा ?...बुला अभागे को, मैं तेरे सामने ही पाँव पकड़ गिड़ गिड़ाऊँगा और

जो न माना, तो जान रखियो, बूढ़ा गंगा में डूब कर मरजायगा, हत्या का अपराध तेरे ही सिर होगा।" और वो जोर जोर से हाँफने लगे। अर्चना हक्की बक्की सी उनका मुँह निहारने लगी। अब और क्या बोले, उसकी समझ में ही नहीं आरहा था।

सहसा हरदेव बाबू घूम कर, अर्चना की भुजाएँ पकड़ चिल्लाए—"बोल अब भी मैं ही बुरा हूँ क्या? तुमने भी मुझे ही दोष दिया...पर मैं उस अभागे को कैसे रोकता? वो तो जानता है न, कि बूढ़ा मुझे बिना देखे मरजायगा...सो वो चला गया...वो मुझे मारना चाहता है बेटा, मार कर ही दम लेगा।"

अर्चना को छाती से लगा बाबू कोहराम कर रो पड़े। बूढ़ा दीनू लालटेन रखने आया, तो मालिक को अर्चना देवी के साथ यों विलाप करते देख हतप्रभ रह गया—

"यों रोने से क्या फायदा बाबू! वो थोड़े ही देख रहा है, जो कलेजा टूक टूक हो जाय...और दौड़ा आये, शान्त भी रहो, बहू रानी कब आई? आते ही इसे क्यों रुला दिया बाबू?" नौकर के कथन पर बड़े बाबू और अर्चना दोनों को ही अपनी अवस्था का ज्ञान हुआ। दोनों ने मानों जबरन ही, आसुओं को ज़प्त करने का उद्योग किया। अर्चना ने आँखें पोंछली और बड़े बाबू झटक कर रसोई घर की ओर चलदिये। शायद उनसे रुलाई रुक न सकी, सो वो वहाँ से टल जाना ही अच्छा समझे।

रात में बड़ी मनौतियाँ कर के ही अर्चना, हरदेव बाबू को कुछ खिला सकी। यद्यपि बूढ़े ने अन्य दिनों से आज कुछ

कम ही खाया था, पर जितना संतोष अर्चना के हाथ का परोसा हुआ खाने से हुआ, शायद उतना कभी जीवन में नहीं हुआ था। तभी तो खटिया पर लेटते समय गद्‌गद्‌ वाणी में वो बोले—"बहू बेटा! लोभ तो होता है कि तुम्हें नजरों के सामने ही रक्खूँ, पर जब यह ध्यान आता है कि महल वाला बेटा, झोंपड़ी में क्यों कर आराम से रहेगा, तो जी नहीं मानता। तू कल लौट जा बेटा...।"

"क्यों बापू...मुझे यहाँ कोई कष्ट तो नहीं...फिर जब, तुम यहाँ रह सकते हो, तो अर्चीं को भी आदत लग जायगी। मैं तेरे साथ ही रहूँगी बाबू! वरना तुम्हारी देख भाल कौन करेगा?"

"अपने सुख के लिये तो तुम्हें नहीं बुलाया री, मेरी चिन्ता छोड़ बेटा, और हो सके तो उस निर्मम को ढूँढ़ कर ला, अपने झूठे मान के वशीभूत अभागा, लौट आने का कोई बहाना तलाशता होगा। बेटा, तू जाकर उसको मना ले...वरना वह यों ही दर्‌ दर्‌ भटक कर मर जायगा। अब एक तेरा ही सहारा है बेटा...किसी बाप को तुमने औलाद के पाँव पकड़ते नहीं देखा होगा, ले आज मैं तेरे ही पाँव पकड़ के कहता हूँ... मेरे अवि को त्याग न देना। उसे जरूर अपना लेना..."

अर्चना अचानक चौंक कर पाँव खींचने लगी। वह हत्‌-प्रभ सी तनिक तो शान्त रही, फिर हरदेव बाबू को सहसा यों झुका देख बोली—"यों मुझ पर पाप चढ़ाना अच्छा है क्या? बापू! सच कहूँ तो अवि पर क्रोध मुझे भी कम नहीं, वह रूठा

तो तुम से था, मैंने क्या बिगाड़ा था, जो मुझे यों जला रहा है? लखनऊ उसका देखा हुआ था न ? अर्चना के पास आने में कोई झिझक भी नहीं थी, फिर भी वह नहीं आया। ऐसी अवस्था में मन तो करता है भटकने दूँ उसे यों ही, पर न जाने क्यों अन्तर में कोई विरोध भी कर देता है। इसलिये निश्चिंत रहो, अर्चना तुमलोगों की तरह मान लिये नहीं बैठी रहेगी .. अपना 'आपा' खोकर भी उसे ढूँढूगी जरूर..."

सुनकर हरदेव बाबू विभोर होगये। कृतज्ञता में आँसू अधिक ही निकले, पर चित्त पर से जैसे कोई बोझ उतर गया; ऐसा ही उन्हें अनुभव हुआ। अर्चना बिटिया को आशीर्वाद देकर बोले—"जुग जुग जीये मेरा बेटा, तुमने बूढ़े को मरने से बचा लिया री...तू सुबह की ही गाड़ी से चली जा, मेरा मन कहता है, वह अभी दिल्ली ही में होगा...तुम्हें जरूर मिल-जायगा...।"

"चली जाऊँगी बापू, पर एक दो दिन ठहर कर ही, तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा नहीं जान पड़ता, कल परीक्षा करूँगी, और होसका तो तुम्हारी दवा का समुचित प्रबन्ध करके ही जाऊँगी।"

"कुछ अपने लिये भी सोचा है क्या ? तेरा शरीर भी सारा गल गया है-" हरदेव बाबू तनिक मुस्कुरा कर व्यंग से बोले— "मैं तो कहता हूँ रोग दोनों का एक ही है, और इलाज भी एक ही"

सुनकर अर्चना जैसे सेंध मारते समय पकड़ा गई हो, ऐसी ही अवस्था उसकी होगई। चेहरे पर अचानक पसीना सा

आगया। वस्तुतः शर्म से वह गड़ी जारही थी। हरदेव बाबू ने लक्ष्य कर लिया था। वह जब बोली—"अपना इलाज तो कभी कर लूँगी, लेकिन तुम्हारी दवा कल से अवश्य शुरू कर दूँगी।"

तो हरदेव बाबू चुहलबाजी के लेहजे में ही इतना कह सके— "शर्मीली बिटिया, पहले अपनी लज्जा को सम्हाल, वरना दुनियाँ जान लेगी कि अवि के वियोग में एक बूढ़ा ही नहीं मरा किसी जवान ने भी जिन्दगी गँवाईं थी..."

और अर्चना उठकर भागती सी बोली—मुझे बैठने नहीं दोगे बापू..."

जाती हुई अर्चना को हरदेव बाबू ने तनिक मुस्कुराते हुए ही निहारा, फिर सोते हुऐ वो इतना ही बोले—"बहू बेटा...भोजन करके ही सोना... वरना भूखी आत्मा और कोई शाप देगी..."

सुनकर अर्चना ने कोई जवाब तो नहीं दिया, पर वह हड़-बड़ाई सी रसोई घर मैं अवश्य प्रवेश कर गई।

× × × ×

उस दिन मुनीमजी जो अवि से मिलकर लौटे सो नया ही दर्द जीवन में घोल बैठे। अभी तक तो उन्हें पूर्ण विश्वास था कि क्रोध शान्त होने पर अवि वापस आजायगा और जब नत मस्तक हो बड़े बाबू के चरणों में झुकेगा, बूढ़े का क्रोध भी, बहाव में पड़े तिनके के समान बह जायगा। फिर तो एक बार पुनः हवेली खुशी से नाच उठेगी। अँधेरी रात में दीवाली के जग मग चिराग द्योतित होंगे और सारी दुनियाँ हँसती हुई

दृष्टिगत होगी।

लेकिन मुनीमजी को जब झगड़े का कारण मालूम हुआ, तो वो पूर्ण निराश होगये। स्पष्ट जान पड़ा कि अब तो इस उलझन का समाधान, दो में से एक की जान लेकर ही होगा। कारण, अवि ने ऐसी अवस्था में पिता के कार्य का विरोध किया था, जब उनके कुकृत्य का रूप सजीव बना, उनके सामने उपस्थित था। ऐसी अवस्था में अपने बचाव का अन्य कोई मार्ग न देख कर उन्होंने उस समय, पितृत्व से इन्कार किया था, जब पाप का ज्वलंत प्रमाण सन्मुख होने पर भी, औलाद के सामने, सहसा ही वो झुकना नहीं चाहते थे। अब न तो बड़े बाबू में झुकने की आदत, जो बेटे के सन्मुख अपने किये पर पश्चाताप प्रगट कर क्षमा के याचक बन जाँय, और न अवि में ही यह होसला, कि ये सब सहकर भी उनसे सम्बन्ध बनाये रखे। फिर सुलझाव क्योंकर होगा?

मुनीमजी ने फिर इस प्रश्न पर भी गम्भीरता से मनन किया कि क्या यह सत्य है, कि अवि पाप की औलाद है? क्या सचमुच में पत्नी को जहर देकर मारने वाली कथा सही है? अगर ऐसा ही है, तो बाप बेटे के मिलाप की समस्या और भी विषम होगई। लेकिन अवि को जो उन्होंने इतना प्यार देकर पाला, सो किसलिये? क्या बूढ़ा बच्चे की ममता में बँध गया था? और इस समस्या का समाधान मुनीमजी न कर सके।

अब मास्तिष्क विजया की ओर भी गया। वो सोचने लगे,

कहाँ से यह नागिन आज हमारे बीच आगई ? बस इसी एक डाइन को लेकर तो आज, सोने सा संसार पल भर में स्वाहा होगया। पहले बाप को सौन्दर्य की शिखा पर परवान चढ़ाने वाली, आज बेटी की सहानुभूति का केन्द्र बनी बैठी है और वो अभागा तो यहाँतक भी उतारू होगया, कि उस से शादी ही कर ली जाय। तो क्या अवि ने यह नहीं विचारा, कि जिस लड़की का चाहे या अनचाहे, बड़े बाबू द्वारा कौमार्य खण्डित होगया, उसे वह पत्नी रूप में कैसे ग्रहण कर सकता है ? अन्दर का सम्बन्ध चाहे जो कुछ हो, पर दुनियाँ तो अवि को बड़े बाबू की ही संतान कह कर पुकारती है। फिर कैसे वह उस नागिन से विवाह का विचार कर सकता है ? वस्तुतः लड़का पागल हो गया। या फिर शायद वह नागिन ही इतनी जहरीली है कि इस छोकड़े को भी जहर पिला, इतना मतवाला बना चुकी कि बस, यह रात दिन उसी में डूबा रहता है। हे भगवान् ! कैसे छुटकारा होगा ? और 'काका' अत्यन्त व्यग्र होगये। आँखों के सामने अंधकार छागया। अवयव मृत प्रायः होगये।

सहसा बूढ़े का मस्तिष्क दौड़ा—क्यों न बड़े बाबू को इन सब की सूचना देदी जाय ? उन्हें बुलाना अति आवश्यक है। वरना तो घोर अनर्थ होजायगा। ऐसा सोच वो बड़े बाबू को पत्र लिखने को व्यग्र से हुए, कि हृदय के किसी कोने से आवाज आई—नादान, यह क्या कर रहा है ? अवि बच्चा थोड़े ही है, जो बहल जायगा, या डरा धमका के रास्ते पर लेआवोगे ?

अगर विवाह करना उसने निश्चित कर ही लिया, तो फिर बड़े बाबू ही आकर क्या करेंगे ? वह कहीं दूर भी जाकर शादी करलेगा। तो फिर...? और मुनीमजी पुनः हताश हो बैठ गये।

तनिक मानसिक मन्थन के बाद, अचानक एक विचार सा कौंधा—क्यों न चलकर पहले उस नागिन से मिला जाय ? कहीं रुपये के लोभ में जाल फैलाने वाली वह वैश्या ही है, तो कुछ दे ले कर भी अवि का पिण्ड छुड़ाया जासकता है। सैकड़ों घाट का पानी पीने वाली, वो एक वैश्या ही है। भला इस से ज्यादा और हो भी क्या सकती है वह ? बस पहले उसी से मिलना ठीक है। और मुनीमजी ऐसा निश्चय कर शीघ्रता से उठे। कपड़े पहनते हुए फिर मन में विचार उठे–'बूढ़े ! कहीं उस नागिन ने, अवि की अनुपस्थिति में जाने पर, कोई ऊँच-नीच अभियोग लगा दिया तो...? बदनाम हो जायगा अभागे। ऐसी औरतों के लिये कुछ भी असम्भव नहीं।' तो मुनीमजी फिर बैठने लगे।

अचानक, न जाने किस निश्चय पर पहुँचे कि, बड़बड़ाते से हवा की तरह हवेली से निकले—

"नहीं मैं उस नागिन को एक बार देखूँगा ही...न होगा तो, अवि का घर ही देखकर लौट आऊँगा...पर जाऊँगा जरूर..."

तो दोपहर के दो बजे मुनीमजी, अवि के बताये मार्ग का सतर्कता से अनुसंधान करते, सलीमपुर की मोड़ घूम गये। सामने ही इक मंजिले मकान पर दृष्टि पड़ी, तो वो ठटक से

गये। सहसा पाँवों ने बढ़ने से इन्कार कर दिया। सहमती नजरों से एक बार जो सामने देखा, तो एक पाँच वर्ष का बच्चा मकान के सामने ही मिट्टी के घरोन्दे बनाता-मिटाता दृष्टिगत हुआ। अनजाने ही काका सरकते से उसके समीप चले आये। मानस में विचार उठे—नियन्ता भी तो इसी तरह से घरोन्दे बनाता और बिगाड़ता है...। मालिक का घराना इसी तरह तो पल भर में मिटगया। भला यह बालक सोचता क्यों नहीं, कि विधाता के कार्य की वो, जो अनजाने ही नकल कर रहा है, उससे कितनों के जी दुखी होजायेंगे—

अचानक बालक ने मुनीमजी की ओर देखा-वो सकुचाते से बोले—"बेटा, अवि बाबू.. यहीं रहते हैं क्या ?" बालक जो राजू ही था, कौतूहल से वृद्ध की ओर देख कर सहमा। बूढ़े की आँखों में स्नेह का सागर लहराता देख, अनजाने ही वह पिघल गया।

"आप कौन हैं... अवि बाबू यहीं रहते हैं, आप उनके बाबा हैं क्या ?" और बच्चे की जिज्ञासा पर मुनीमजी भाव विभोर से उसे गोद में उठा, दुलार कर बोल पड़े—"बड़ा अच्छा है रे...तू...अवि बाबू को जानता है क्या ?"

"हाँ......वो हमारे साथ रहते हैं .....दीदी के साथ, घर चलो ना बाबा ?"

सुनते ही मुनीमजी भन्नाये और राजू को गोद से उतार चलने को उतावले हुये। हतप्रभ से राजू ने उनका पल्ला पकड़

दीदी को आवाज दी—"दीदी...देखो बाबा ..भागे जा रहे हैं, किवाड़ खोल दीदी...अवि के बाबा..."

"अरे छोड़ भी...।" और मुनीमजी जब राजू से धोती का पल्ला छुड़ा; भाग जाने का प्रयास कर रहे थे, सहसा राजू की आवाज पर भौंचक सी विजया ने किंवाड़ खोले। राजू को किसी बूढ़े से यों लिपटा देख वह सहम गई—अरे ये कौन...?...कहीं अवि के पिता ? नहीं, तो ...शायद, मुनीम काका, हाँ वो ही हैं..

और इधर मुनीमजी विजया को यों सामने देख मूर्तिवत से खड़े हुए, सो खड़े ही रह गये। जान पड़ा—जैसे-बिलकुल मुर्दा होगये। अंतर में 'ऊहा पोह' का ज्वार भाटा उमड़ पड़ा। वो अपना कोई कर्त्तव्य निर्धारित करें, इस से पूर्व तो विजया अचानक उनके सामने आ—चरणों में झुक गई। "अगर भूल नहीं कर रहीं, तो आप मुनीम काका ही हैं न ..? अवि बाबू से सुनचुकी हूँ ..।"

मुनीमजी चौंक कर पीछे हटे। अनजाने ही उनके मुँह से इतना अवश्य निकल गया था—"अरे क्या कर रही हो, बिटिया, अवि बेटे को देखने आया था..." पाँवों की धूलि लेकर उठते हुए विजया बोल पड़ी—"डरो नहीं काका! पाँव ही छूए हैं...छूत लग गई तो घर में पानी पड़ा है। विश्वास करो, मैं ने नहीं छूआ, चाहो तो स्नान कर सकते हो ? फिर बाबू तो दफ्तर गये हैं।" सुनकर मुनीमजी, जैसे पक्षाघात के प्रहार से पीड़ित होगये हों, ऐसी ही अवस्था होगई। विजया के उक्ति

वैचित्र्य एवं उसके मुख से अपना परिचय जान, वे अत्यधिक विस्मित हुये। सहसा कुछ सूझ ही न पड़ा कि वो क्या बोलें। तबतक राजू ही कह उठा—"बाबा घर में चलो ना...यहाँ क्यों खड़े हो ? दीदी ले चलो ना घर...।"

सुनकर विजया, मुनीमजी के विस्मय में डूबे मुख का गम्भीरता से मनन करती हुई बोली—"अन्दर चलो काका, नीच के घर, अन्न जल न सही, बैठना पाप नहीं है...छूऊँगी, नहीं...दूर से हो दो चार बातें करलूँगी .."

"अरे नहीं...ऐसा क्या बेटी...छूत काहे की री..." और मुनीमजी न जाने किस आकर्षण के वशीभूत से, अनजाने ही मकान में प्रवेश करने लगे। विजया-राजू ने हड़ बड़ा कर पलंग ढाला और मुनीमजी मूर्तिवत से उस पर बैठ गये। उड़ती सी नजर एक बार काका ने कमरे की धरण कड़ियों पर डाल विजया की ओर देखा। नयन मिलते ही, जैसे वो अज्ञात भय से सिहर उठे हों, ऐसे ही काँप गये। माथे पर पसीना झलक ने लगा। अब तो विजया को भी यह मौनता बहुत खलने लगी। अतः काका के मुँह पर दृष्टि स्थिर कर, वह मधुर वाणी में बोली—"आराम से बैठिये तो काका .."

'अरे ठीक ही हूँ मैं..."

"अधिकार तो नहीं, पर अवि बाबू के आने तक रोक जरूर रखूँगी...चाहो तो लेट जाओ..." और विजया पंखा झलने लगी। बूढ़े ने सहम कर पंखा विजया से लेते हुए कहा—

"इस की क्या जरूरत है बेटा... इतनी गर्मी तो नहीं..."

बूढ़े ने अत्यधिक प्रयत्न कर, स्वभाविक वाणी में ही बोलना चाहा, पर स्वर विकृत हुए बिना न रह सका। विजया इस भाव को ताड़गई थी। अतः गम्भीर स्वर में बोली - "ये जो माथे पर पसीना है, इसे इतनी दूर से आने का कारण ही समझूँगी काका, फिर चैन से तनिक आराम क्यों नहीं करलेते ?"

"मुझे जल्द ही जाना है, बस यों ही घर देखने आया था,"

"नहीं काका, यों न जा सकोगे, आना तुम्हारे बस की बात थी, और जाना हमारे बस की। अगर नहीं रुकोगे, तो पाँव भी पकड़ना आता है... ठोकर मार चले जाओगे न ?"

"कैसी बात कर रही है बेटा ? तुम्हें भला क्योंकर ठोकर मारूँगा ? बेटे की बन्दनीय देवी, आदर का पात्र तो रहेगी ही।... वो निर्मम कब लौटा करता है ?"

"चार और पाँच के बीच, ... काका जात जाने का भय न हो, तो नेबू का शर्बत ले आऊँ ? धूप में आये हो, और पसीना भी तुम्हें बहुत आरहा है .."

सुनकर मुनीमजी ने घबराहट में ही मुख पर हाथ फेरा, तो वस्तुतः वो भींग गया। अपनी अवस्था का सही अन्दाज उन्हें अब हुआ। विजया उनपर छा रही थी। उसकी वह घिनौनी तस्वीर, जो काका के मानस में कल्पना से अंकित हुई थी, अब न जाने कहाँ विलीन होगई, इसे वो ढूँढ कर भी न ढूँढ पाये।

विजया ने फिर टोका—"तुम्हारे शास्त्रों में हर पाप के

प्रायश्चित का विधान है न काका ? शर्बत न ग्रहण कर, मन को सताना अच्छा है क्या ? फिर यहाँ तो जाति वंश की दुहाई देने वाले, समाज के ठेकेदार भी नहीं। विश्वास करो तो कहदूँ-विजया नीच खानदान से नहीं, फिर घबराहट कैसी ?"

"मैं क्यों घबराने लगा री...मुझे चिढ़ा रही है क्या ? .. जब बेटे की जान ले ली, तो बाप कबतक बचेगा ? ला तो सही, देखूँ तेरा शर्बत कहाँ गले अटकता है ?" सुनकर विजया निहाल होती हुई, लपक कर रसोई घर की तरफ गई। मुनीमजी राजू की ओर देख कर, अनजाने ही पोपले मुख से मुस्कुरा पड़े।

"तू तो कुछ नहीं बोलता रे, हमारा मन कैसे लगेगा बेटे, ?" मुनीमजी ने राजू को टोका, वह विस्मित सा अभी तक दीदी और बूढ़े का सम्भाषण सुन रहा था। अब जो उसे टोका गया, तो जैसे तन्द्रा टूटी हो, उसी तरह सहम कर बोला—"ठहरोजी मैं जरा देख तो लूँ...तू बाबा ही हो न ?"

"हाँ बेटा, तेरा बाबा ही हूँ ।" और मुनीमजी ने राजू को गोद में उठा लिया।

"अच्छा मुन्ने, तेरा नाम क्या है ?"

"राजू ..और तेरा...?"

"बाबा,...या फिर मुनीम काका, राजू बेटा, पहले कहाँ रहते थे ? घर याद आता है क्या ?"

आश्चर्य में डूबते राजू ने कहा-"बाबा, हम बहुत दूर रहतेथे, बाबा मेरे पास इत्ते खिलौने थे, अब तू मुझे खिलौने देगा न !"

"हाँ . हाँ, दूँगा, ..हैं रे, तेरे माँ-बाप भी तो .."

"माँ को दीदी रास्ते में छोड़ आई, बाबा, माँ को लादो... वो खेत में सोई है, बाबा।"

"ला दूँगा बेटा, जरूर ला दूँगा-" और मुनीमजी अधिक से अधिक विजया के बारे में जान ने को, न जाने क्यों उतावले हो रहे थे। अन्तर के किसी कोने से स्वर ध्वनित हुआ-'बूढ़े छान-बीन क्या कर रहा है, ये अज्ञात, कुल गोत्रा, पूर्ण संस्कार सम्पन्न बाला है। खानदान कोई छोटा नहीं, जो तू इतना छिल रहा है। अवि के लायक ही है यह...' और मुनीमजी अंतिम कथन पर बड़बड़ाये—"नहीं, सब कुछ ठीक होते हुए भी यह हमारी, बहू रानी बनने लायक नहीं, ना...कभी नहीं ."

और मुनीमजी ऐसा सोच ही रहे थे, कि इतने में विजया हाथ में जलपान की तस्तरी और शर्बत का गिलास लिये उपस्थित होगई।

उसे देख, मुनीमजी के न जाने किस मन ने, अवहेलना से नाक भौं सिकोड़ीं और सहसा ही वो विजया के हाथ से जलपान की तस्तरी न ले सके, मंत्र मुग्ध सा वो, नयनों में अजीब सा भाव लिये, सामने खड़ी विजया को बस एक बार देख ही भर सके, फिर पलकें अनजाने ही झुक गईं। यद्यपि तस्तरी सामने बढ़ी हुई थी, पर हाथ, काँप ही रहे थे। विजया इस भाव को लक्ष्य कर गई—

"डरो नहीं काका, खाना गले नहीं अटकेगा...शायद ध्यान

आगया होगा, कि यह एक ऐसी लड़की के हाथ का है, जो अज्ञात कुल गोत्र और परिवार की है। पर काका, मैंने कहा न, विजया की जाति को मान्यता है...पिता—दीवान मीर चंद लाहौर में प्रतिष्ठित ही समझे जाते थे, लेकिन आज तो... कुछ भी नहीं रहा।" और वह रोने लगी। सुनते ही मुनीमजी चौंके। राजू को गोद से उतार, वेदना विदग्ध विजया के पास आश्चर्यित से बोले—"अरे, तू उसी दीवान की लड़की है, जो मंडी के ऊनी मिल का मालिक था? उसके यहाँ कार बार के सिलसिले में जा चुका हूँ...वो कहाँ है बेटा...?"

और विजया ने हिचकियाँ भरते हुए केवल इतना कहा—"आततताइयों ने उन्हें मार डाला.. हमारा सब कुछ मिट गया काका...माँ भी चल बसी..."

"हरे...हरे...रो नहीं बेटा...वो गये तो क्या हुआ, तू...मेरा बेटा ही है रे...मेरे रहते तुम्हें कौन सा भय...?"

और वो विजया का माथा सहलाने लगे। उसने भी आँसुओं के वेग को मानो, जबरन अवरुद्ध करना चाहा। बगल में खड़ा राजू दीदी को रोता देख, आँखों में आँसू भर दूसरे कमरे में चल दिया। वस्तुतः वातावरण अनजाने ही बोझिल होगया।

थोड़ी देर बाद विजया बोली—"अब तो खालो ना काका, वरना जी दुखी होजायगा।"

"अरे लातो, मैंने कब इन्कार किया,—" और जलपान करते हुए वो एक बार विजया का विहंगम अवलोकन कर

फिर बोले—"तभी तो कहूँ ..अवि जो आदर्शों के हिमालय से उतरा, सो कोई हिम-कन्या के लिये ही ..सच कहता हूँ बेटी, मुझे अतीव आनन्द हो रहा है। किसी पूर्व जन्म के पुण्य से ही अवि, तुम जैसी पार्वती को पा सका है. वरना कहाँ मिलती ऐसी देवी ?" विजया, लाज के लहंगे में सिकुड़ कर बिलकुल काश्मीरी सेब सी रंगीन होगई। झेंपते हुए बस इतना ही बोली—"पाँवों की धूल को इतना ऊँचा उड़ाया, तो किसी की आँख में गिर पड़ेगी—मैं तो सदा यही सोचती हूँ काका, कि बाप-बेटे का फिर मिलाप होजाय, मुझ हतभागी के कारण यह गृहस्थी क्यों बरबाद हो ?"

सहसा आप से आप, विषय बदल गया। मुनीमजी कुछ खा, अवश्य रहे थे, पर अचानक बड़े मालिक का ध्यान आते ही हाथ रुक गये। अन्तर में हूक उठी और वाणी से गीला स्वर निकला—"परमात्मा की इच्छा के बिना कुछ नहीं होता बेटा...जिस दिन चाहेंगे, मिलाप होजायगा। तू क्यों परेशान होती है ? सब कुछ छोड़दे नियंता की इच्छा पर...वो चाहे पार लगादे, या नाव डुबादे...हमें कोई शिकायत नहीं।"

और काका ने भरी हुई आँखें पोंछी। विजया भी रुँधे गले से ही बोली—"इस 'निमित्त' के कलंक को कहाँ धोऊँगी, काका ! मेरे ही कारण तो, बड़े बाबू मारे मारे फिर रहे हैं... बहुत बार जी करता हैं, यमुना में डूब कर, या रेल की पटरी पर सोकर, इस पतित जीवन का अंत करदूँ, पर कहाँ हो पाता

है ? अब तुम्हीं कहो काका, मैं अबला क्या करूँ ?"

और विजया फूट फूट कर रो पड़ी। मुनीमजी ने उठ कर उसे छाती से लगा कर कहा—"नहीं, रोया नहीं करते बेटा, तू क्यों मरेगी... जो जैसा करता है भोगेगा। तुम्हें तो मेरे अवि के लिये जीना है...वरना वो अभागा भी ठोकरें खाता मर जायगा। वंश का नाम ही मिट जायगा बेटा! बस अब, एक तेरा ही तो आसरा है, . हमें मझधार में न छोड़ देना..."

"इतना बोझ न डालो काका! मैं अभागी किस लायक हूँ?" और वह पुनः काका की छाती में सिर डूबा वेदना में हिचकियाँ भरने लगी। काका भी रो पड़े और योंही पास पड़ोस की हवा, सिसकने लगी।

दर्द का यह तूफ़ान, अधिक देर नहीं रहा। अश्रुपात करने से दोनों के जी तनिक हल्के होगये। अपने को संयत कर सहसा विजया ने कहा—"अरे, ..काका, तुमने तो कुछ भी नहीं खाया...सारी चीजें तो यों की यों पड़ी हैं! ना ना, ऐसे नहीं छोड़ूँगी काका, फिर शर्वत भी तो पड़ा है।"

"ला थोड़ा पी लूँ .." और मुनीमजी ने एक ही श्वाँस में गिलास खाली कर दिया। विजया ने फिर ढ़ाल दिया—"अरे यह क्या कर रही हो—?" मुनीमजी बोले।

"थोड़ा ही तो है...पीलो ना..." विजया ने कहा।

मुनीमजी, न जाने किस मंत्र-शक्ति के वशीभूत थे, सो फिर विजया की ओर कातर दृष्टि से देखते, शर्वत पीने लगे।

खाली गिलास रखते हुए उन्हों ने कहा—"मालूम पड़ता है, किसी जन्म में मैं तुम्हारा बेटा था, मनुहार कर खिलाने की साध पूरी नहीं हुई, सो अब तू पूरा कर रही है...है न बेटा—"

सुनकर विजया लजा गई। मुँह से शब्द नहीं निकला। काका फिर बोले—"लेकिन इतना ज्यादा खिलाओगी, तो यह बूढा बेटा, मर जायेगा माँ..."

विजया गद्गद् हो गई। तनिक देर तो उसे, यह सत्य ही जान पड़ा कि वह स्नेह मयी मां है, जो प्यार से जिद्दी बेटे को, मनुहार कर खिला रही है। लेकिन यह अवस्था अधिक देर नहीं रही। मुनीमजी ने पानी मांगा और उसने तन्द्रा को तोड़, काका के हाथ धुलाये।

पलंग पर पुनः बैठते हुए मुनीमजी ने गम्भीर वाणी में कहा—"बहुत देर से अंतर में कुण्ठा का व्यापार चल रहा है, बेटा! तुमसे छिपाकर स्वयं से कबतक लड़ता रहूँगा मैं?"

"क्या बात है, कहो न काका?" उत्सुकता से विजया ने पूछा। मुनीमजी मानो कुछ सहम गये। मन में कोई विरोध कर रहा था कि बूढ़े न बोल, पर वो माने नहीं—"बेटा, मैं पापी हूँ रे, मानस ने, जो कल्पना के सहारे तेरा रूप देखा था—वह बड़ा घिनौना था...मैंने तुझे पतिता की संज्ञा दी थी बेटा... हरे...हरे, मैंने कितना बड़ा अपराध किया?"

विजया, बीच ही में बोल पड़ी—"तुमने ठीक ही सोचा था काका, पतिता ही तो हूँ...पवित्रता का दावा कैसे करूँगी?"

"हरे हरे"—मुनीमजी ने दोनों कान ढँक लिये—"माँ की बुराई सुनने वाले बेटे को पाप लगता है ..तुम तो देवी हो... साक्षात् जगद्धात्री, मेरे पापों को क्षमा कर दो माँ, वरना यह बूढ़ा बेटा, पल भर भी चैन नहीं पायेगा—" और मुनीम जी सचमुच में पलंग छोड़, विजया के पाँवो में झुक गये। चौंक कर वह विस्मित सी बोली—"अरे, यह क्या कर रहे हो काका? क्यों मुझ पर पाप चढ़ाते हो,...नर्क में भी ठौर न मिलेगी..."

मुनीमजी उसी मुर्छना में बोले—"नहीं बेटा, तुम गृह-लक्ष्मी हो, बड़ी तपस्या के बाद अवि तुम्हें पा सका है, मैं निश्चिन्त हो गया री...मेरा बेटा, साक्षात् भवानी दुर्गा के आश्रय में चला गया ..अब काहे का डर?" और वो हर्ष में पागल से हो गये। तन मन की सुध ही बिसर गई। विजया भाव विभोर सी, मानस चिन्तन में लीन हो गई।

सहसा बूढ़ा उठा, और जाने को उद्यत ही हुआ, कि अवि दफ्तर से लौट आया। विजया कोट उतारने आगे बढ़ी, तो काका को उपस्थित देख अवि चिल्लाया .."अरे काका, तुम... और यहाँ . कोई कष्ट तो नहीं हुआ?"

मुनीमजी उसी मुर्छना में बोले—"कष्ट तो बहुत हुआ है रे, मिट्टी खोदकर तुमने हीरा पा लिया। ..अभागा तो यह बूढ़ा ही था, जो अबतक इस देवी के दर्शन न कर सका। छोटे बाबू! तुमने मुझे बहुत छला, न जाने क्या क्या बुरा सोच गया था मैं, मेरे पापों का प्रायश्चित कैसे होगा?"

"अरे क्या कह रहे हो काका—" अवि बोला—"कल की नागिन, आज देवी कैसे हो गई...? कहीं तुम भी तो विजया के हाथ नहीं बिक गये...?"

विजया बीच ही में लजाती सी बोल पड़ी—"अरे, राम, मेरा तो जीना मुश्किल हो जायगा...।" और वह अवि के कपड़े रखने भीतर चली गई। अवि मुनीम काका की ओर देखता हुआ सोच रहा था—यह कैसे हुआ ? पर उसे क्या पता कि काका का 'अहम्' विजया की एक ही ठोकर में चूर चूर हो गया। आदर्शों का महल जो धराशायी हुआ, टुकड़े समेटे से भी न सिमट सकेंगे।

अचानक मुनीमजी उठते हुए बोले—"मुझ बूढ़े को अब छोड़ दो बेटा ? निहाल हो गया रे, तुम्हें देवी मिल गई...मेरा शत् शत् कोटि प्रणाम कहना उसे...मैं चला...अब नहीं रूकूँगा...।" और वो बौराये से क्षुब्धता में ही आँधी की तरह निकल गये।

आश्चर्य में डूबा अवि, पुकारता ही रह गया, पर तब तक तो मुनीमजी ना जाने कितनी दूर चल दिये।

हवेली पहुँच कर मुनीम जी, अंतर में एक अजीब सी मादकता लिये प्रसन्न चित्त, चिन्तन करने लगे। विजया का सच्चा स्वरूप जानकर हृदय अतीव आनन्दित हुआ था। मन को अब, बिना किसी हिचकिचाहट के अवि का, विजया से विवाह करनेवाला प्रस्ताव समीचीन जान पड़ता था। उन्होंने शीघ्र से

शीघ्र सारी परिस्थिति का पुनः अवलोकन कर, अवि और विजया की शादी का निर्णय करना चाहा। इस अभिलाषा की पूर्ति में दो दीवारें थी। पहली तो अर्चना से अवि की मंगनी, जो वर्षों से हो चुकी है तथा दोनों प्रगाढ़ प्रेम के सूत्र में स्वभावतः ही बँध चुके हैं। दूसरी, बड़े बाबू की इस सम्बन्ध में न मिली हुई स्वीकृति, जो नितान्त आवश्यक है। मुनीमजी ने पहली दीवार को ढहा देने के सम्बन्ध में विचारा, विजया नागिन नहीं, साक्षात् सर्वाङ्ग सुन्दरी देवी है, जिसकी तुलना में अर्चना शायद किसी न किसी अंश में हल्की ही होगी। अगर यह पूर्ण सत्य नहीं, तो इतना अवश्य ही मानना पड़ेगा कि विजया, किसी भी दृष्टि से अर्चना के समकक्ष हेय नहीं। फिर यह भी तो है, कि अर्चना एक ऐसा प्रसून है, जिसे कोई भी पात्र मस्तक पर चढ़ा, भाग्य को सराहेगा। उसके लिये हजारों पुरुष पलक पाँवड़े बिछाये हैं, पर विजया वह कलंकित चाँद है, जिसे कोई भी झोली में भरना नहीं चाहेगा। अगर भूले से कोई अपना भी लेगा, तो जिस दिन यह मालूम होगा कि इसके कौमार्य का अपहरण एक नर पिशाच के द्वारा हो चुका है, तो इस अभागी के जीवन में सदा के लिये जहर घुल जायगा। यह निर्विवाद सत्य है कि अर्चना के लिये अवि को भुलाना सहज नहीं, पर अवि के लिये विजया को त्याग देना भी तो उतना ही मुश्किल है। अर्चना, अवि द्वारा ठुकराई जाने पर, कुछ दिन रोयेगी, विलाप करेगी और विश्वासघात एवं बेवफ़ाई

के ताने मारेगी, पर फिर, समय एक दिन इस घाव को भर भी देगा और वह किसी से भी विवाह कर, अपने को पूर्ण सुखी कर लेगी।

लेकिन, अगर विजया को अवि से बिलग किया गया तो उस कलंकिनी के लिये, वैश्या वृत्ति का ही द्वार खुला रहेगा। वरना यमुना की गोद उसे आश्रय दे देगी तो कोई आश्चर्य नहीं? उफ, कितना दुखद अंत होगा इस देवी का। तू सहन कर सकेगा बूढ़े ?' और अन्तर की इस जिज्ञासा पर मुनीमजी झुंझलाये —नहीं...मैं उसे. अवि से अलग नहीं करूँगा...मैं उसीसे उसका विवाह करूँगा.. पुनः मन ने प्रश्न किया, तो हरदेव बाबू वाली दीवाल कैसे गिरेगी? तू जानता है, चाहे या अनचाहे, वो विजया से संभोग कर चुके हैं; फिर तू कैसे उस लड़की का अविनाश से विवाह कर रहा है? अभागे! दुनियाँ उसे बड़े बाबू का लड़का कहती है. इसे भी तो सोच ?'

और मुनीमजी फिर बड़बड़ाये—नहीं, यह सत्य नहीं, विजया अब भी पवित्र है। संभोग का सम्बन्ध तन से नहीं, मन से है। फिर बलात्कार तो बड़े बाबू ने नहीं, उनके उस राक्षस ने किया था, जिसकी अब मौत हो गई। हरदेव बाबू के मानव का जन्म तो अभी अभी हुआ है, जो पूर्ण स्वच्छ और निर्मल है। विजया उनके लिये पूजनीय है... देवी है।...फिर यह भी तो सत्य मान लिया जा सकता है, कि अवि से उनका पिता वाला सम्बन्ध मिथ्या है। वो उनका

बेटा नहीं, तो ऐसी अवस्था में, क्यों न वह एक ऐसी लड़की से शादी कर समाज के सामने आदर्श रखेगा कि जिस लड़की को, अपने पल भर के आनन्द के लिये, कोई नर पिशाच पतित कर चुका, वह जीवन परयन्त पतिता नहीं रह सकती। संबल मिलने पर, वह भी आदर्श गृहणी और रत्न गर्भा मां बन सकती है।...हाँ..अवि रे,...तू ऐसा ही कर, यह बूढा, किसी की भी परवाह न करेगा। न मुझे बड़े बाबू को सूचना देनी, न अर्चना से स्वीकृति लेनी। मैं दोनों का व्याह रचाऊँगा।... नहीं तो, बड़े बाबू के साथ साथ विजया और अविनाश, दोनों का जीवन बरबाद हो जायगा। विजया के श्राप से अर्चना भी घुट घुट के मरेगी।...नहीं, नहीं मैं कुछ नहीं विचारूँगा। बस दोनों की शादी कर ही दूंगा।

इन्हीं विचारों में भूलता हुआ मुनीम, दैनिक कार्यों से निवृत हो कब सोने चल दिया, यह ज्ञात नहीं?

दूसरे दिन अतीव उतावले से काका, अवि से दफ्तर में मिले। एकान्त में ले जाकर गम्भीर वाणी और दृढ़ निश्चय के स्वर में अवि से बोले– "बेटा, अब मैंने निर्णय कर लिया है... तुम कुछ न कहना...बस दोनों विवाह कर ही लो...।"

"क्या कह रहे हो काका?—" विस्मय से अवि ने पूछा। "यह सम्भव है क्या? तुम्हारा समाज इसकी स्विकृति दे देगा?"

"बेटा, मुझे किसी समाज की सम्मति नहीं लेनी न बड़े बाबू से ही पूछूँगा..बस तुम हाँ कह दो, और मैं कन्या दान

कर दूँगा, बिजया मेरी बेटी है रे ..."

अवि विचलित सा हुआ। वस्तुत: उस दिन, योंही प्रसंग में काका से शादी का जिक्र करके भी, उसने कभी इस प्रश्न पर गम्भीरता से चिन्तन नहीं किया था, और अगर कभी यह भाव मन में उठा भी होगा, तो विजया से इस सम्बन्धन में कोई चर्चा नहीं चली थी। अत: अवि सहसा ही कोई निर्णय कैसे दे पाता? काका से उसने कहा—"इतनी जल्दी क्या है? विजया भागी थोड़े ही जा रही है काका?"

मुनीमजी अनुभवी से सिर हिलाते हुए दार्शनिक स्वर में बोले—"अवि रे, सच तो यह है पल पल में बदलने वाले समय पर, मुझे विश्वास नहीं रहा,...कहीं फिर कोई भाग्य के दोष से बरबादी का तूफान आया, तो हम विलग हो, किस विनाश के गर्त्त में गिर पड़ेंगे, पता भी न चलेगा। उस दिन तेरी और बिटिया की तबाही, देख सकूँगा क्या? नहीं बेटा, बड़ों ने कहा है—करले सो काम, और भजले सो राम.. बस अब तुम हाँ कह ही डालो, ताकि इस बूढ़े को विश्वास हो जाय कि तुम एक बार फिर हँसोगे।...ब दे बाबू और अर्चा बेटा तो, नमक हराम कहेंगे ही, पर तुमलोगों की भलाई के लिये, मैं सब कुछ सह लूँगा...सब झेल लूँगा..." और काका ने गालों पर ढुलके हुए अश्रु कणों को समेटा। चेहरे की झुर्रियाँ और भी सिकुड़ गईं। अवि असमञ्जस में पड़ गया। तनिक देर ध्यान, बड़े बाबू और अर्चना पर भी गया, पर वहाँ वह अधिक

देर स्थिर नहीं रहा। फिर विजया पर मन केन्द्रित कर वह साधारण स्वर में बोला—"काका—विजया की इच्छा भी तो जानना जरूरी है। कहीं वह इसे अपने पर जुल्म तो नहीं समझेगी ?" और मुनीमजी रोते हुए भी हँस पड़े—"बड़ा नादान है रे तू, अभी तक उसके दिल को नहीं टटोला क्या ? डर नहीं, वह देवी है, घर उजाड़ना नहीं जानती। देख लेना, वह हाँ ही कहेगी मुझे विश्वास है रे,।" अविनाश, अत्यन्त गम्भीर होगया। अंतर में घोर निराशा का भाव अव्यक्त दावानल सा, न जाने क्यों और कैसे सुलग पड़ा ? उस को यों चिन्तन में डूबा देख, काका बोला—"क्या सोचता है रे ? तुझे विश्वास नहीं होता क्या ?"

"विश्वास तो कर लूँगा काका—पर साहस नहीं होता। तेरा अवि अभी तक, बहुत बार छलागया है...भाग्य ने जब अनहोनी को होनी करदिया, तो कैसे अपने पर भरोसा करूँ ? कहते हो, तो जीवन को एक बार फिर दाव पर रखूँगा काका, खूब सोच लो, इस गर्दिश में भी, किसी भी रूप में रहकर विजया का जीवन बचा सका, तो मुझे भी जीने का बहाना मिल जायगा। लेकिन कहीं तुम्हारे प्रस्ताव ने विजया को मुझसे विलग किया, तो अवि फिर, पल भर भी दुनियाँ में नहीं रहेगा काका।"

"ऐसा नहीं होगा रे" गम्भीरता से ही मुनीमजी बोले—"तू चिन्ता न कर, वह बहुत बड़े घराने की है ..जा अभी उसके मन की थाह लेले। अगर ऊहा पोह देखना तो इस बूढ़े से कहना, चल कर तेरे लिये झोली पसार, याचना करूँगा... अभागे...

तू ही तो एक मेरा सहारा है, तुझे यों न मिटने दूँगा ..।" और मुनीमजी भरी आँखों से चल पड़े अवि चिन्तन में डूबा हुआ बहुत देर तक विजया, और न जाने किन किन के बारे में बहुत कुछ सोच गया। जिस समय उठ कर वह घर की ओर चला, मुख का भाव यह अवश्य व्यक्त कर रहा था कि किसी अटल निश्चय की आभा, वहाँ अवश्य विद्यमान है।

वह जिस समय घर पहुँचा, विजया कोई पुस्तक में उलझी हुई थी। आहट मिलने पर, योंही जो उसने सिर उठाया अवि के गम्भीर मुख पर दृष्टि चली गई। सहम कर उसने पुस्तक बंद करदी और अवि के निकट जिज्ञासा से आकर, कोट उतारने लगी। वह कुछ बोला नहीं। केवल एक पैनी नजर, विजया के चेहरे पर डाल, न जाने वह क्या पढ़ने का प्रयास करने लगा तो विजया, तिलमिला कर बोली—

"ज्वार आने का समय तो नहीं, जो अन्तर की इतनी जाँच पड़ताल कर रहे हो? मन का हाल तो आँखें कह देंगी ही।"

सुनकर अवि कतरा गया। झिझक से फिर विजया की ओर उसे देखने का साहस ही नहीं रहा। विजया अब भी वहीं खड़ी थी। अवि को यों चुप देख, उस से रहा न गया—"न बोलने की प्रतिज्ञा की है क्या?"

"नहीं विजया—" अवि बोला—"आज नैया को फिर तूफान ने घेरा है... पतवार तेरे ही हाथ है, डर तो नहीं, पर सोचता हूँ—इसे कहीं व्यर्थ ही जान, ठुकरा दोगी, तो किनारा

नहीं मिलेगा न ? जीवन भर भटकता रहूँगा—" अवि ने इतनी गम्भीर वाणी में कहा. कि पुनः किसी अशुभ की आशंका में विजया का दिल धकसे रह गया। चुहलबाजी की मुद्रा विलीन हो गई और गम्भीरता का रंग मुख पर चढ़ गया। वह बोली "जब भी आओगे, अशुभ तुम्हारे साथ ही रहेगा क्या...? फिर जल्दी से कहोगे भी नहीं, जो शीघ्र ही अंत की तैयारी करलूँ "

"डरो नहीं—" तनिक सरल होता अवि बोला—"मरूँगा मैं ही . तुम नहीं...हाँ, सम्बन्ध तुम्हारा भी है...।"

"तो फिर कह क्यों नहीं डालते, अपनी मौत के बाद सोचते हो कि मैं बची रहूँगी ? मुझे यों सताना अच्छा लगता है क्या ?"

सुनकर अवि अन्तर द्वन्द्व में फँस गया। 'कहे' या 'न कहे' की समस्या ने इतना बड़ा संघर्ष खड़ा कर दिया कि सहसा ही वह कोई निर्णय न कर सका। इधर विजया की ऐसी अवस्था हो गई, जैसे कि अभी अभी फाँसी का हुक्म सुनाया जा रहा हो और वह जिन्दगी की हर श्वाँस को अमूल्य जान, उनका सतर्कता से लेखा जोखा कर रही हो। नयन अब भी अवि के मुख पर ही अवस्थित थे। वह तनिक देर बाद बोला—"आज जीवन को एक बार फिर दाव पर रख, पासा फेंक रहा हूँ विजया, देखें भाग्य में क्या लिखा है ? चाहोगी तो भावी को तुम्हारी 'हाँ' और 'ना' के सुपूर्द कर दूँगा...। जीवन तुम्हारे ही बस में है।"

सुनकर विजया अनुमान लगाने लगी कि कौन सी परीक्षा के हेतु यह विषम घड़ी उपस्थित हुई है। सहसा ही वह कोई निर्णय न कर सकी। जिज्ञासा की इच्छा से ही पूछा—"कह क्यों नहीं देते, सरलता तुम्हें पसन्द नहीं क्या? यों पहेलियों की उलझन में जिन्दगी क्यों उलझा रहे हो? कहीं प्रश्न सुनने से पहले ही शाँस ने धोखा दिया, तो मन की मन ही में रह जायगी।"

और अवि लाख लाख प्रयत्न कर एक ही श्वाँस में झटक कर बोल गया—"मुझसे विवाह करोगी...?"

विजया का तो दम घुट रहा था। पता नहीं वह सुन भी सकी या नहीं। अब की अविनाश की ऐसी स्थिति थी, जैसे कि फाँसी का फंदा गले में ही है, और जल्लाद बस रस्सी खींच ना ही चाहता है। वह अधमरा सा विजया की ओर देखता हुआ बोला—"कुछ बोली नहीं...तुम्हें निर्णय देना है...।"

सुनकर विजया अचानक नयनों का भाव बदल अधमरी भाषा में बोली—"तुम कैसे उत्तर की याचना करते हो? पाँवों की धूल को मस्तक पर चढ़ाना अच्छा है क्या? इस अभागिनी को अपने बराबर क्यों समझने लगे? अपने जीवन की तो परवाह करो, यह पतिता तो पाप में भी जी लेगी...जिस की न कोई ठौर, न ठिकाना ..।" और विजया को आँसू छलक पड़े। अवि वेदना से पिघलता हुआ बोला—"याचक के रूप में तो, मैं उपस्थित हुआ हूँ...तुम्हारा पता ठिकाना जानकर क्या

करूँगा ? जैसी भी हो, मेरे लिये दाता ही रहोगी जैसा आत्मा कहे, कह दो, अवि 'हाँ' और 'ना' दोनों सुनने के लिये जिन्दा रहेगा ।" सुनकर विजया कुछ चिंतन करने लगी। अवि उसे अबोध सा जान पड़ा।

वह बोली—"तुम नारी से लज्जा का अवगुण्ठन भी छीन लोगे क्या ? गर्व करने के लिये क्या रहेगा उसके पास ? मुझे बेशर्म बनाना अच्छा लगता है न ? तुम चाहते हो...मैं सब कुछ जुबान से कबूल कर लूँ..?"

"हाँ विजया, ताकि मेरे विश्वास का कोई भी सूत्र कच्चा न रह जाय, न जाने क्यों आज मन, सब कुछ तुम्हारे मुँह से ही कहलाना चाहता है ? काका ने तुम्हारे मन की थाह लेने को कहा है। क्या जवाब दूं उन्हें ?"

"मैं नहीं कहूँगी, शरारत कहीं के—"

विजया बोली, और ऐसी कतराई कि मानो शर्म से जमीं में ही गड़ जायगी। अवि उसके भाव पर विभोर तो हुआ, पर उसे न जाने यह क्यों नहीं विश्वास हुआ कि उसके प्रश्न का उत्तर मिल गया। अतः घूमी हुई विजया के निकट जा उसने धीरे से कहा—"कबतक शंका को सेज पर झुलाती रहोगी, मन कहीं तुम्हें गलत तो नहीं समझ रहा ? तुम्हें पाने के लिये, मुझे फिर जन्म लेना पड़ेगा क्या ?"

और विजया आँधी की तरह, वेग से मुँह घुमा कर अवि से लिपट, फफक कर रो पड़ी। अवि हक्का-बक्का रह गया।

मन में अतीव आनन्द का उपभोग कर वह इतना ही बोल सका—'विजया तुमने मुझे बचा लिया वरना, मर मर कर हजार बार जन्म लेना पड़ता।...मैं निहाल हो गया री ..."

आँसुओं में डूबी विजया तो कुछ नहीं बोली, पर उसकी मासूम आँखें अवश्य कह रही थी -"अवि रे मैं तो तेरी ही भोग्या हूँ ..। और इस भाव के जागते ही, अनजाने ही अविनाश की बाहों का बंधन भी कसा गया। आनन्दातिरेक में विजया सिसकी भी या नहीं, यह ज्ञात न हो सका। लेकिन इतना तो जान ही गये कि प्रकृति, इन दोनों के मधुर मिलन पर अतीव प्रसन्न हुई।

× × × ×

और इस घटना के एक सप्ताह बाद ही, अविनाश और विजया की शादी, बिलकुल साधारण तरीके से हो गई। दो चार दिन वस्तुतः इस मुहल्ले में चहल-पहल रही और मुनीम जी, दुल्हन के बाप बने, मानों एक बहुत बड़े भार से मुक्त हो, स्वच्छन्दता से शाँस लेने लायक हो गये। बहू-बेटे को अंग-प्रत्यंग से आशीर्वाद दिया था— 'गंगा-यमुना की तरह सौभाग्य अचल रहे—'और राजू को जी भर प्यारा दुलारा था।

यह सब तो हुआ, पर शादी वाली रात, जब सब वैवाहिक कार्य सम्पन्न कर मुनीमजी घर लौटे थे, तो अर्चना से भेंट हुई थी। वह अभागिनी काशी से लौटकर लखनऊ चली गई थी। आज फिर अवि को तलाशने के लिये काका से कुछ

सूत्र इकट्ठे करने आई थी, सो उन्हें देखते ही बस इतना बोली—"काका नाव डुबाये मल्लाह से, चले आ रहे हो.. कहीं अवि का भी पता चला ?"

और उसे देखकर मुनीमजी चौंके अवश्य; पर शीघ्र ही अपने को संयत कर, बस इतना ही बोले—"हमारे ऐसे भाग कहाँ बेटी! उस निर्मम की सूरत तो शायद इस जन्म में न देख सकूँगा...।"

और अर्चना को मुनीम जी न जाने क्यों, अपराधी से जान पड़े। वह हताश सी बिछौने पर पड़ गई और इधर मुनीमजी के मन ने कहा—बाल बाल बचे।

तो इस तरह अविनाश को तो मिल गई विजया, और विजया को मिल गया- नये शिरे से जीने का बहाना। लेकिन अभागी, अर्चना को क्या मिला? तबाही, बरबादी, और जीवन परयन्त का चिर वियोग, जिसकी आँच में वह तिलतिल जलेगी, जल जल बुझेगी। बस एक शमा की तरह।
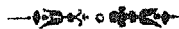
६

और विवाह हो गया। समय का चक्र चलता रहा। पल पल परिवर्तित होनेवाले सृष्टि-कलेवर के साथ, अब विजया में भी महान परिवर्त्तन स्पष्ट झलकने लगा। जीवन की अवरुद्ध धारा, शादी होते ही, मानों युग युग का बंधन तोड़, नैसर्गिक रूप में, इतराती बल खाती प्रवाहित होने लगी। कहाँ तो विजया, बोलते भी झेंपती थी, और कहाँ अब अपने अल्हड़ रूप को बरबस ही, बात बात में प्रगट करने लगी। कल तक दुबक कर भींगी बिल्ली बनी रहने वाली बाला, अब मानो, अनुकूल अवसर प्राप्त कर बिलकुल शेर हो गई थी।

अवि, विजया के इतना शीघ्र परिवर्त्तन से दुखी नहीं हुआ, वरन उसे तो असीम आनन्द हुआ कि विजया का जो नारीत्व अवरुद्ध था, अब अपने स्वभाविक रूप में पूर्णतः विकसित होगा। यहाँ तक कि, अब तो इन दो एक दिनों में ही अवि से विजया बात बात में ज़िद कर लेती थी और विवश हो अवि

जब झुकने को तत्पर होना, वह कटे वृक्ष सी उसके सामने लुढ़क कर कह देती—"मुझ पर पाप न चढ़ाओ " और अवि विभोर होता सा हँस देता। राजू भी पूर्ण उत्फुल्ल रह, अब पिछले दिन भूलता जा रहा था।

तो विजया और अवि की शादी हुए कुछ दिन भी नहीं बीते कि पेरीवाल कम्पनी ने कार्य की सुगमता के लिये, कलकत्ता में शाखा खोलने का निश्चय कर लिया। मालिक ने अवि की कार्य कुशलता से प्रसन्न हो, एक साथ ही चार सौ रुपये की वृद्धि कर, उसे कलकत्ता ऑफिस का मैनेजर बना, भेजने की व्यवस्था कर दी।

आवास के लिये थियेटर रोड में एक बंगला लिया गया एवं कम्पनी का कार्यालय भी चौरंगी में ही स्थापित किया गया। छोटे मोटे सात कर्मचारी एवं एक बंगले पर रहने के लिये दरबान भी अलग से बहाल हुए। अवि इन सब पर सर्वोपरि कार्य संचालक बना।

मालिक के इस आदेश से, आशा से अधिक ही अवि को प्रसन्नता हुई। कारण दिल्ली में सदा ही लोगों के बीच में आने से वह झेंपता रहता था। दुख था तो केवल इतना ही, कि पिता का वात्सल्य प्रदान करने वाला प्रिय काका, नहीं रहेगा, वरना सब कुछ था ही। विजया और राजू को लेकर, उसकी छोटी मोटी गृहस्थी, वास्तव में स्वर्गिक सुख प्रदान करने वाली होगी, ऐसा उसका मन कह रहा था।

मुनीम काका रोज ही दोनों शाम, बहू-बेटे की खबर लेने आया करते थे। अर्चना, शादी के दूसरे सबेरे ही, लखनऊ से, एकाएक पिता का तार मिल जाने से लौट गई थी। जाते समय काका से इतना ही कहा था—"न जाने क्यों, आज दिल बैठ गया काका! मुझे ऐसा मालूम पड़ता है जैसे मेरा सबकुछ लूट कर अवि, कहीं ऐसी जगह चला गया, जहाँ मैं नहीं पहुँच सकूँगी... फिर भी उसे खोजूँगी अवश्य। तो काका, तुम्हें कोई सूत्र मिले तो लिख भेजना," और मुनीम ने केवल भरी आँखों से, उसे विदा कर देदी, कहा कुछ नहीं।

आज संध्या को मुनीमजी जब अवि के यहाँ आये, तो देखा वह भन्नाया सा 'सूट बूट' डाँटे ऑफिस की पोशाक में ही तना बैठा है। तनिक आश्चर्य तो अवश्य हुआ, पर बूढ़ा कुर्सी पर बैठते हुए शायद अन्दर विजया को सुनाने के लिये तनिक जोर से ही बोला—"बहू बेटा, बूढ़े को एक प्याला चाय मिल जाता, तो जी भर आशीर्वाद देता...थक गया हूँ री।" पर अन्दर से कोई उत्तर नहीं मिला।

अवि ने उत्सुकता प्रगट करते हुए काका की अभ्यर्थना की और हास्य की मुद्रा बना कर कहा—"काका! आज तुम्हारी बहू रानी का पारा कुछ गर्म है। जब से आया हूँ, मनाते मनाते परेशान हो गया, पर यह तो नाक पर मक्खी भी नहीं बैठने देती। जब डाँटा तो कहने लगी—"आने दो काका को, वो मरम्मत कराऊँगी, जो याद रखेगा"

"क्यों रे, क्या बात हो गई? लड़ाई झगड़ा किया है क्या?"—मुनीमजी बोले—"आदत नहीं सुधरी न? कुछ कहा तो नहीं?"

"अब तुम भी, बस लगे उसका पक्ष लेने...पहले सुन तो लो काका! विजया को तो प्रसन्न ही होना चाहिये था। मालिक तो एक साथ ही चार सौ रुपये मासिक वृद्धि देकर, मुझे मैनेजर बना, कलकत्ता भेज रहे हैं...और य' है कि तब से जहर उगल रही है। देखो ना ..अभी तक मेरा कोट नहीं खोला, जूते नहीं उतारे, काका! तुमने इसे सिर पर चढ़ा दिया है...।"

अवि की बातें सुनकर मुनीमजी को अव्यक्त प्रसन्नता हुई। फिर आश्चर्य भी हुआ कि अपने दैनिक साधारण कार्य भी अवि, अपने से नहीं करता। अतः तनिक झुँझलाकर वो बोले "हैं रे, ये कपड़े क्यों नहीं बदले? माना कि बहू को अवकाश नहीं था, तो क्या तुम लाट सा'ब हो, जो कोट नहीं खोल सकते, जूते नहीं उतार सकते? ये बातें अच्छी है क्या?"

सुनकर अवि झेंप गया। दबी वाणी में बोला—"क्या करूँ काका, विजया ने आदत बिगाड़ दी..." और उसने कोट अलगनी पर रख दिया।

इतने में देखा, कि विजया भी चाय का पूरा सामान लिये, तनिक खिन्न सी उपस्थित होगई। मुनीमजी देखते ही अधीर हो बोल पड़े—"देखा न, मेरा कितना खयाल करती है बहू बेटा! और एक तू है, जो आदर भाव भी नहीं जानता। हाँ बेटा, क्या

बात हुई ? अवि झगड़ा है न ? तुम्हें छोड़ कर कलकत्ता जा रहा है क्या ?"

विजया कुछ बोले, उससे पूर्व ही अवि नयनों में शरारत का भाव लिये व्यंग्य कर बैठा—"तुम कितने ही तार उमेठो काका ! सितार से सुर निकलने वाले नहीं, पूरी मरम्मत की जरूरत है।"

"पागल कहीं के, चिढ़ा रहा है बहू रानी को...?" और काका पोपले मुँह से 'हो हो' कर हँस पड़े। विजया और भी तुनक गई। अवि जिज्ञासा का भाव लिये, भौंहें तिरछी कर उसकी ओर देखने लगा। तबतक प्याले में चाय ढल चुकी थी। दूध भी अवि के लिये चीनी मिलाकर तैय्यार हो गया। विजया ने चाय का प्याला काका की ओर बढ़ाया तो उन्होंने ले लिया, पर अवि ने दूध का पात्र, विजया के हाथ में प्रस्तुत जान कर भी नहीं लिया। तनिक देर यह दृश्य देख, अंत में चाय की घूँट लेते मुनीमजी ही बोले—"अरे, ले क्यों नहीं लेता, दूध ठण्ढा हो रहा है ?"

"ना काका, हम गूंगे के हाथ का नहीं पीते, इस में मिठास नहीं होता..." अवि बोला। सुनकर विजया क्रोधित हो गई। नयन तिरछे कर अवि की ओर देखती बोली—"काका पूछ लो—पीना हो तो पीये...वरना नाले में गिरा दूंगी . तुमने देखा है न ! सामने ही तो चीनी डाली है..."

"वो मारा " अवि उछला -"देखा न काका, अंत में सितार से सुर निकले। मैं इतना बेवकूफ नहीं, जो परोसी

थाली को ठोकर मारूँ।" और उसने झपट कर विजया के हाथ से जो दूध भरा पात्र छीना, तो जल्दी में दूध छलक कर विजया की साड़ी पर गिर पड़ा। बस फिर क्या था? मानों आग में घी की आहुति पड़ गई हो। उबल कर विजया ने आव देखा न ताव, केटली में बचा हुआ चाय का पानी फेंक दिया अवि के ऊपर। सारे कपड़े भींग गये। वह चिल्लाया—"बाप रे...जल गया।" और उसने भी दूध भरा गिलास सारा का सारा विजया पर उड़ेल दिया। बेचारा मुनीम तो हक्का-बक्का रह गया। तनिक देर तो सूझ ही न पड़ा कि क्या करे? फिर अवि को डाँट के स्वर में बोला—"अभी तक भी तेरा बचपन नहीं गया न अवि? भला, कपड़ों से भी इस तरह हँसी की जाती है?"

"तुम भी इसी की तरफ बोलते हो काका—" गुस्से में ही अवि बोला—"देखो ना, मेरा 'सूट' खराब कर दिया। गर्म पानी से चमड़ी जल गई।" और वह हाँफने लगा। अब तो विजया का भी चुप रहना असम्भव हो गया। अधिक क्रोध में आँसू छलक पड़े, पर उन्हें पलकों में अवरुद्ध करने का भर-सक प्रयत्न कर, रोष में ही बोली—"तुमने मेरी साड़ी पर दूध क्यों गिराया? छेड़खानी पहले तुमने की है...मैं तुम्हारे सारे कपड़े खराब कर दूंगी...देख लेना, एक भी नहीं छोड़ूँगी." और अब आँसू ढुलक पड़े। विजया हाँफती हुई सिसकने लगी।

मुनीमजी, बच्चों की तरह इनको यों झगड़ता देख हैरान

हो गये। यह रूप तो उन्होंने कभी नहीं देखा था। फिर भी दुःख, जरा भी उन्हें नहीं हुआ। सच तो यह था कि एक प्रकार का अनिवर्चनीय आनन्द ही उन्हें प्राप्त हो रहा था, क्योंकि बूढ़े की दृष्टि के सम्मुख कभी का बिछुड़ा बचपन, आज साकार हो हुड़दंग कर रहा था।

विजया को सिसकता देख, वो बेटे को डाँटने लगे—"अवि रे, सब गलती तुम्हारी है। मैं बहू रानी का पक्ष नहीं लेता, पर यह मैंने भी देखा है कि पहले तुमने ही 'बहू' की साड़ी पर दूध गिराया था। यह अच्छी बात नहीं। झगड़े का बीज तुमने रोपा है, बहू से तुम्हीं को क्षमा मांगनी होगी।"

अवि तुनक उठा—'वाह काका, अच्छा न्याय किया, विजया के आँसू क्या देखे, निर्णय ही बदल गया।...मैंने तो भूल से दूध गिराया था, पर इसने जानकर कपड़े खराब किये हैं। तुम्हें, मेरा पक्ष लेना होगा..."

मुनीम जी हँस दिये—"हाँ रे हाँ, मैं तेरी ही तरफ बोलूँगा, पर विजया बहुत छोटी है रे, देख रोते रोते आँखें सूज गई हैं। तुझे दया नहीं आती क्या? फिर भूल तो पहले तुमने की है, क्षमा मांगने से डरता क्यों है?"

और अवि ने देखा—विजया, सचमुच सुबक सुबक कर रो रही है। वेदना उसके अंग प्रत्यंग से चू रही है। वह आशा से अधिक ही विह्वल हो गया। पर सहसा ही, यों झुक पड़ना संभव तो नहीं था, सो अवि अंतर में कुण्ठा का व्यापार लेकर

भी अड़ा ही रह गया। मुख पर पश्चाताप का भाव, अवश्य प्रगट होगया था, जिसे मुनीमजी ने स्पष्ट लक्ष्य कर लिया। तनिक 'सह' देते हुए वे बोले—"माँगले क्षमा, वरना यह बड़ी जिद्दी है ..रूठ गई तो उम्र भर न बोलेगी, फिर पछतायेगा...।"

अवि फिर ऊहा पोह में उलझ गया। एक बार विजया की ओर देखा, जो उससे नयन मिलते ही और तुनक गई, और दूसरी बार काका की ओर बेबस सा देखते हुए अवि बोला—"दोनों मिलकर अन्याय कर रहे हो, ..फिर भी क्षमा मांगे लेता हूँ ।"

और जैसे ही अवि विजया की ओर जरा झुका, वह उछल कर पीछे हटती हुई शिकायत के स्वर में बोल पड़ी—"काका, यह फिर मुझ पर पाप चढ़ा रहा है,। दया करके कहो, यह चुप बैठ जाय। मुझे क्षेमा-क्षमा नहीं चाहिये .." अब तो अवि, छलक कर हँसता हुआ पलंग पर बैठ गया। मुनीमजी विभोर होगये। विजया अनजाने ही झुक कर अवि के जूते उतारने लगी। मुनीमजी ने अचानक टोक दिया—"नहीं बहू रानी, इस शैतान को स्वयं ही ये सब करने दो। यही इसकी सजा है। घड़ी भर में आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा ।"

"क्या क्या नहीं करने को कहोगे काका " झेंपती हुई विजया बोल पड़ी—"भोजन भी तो अकेला बैठकर नहीं कर सकता....और इस पर तो तुर्रा यह है, कि कलकत्ते अकेला ही जाऊँगा। दो दिन में ही होश ठिकाने लग जायेंगे ।"

"तभी ठीक होगा। बहू बेटा—" मुनीमजी ने कहा, फिर अवि से पूछा—"हैं रे, तू कलकत्ता अकेला ही जा रहा है क्या ? कौन बैठा है वहाँ, जो तेरे ये सब कार्य कर देगा ?"

सुनकर अवि ने पुनः शैतानी की "काका, लोग कहते हैं, वहाँ सब कुछ मिलता है। रख लूँगा एक दासी। विजया से तो जरूर अच्छा काम करेगी।"

सुनते ही विजया बिजली की तरह कड़की—"तो फिर उसी से करा लेना—" और अवि के जूते वहीं पटक क्रोध में सुलगती, आँधी की तरह अंदर चली गई। बेचारे मुनीमजी विस्मय से पुकारते ही रह गये। अवि ठहाका मार कर हँस पड़ा। काका ने विरोध प्रगट किया—"नहीं बेटा, ऐसी हँसी अच्छी नहीं। अभी तो जीवन का सवेरा ही है। कल बाल बच्चे होंगे, तो तुम्हारे ऐसे झगड़े का उनपर क्या प्रभाव पड़ेगा ? कैसे निभेगी, भगवान् ही जाने...जा उसे मना ले .."

अवि तनिक झेंपते हुए बोला—"घबराओ नहीं, वो मान जायेगी काका !" और विजया जाते हुए, अवि की बात सुन, अन्दर ही से चिल्लाई—"मैं नहीं मानूँगी काका, यह चाहे लाख मनाये..." और उसने सामने आये बर्त्तन को ठोकर मार दी। झन्न् से शब्द हुआ तो मुनीमजी घबराये—"ठोकर लगी क्या बेटा ? चोट तो नहीं आई ?"

"नहीं काका, निश्चिन्त रहो, योंही डेगची लुढ़क गई...।" और काका लम्बी श्वाँस भर अवि की ओर देखने लगे। वह

साधारण अवस्था में ही था। काका को अपनी ओर ध्यान देते देखा, तो विषय बदलने के अभिप्राय से बोला—"काका, हम कल जा रहे हैं, तुम्हारी आज्ञा है न ?"

"हाँ बेटा, तुमलोग चले ही जाओ। यहाँ घुट कर रहना अच्छा नहीं। अर्चना बेटी भी बार बार आती है। बड़े बाबू का भी काशी में जी नहीं लगता। न होगा तो यहीं बुला लूँगा। फिलहाल, किसी से कुछ न कहूँगा, फिर एक दिन तो भेद खुलने ही वाला है। उस दिन लोग मुझे नमक हराम ही कहेंगे... पर मेरा भगवान् जानता है, अवि रे, जो कुछ मैं ने किया है, मेरी समझ से खानदान का भला उसी में है। वरना तुम नहीं जीते, यह मैं जानता हूँ...।" और इतना कह मुनीमजी दर्द में घुल गये। आँखों से अनजाने ही दो बूँद आँसू ढुलक पड़ें। पता नहीं, अवि ने उन्हें देखा या नहीं, पर वह रुँधे गले से बोला जरूर—"तुम्हारे उपकार जीवन भर नहीं भूलूँगा काका, इतना तो, कोई बाप भी अपने बेटे के लिये नहीं कर सकता..."

"नहीं रे नहीं, मैंने कुछ नहीं किया। सब भगवान् की इच्छा है बेटा...हम तो उसके चाकर हैं, जैसा नाच नचाता है, नाच लेते हैं।"

"हाँ काका, मेरा जी कहता है—अगले जन्म में मैं तुम्हारा बेटा बनूँगा"

"तू तो अब भी मेरा बेटा है रे," भाव-विभोर हो बूढ़ा

बोला—"कल शाम की गाड़ी से जायगा न...बहू और राजू बेटा को साथ ले लेना...मुझ बूढ़े की तो सद् कामना ही साथ रहेगी। भूलना नहीं रे इसे..." और वो मुँह घुमा कर रो पड़े। अवि भी दर्द में गीला होता हुआ बोला—"अपने जीवन बनाने वाले को, भूल कैसे सकता हूँ काका! पत्र बराबर लिखूँगा। कभी उत्तर नहीं आया तो समझूँगा, बाप बेटे से नाराज है, और भूल भी नहीं बताना चाहता..."

"मुझे अधिक न सता रे, लिखूँगा...जरूर लिखूँगा...कल फिर आऊँगा अब मैं चला...बहू को मना लिज्यो बेटा..." और बूढ़ा मुनीम सावन के बादल सा बरसता हुआ मकान के बाहर हो गया। अवि कुछ बोलना चाहकर भी, बोला नहीं।

कुछ देर अपनी अवस्था को साधारण कर, अविनाश अब विजया की ओर चल पड़ा। शायद रूठी राधा को श्याम मनाने जा रहा था। पर वह माननी, मानेगी भी?

बिजया रूठ कर अपने कमरे में जा कब निद्रा निमग्न हो गई, ज्ञात नहीं। राजू भी दोपहर से ही वहीं सोया था। अवि सकुचाता सा विजया को हेरता, वहीं पहुँचा। निकट आ, मंत्र मुग्ध सा, पत्नी के चाँद से मुखड़े को निहारने लगा। कजरारी कुन्तल राशि गालों पर छिटक कर मानों, नादान बादल के बिखरे टुकड़ों की तरह विजया के शशि मुख को ढँक लेना चाहती थी। ताकि दुनियाँ की मनहूस नजरें, उसका रूप न बिगाड़ दे। पर ऐसा हो कहाँ पाता था? चाँद का सौन्दर्य तो

छलक ही पड़ता था, कुन्तल पाश से ।

अवि अनजाने ही विजया की रूप मदिरा का पान कर मदहोश हो गया। नयन रतनार हो, न जाने किस सुरा के प्रभाव से झूम झूम उठे । अंग-प्रत्यंग में मादक सिहरन सी दौड़ गई। उसे ज्ञान ही नहीं रहा कि अभी अभी अल्पकाल पूर्व ही, वह विजया को रुष्ट कर चुका है। उन्मुक्त भ्रमर सा, वह पत्नी के अरुण अधरों का रस पान करने झुका ही था, कि गर्म श्वाँस के स्पर्श मात्र से विजया ने जागृत हो, उन्मीलित नयनों से देखा। परिस्थिति का ज्ञान तो उसे भी नहीं था, सो अनजाने ही भुज-मृणाल, अवि के कंठ हार बन गये । अब तो वह स्थिर न रह सका। नयनों में उन्माद के शत शत डोरे ले, जब अवि ने वासना की रास ढीली करनी चाही, तो सहसा ही विजया अधीर हो छिटक गई । अवि को विलग कर उठती हुई वह बोली—"इन नयनों की भाषा मैं पढ़ चुकी, तेरे रेशमी जाल में न उलझूँगी," अवि जैसे मंजिल के बिलकुल क़रीब आ, फिसल गया। तनिक झेंपता हुआ बोला—"भाषा पढ़ कर भी अनजान ही रहोगी क्या ? जाल कहाँ ..लाया है ? नीड़ में न आनेवाले पंछी से, याचना भर की है। दूर दूर उड़ना अच्छा है क्या ?"

"इस रैन बसेरे के सुख का मोह नहीं करूँगी । मैं चली..." और शोख़ बनी विजया कमरे से बाहर जाने लगी, तो अवि ने बरबस पल्ला पकड़ लिया—

"अय ! सुनो तो, मैं तो बहुत दिनों के लिये कलकत्ता जा रहा

हूँ। इस वियोग का ध्यान कर के भी, पल भर नहीं रुकोगी क्या ?"

"मैं तुम्हारी शैतानी जान गई हूँ। पल्ला छोड़ दो, अब भ्रान्ति में न रख सकोगे। कलकत्ता मैं भी चल रही हूँ, यह मुझे मालूम है .."

"तो तुम ने सब कुछ सुन लिया"—लम्बी श्वाँस भर अवि ने कहा—"यह चोरी अच्छी है क्या ? फिर कलकत्ता ऐसी महा नगरी में अगर तू खो गई, तो जी भर देखने की साध रह जायगी न ?"

"रह जाने दो—" और विजया झटके से पल्ला छुड़ा भागी राजू को आवाज देती हुई—"उठोगे नहीं राजू..."

बेचारा अवि, बस तनिक झल्ला कर के ही रह गया। यह भी न जान सका, कि अपनी राधा का रोष कम हुआ या नहीं। भागती विजया के मुख पर विजयोल्लास की मुस्कुराहट थी, सो अवि ने भी देख लिया था।

७

लखनऊ से अर्चना का तार मुनीम काका को अवि के कल-कत्ता जाने के तीसरे ही दिन मिल गया। शंकित मन से ही बूढ़े ने तार जो खोलकर पढ़ा, तो कलेजा बैठ गया। अरे बाप... अर्चना के पिता को पक्षाघात हो गया। उफ! हतभागी अर्चना! कितनी तबाहियाँ है तेरे नशीब में? और मुनीमजी अनजाने ही दो बूँद आँसू टपका, उसी दिन संध्या को, अपनी वर्षों पूर्व निश्चित की हुई बहू को, इस विषम काल में धैर्य बँधाने, लखनऊ चल पड़े।

रात के सघन अंधकार में, जब प्रकृति ऊँघना चाहती थी, अभागी अर्चना, काका को दिल्ली से आया जान, उनकी छाती से चिपक, विलाप करने लगी। सारी हवेली मानो, समवेदना में ही कोहराम कर उठी। बेटी को यों रोता देख मुनीमजी भी रोये, और जी भर सुबक सुबक कर आँसू टपकाये।

दूसरे दिन सुबह, लोथ के सदृश्य पड़े हुए पिता के पास ही अर्चना और मुनीम काका दोनों बैठे थे। अर्चना आवश्यकता से अधिक उदास थी और बूढ़ा काका जरूरत से ज्यादा सतर्क, ताकि बातों के सिलसिले में, अवि और विजया का भेद न प्रगट हो जाय।

अचानक बापकी देख भाल करती अर्चना ने काका से पूछा, "काशी से बाबू का इधर में भी, कोई पत्र आया था क्या? अवि का तो कोई सम्बाद नहीं न?"

अंतिम प्रश्न अर्चना ने निराशा के स्वर में ही पूछा था। सुन कर मुनीमजी अधीर हुए बिना नहीं रह सके। इस मासूम के खोटे भाग पर, दिल से एक 'आह' निकल गई।

"बाबू का मन काशी में नहीं लगता बेटी, यही लिखा था। वस्तुतः अवि का वियोग उन्हें चैन से थोड़े ही रहने देगा? न जाने निर्मम कहाँ छिपा बैठा है? कौन सी गली उसे निगल गई?"

जिस सफाई से बूढ़े ने असत्य सम्भाषण किया, वस्तुतः वह श्लाघनीय था। पर अर्चना ने कोई संदेह नहीं किया। वह अपने ही मनो प्रदेश में खोई बोली—"काका, बाबू से मिलने के बाद, मैंने भी कानपुर और इलाहाबाद की की खाक छानी है। कई दिन सोये हो गये .अब उस निर्मम को कहाँ ढूँढू? बाबू से अलग हो, वो मेरे पास तो आ सकता था। उसने मुझे भी छला है काका! अपने तो निष्ठुर कहीं तड़पता ही होगा, हमें भी जला रहा है। अकेली कितने

सद्में उठाऊँगी मैं...काका मेरा भाग फूट गया रे ! ऐसी खोटी नशीब लेकर मैं क्यों जन्मी ...?" और अर्चना फिर रो पड़ी। मुनीमजी घायल परीन्दे से, दर्द से तड़प उठे। अर्चना को धीरज बंधाने के उद्देश्य से, भरे गले से बोले—"बेटा, अब छलिये के लिये क्यों जान दे रही है ? दुख ही देने के लिये वह पैदा हुआ था। बाप के प्यार की परवाह नहीं की, मेरे दुलार को भूल गया। और तो और, वह तेरे सम्बन्ध को भी महत्व न दे सका। अब कैसी आशा ? बेटी, अब इसी में भला है कि हम भी ऐसा समझ लें, कि अविनाश नामका कोई व्यक्ति ही नहीं, जिस से कभी हमारा लगाव था। उसे भूलजाना ही अच्छा है।" मुनीम काका ने इस वेदना में भी, अब अपने मतलब की बात कही थी। यद्यपि रह रह के उनकी आत्मा में एक टीश उठती थी कि अर्चना की तबाही में उनका भी हाथ है। फिर भी, जब यह ध्रुव सत्य हो गया कि अवि और अर्चना का सम्बन्ध तो, वस्तुतः खण्डित हो ही गया, तो अब इस अभागी को उसकी आश त्याग, कोई अलग ही आशियाना बना लेना चाहिये। लेकिन जब अर्चना ने आह भरके कहा—"काका, उसे भूलना सहज है क्या ? अपने बसकी बात होती तो, अवि के चले जाने पर कभी आँसू भी नहीं निकलते। अपने को समझाना तो सहज है, मन को कैसे समझाऊँ ?"

"सो तो है बेटा ? पर जब उसने तुम्हारे सम्बन्ध को कोई स्थान नहीं दिया, तो फिर तुम्हें क्या पड़ी है ? सच तो यह है

कि तेरा कोई दूसरा घर बसने पर ही उस अभागे को मालूम पड़ेगा, कि इस दुराव का कितना भीषण परिणाम है। मेरा तो मन कहता है बेटा, समाज में योग्य वरों की कमी नहीं...मैं तेरे लिये ऐसा दुल्हा तलाश करूंगा .क... ..."

"काका !!!" बीच ही में अर्चना ने टोका—"तुम ऐसा नहीं कहो। मैं मर जाऊँगी...मैंने कभी स्वप्न में भी अपने से विलग, अवि के अस्तित्व की कल्पना नहीं की। काका ! मैंने बाप के बाद तेरी हवेली को ही अपना समझा है। अवि न मिलेगा तो जान रखना, अर्चना उम्र भर कँवारी ही रहेगी,। मैं अंतिम शाँस तक उस की राह देखूँगी, काका ! जरूर देखूँगी।" और वह कुर्सी से उठ विलाप करती हुई अपने कमरे में भाग गई। बेचारा बूढ़ा देखता ही रह गया। मन में विचार उठे—बूढ़े तेरा जाल नहीं फैलेगा। यह अभिमाननी मिट जायगी, गल जायगी, पर हार न मानेगी।

मुनीमजी का एक मन तो हुआ कि सारा भेद खोल, अर्चना को उलझन से विमुक्त करदे, पर जब बात खुलने के बाद अर्चना की उस भयानक स्थिति का ध्यान आया, जिसमें वह सुनते ही गला घोंट कर मर जायगी, तो काका सिहर कर चुप ही रहगये। अंतर के किसी क्षेत्र से स्वर ध्वनित हुआ—निष्ठुर मनुष्य, तूने ही इसका सर्वस्व स्वाहा कर दिया। एक दिन जब इसको मालूम होगा, कि विजया और अवि का विवाह तू ने ही सम्पन्न कराया, तो दम तोड़ती हुई तुम से यह पूछेगी—काका रे ! यह

किस जन्म का बदला लिया? मैंने तो कभी तेरा बुरा नहीं किया था—तो तू क्या जवाब देगा?

और बूढ़ा अन्तर द्वन्द्व में कराह उठा। वह बड़बड़ाया—'नहीं...मैं क्यों विचारूँ ...अर्चना के भाग्य में चिर वियोग ही था। विधाता ने अवि के लिये, विजया को ही बनाया था... मेरा क्या दोष? नियन्ता की जो इच्छा।' और वो परेशान सा, अपने रैन बसेरे में उठ चले।

मस्तिष्क की उस उथल-पुथल में ही, काका ने अवि को पत्र लिखा—

'बेटा रे! दुखी न होना। अर्चना के पिता को पक्षाघात हो गया। मैं लखनऊ ही आया हूँ। सोचा था, इस दुर्दिन मैं इस अभागी को कुछ सलाह दे, संकेत करूँगा कि वह तेरी आशा छोड़, अपना घर बसाले। पर बेटा, मेरे तो प्रस्ताव को ही सुनकर, वह रोती हुई चल दी। जाते जाते—केवल इतना ही बोली—काका, मैं उस निर्मम का इन्तजार जीवन की अंतिम श्वाँस तक करूँगी—अब बता, मैं क्या करूँ? अगर उसे स्पष्ट कह देता तो सच जान, वह जिन्दा नहीं बचती। इसीलिये तो मैंने कुछ कहा नहीं। अब सोचता हूँ, इस मसले को योंही छोड़, कल दिल्ली लौट जाऊँ। तू बहू रानी का पूरा खयाल रखना...। इन सब बातों को नियन्ता पर छोड़ दे। राजू बेटा अच्छा होगा। तेरे पत्र की राह यहीं देखूँगा। अभी अर्चना को कुछ न लिखना। वरना तो वह और भी दुखी होगी। बस...

और पत्र लिखने से काका के दिल पर से जैसे बोझ उतर गया, ऐसा ही अनुभव हुआ। एक जम्हाई ले, फिर वो नित्य क्रम में लग गये। मानों मानस के द्वन्द्व को वो भूल ही जाना चाहते हों।

× × × ×

नियत समय पर मुनीमजी का पत्र जब अविनाश को मिला वह दफ्तर में ही था। यों तो उसने भी पहुँच का पत्र तीन दिन पहले ही काका को भेजा था, फिर इतना शीघ्र कैसे उत्तर प्राप्त होगया, यह सोचकर अवि थोड़ा अधीर ही हुआ।

चिट्ठी जब पढ़ी तो अचानक ही अविनाश विचलित हो गया। अर्चना के विवरण ने मानस के तार तार झकझोर दिये। सारा 'विगत' एक साथ ही तीव्र गति से, मस्तिष्क के पट पर चलचित्र की तरह घूम गया। कॉलेज के दिनों का प्यार, अर्चना का सहवास, पहाड़ की चोटियों पर कलकल निनादित झरनों के तट पर, जीवन भर साथ निभाने का प्रण और जन्म जन्मान्तर एक साथ चलने के वादे, ये सब अविनाश को पल भर में झकझोर गये। एक करवट सी लेकर वह बड़बड़ाया—ये सब विचारना संगत नहीं। वह तो अब विवाहित है। ऐसा सोचकर वह अपनी विजया के प्रति, विश्वासघात क्यों कर रहा है? नहीं, वह नहीं सोचेगा...। और इस तरह अवि ने अर्चना को वहीं छोड़ देने का प्रयत्न किया। मन को दूसरी ओर लगा लेना ही अच्छा समझकर, वह विजया के विषय में

सोचने का प्रयास करने लगा, पर अर्चना पुनः मानस पट पर अवस्थित हो गई। वह अवि से याचना करने लगी—मुझे मेरा अधिकार देदो। आओ, अपने पुरुष को मुझमें लीन हो जाने दो। मेरा नारीत्व, युग युग से इसी याचना का भूखा है। तुम किसी दूसरे के नहीं होसकते, केवल मेरे हो...बस, सिर्फ अर्चना के।

वह गुन गुनाया—नहीं तुम चली जाओ... मैं विजया का हूँ ..वह मेरी पत्नी है विवाहिता पत्नी—फिर किसी ने पूछा—"तो तू उससे प्यार करेगा? अभागे, वह केवल तेरी सहानुभूति पा सकी है...दिल को टटोल कर देख,...विजया के लिये कोई स्थान है क्या?"

"है, अवश्य है, तुम उसे छीन लेना चाहती हो, नहीं...यह कभी नहीं होगा।" अवि इसी तरह अपने कक्ष में अधीर सा बड़बड़ा रहा था। मन की इस विक्षिप्तावस्था में, वह अधिक देर स्थिर नहीं रह सका। मानस लोक में स्पष्ट जान पड़ा—जैसे कि सारा संसार शत्रु होगया। सभी अपने लम्बे लम्बे हाथ पसार, विजया को उस से छीन लेना चाहते हैं। वह चित्कार कर रहा है और दुनियाँ उसे ऐसी जगह ढकेल देना चाहती है, जहाँ सभी कुछ तो जाना पहचाना है, पर बस एक विजया ही नहीं... वहाँ तो अर्चना है, जो उसे अपनी गोद में खींच रही है। अविनाश के मुख से अनजाने ही चीख निकल गई। पिउन घबराया सा अन्दर आया, तो अवि को अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ।

"टैक्सी बुला.. अभी घर जाऊँगा"

और अवि का भन्नाया स्वर सुन, बेचारा पिउन गाड़ी लाने चल दिया।

विजया उस समय, नये मकान में अविनाश का कमरा सज रही थी। कलकत्ता आने के बाद अभी तक भी पूरा सामान उपयोगिता की दृष्टि से, यथा स्थान नहीं रखा जासका था। सो विजया उसी कार्य में आज लीन थी। अचानक बोखलाया सा अवि अन्दर आया। विजया के हाथ आप से आप रुक गये। शंकित मन से उसने अवि की ओर देखा, तो कोट उतार पलंग की ओर फेंकते वह बोला—"दिन भर इन्हीं में डूबी रहोगी,...या घर आये मेहमान का भी कुछ ख्याल आयेगा?" और अवि ने अपनी बोखलाहट छिपाने का ढोंग रचा। विजया कुछ विशेष अंतर में पैठने के अभिप्राय: से पूछ बैठी—"मेहमान दारी का जहाँतक प्रश्न है, दिखावे के रूप में पलक पाँवड़े बिछाने वाला जिक्र मैं भी कर दूँगी। हाँ अपने बनकर आये हो, तो बैठने की मनाही नहीं। फिर सीधे से भी कह सकते हो कि दफ्तर में मन नहीं लगा। यहाँ बैठने पर फाइलें नहीं, दो चार शिकायतें ही सुनने को मिलेंगी। यों तुम्हें औरतों वाले नखरे आते ही हैं।"

"मेरे नखरों की बात कर रही हो, या अपनों की—"

अवि ने बीच ही में मुस्कुराते हुए पूछा—"फिर तेरे निकट बैठकर कौन सुनेगा कि यह काम नहीं हुआ, वो नहीं हुआ। बस

बातों में लगादिया। ये नथुने फूलने लगेंगे न ?"

"शरीर कहीं के ! मुझे चिढ़ा रहा है, बाबा थोड़े ही हैं जो पक्ष लेंगे। हाँ फिर मैं शिकायत नहीं सुनूँगी कि मेरी चीजों का पता नहीं चलता।"

"सो मैं नहीं करूँगा। बस दूध का प्याला जरूर चाहिये, सो तुम अभी लादो, तो हर्ज नहीं। दो चार घंटे का अवकाश दे दूंगा।"

"अपने मतलब की बात तो तुम बड़ी जल्दी कह देते हो ?"

"क्या करूँ, सीधापन ही अच्छा है। मुझे बनाव शृङ्गार पसन्द नहीं।"

सहसा विजया चौंक पड़ी। उसे शक हुआ कि कहीं अवि ने, मुझ पर तो ताना नहीं मारा ? क्योंकि आज उसने सचमुच बनाव शृङ्गार ही किया था। पाउडर का आलेपन, चन्द्र मुख पर सुहाग सिन्दूर का प्रतिदान, सुखंजन नयनों में पतली काजल रेख और झिलमिल जार्जेट की साड़ी में मानों अनावृत सा ही, उन्मुख यौवन। विजया का अनजाने ही अंग, प्रत्यंग सुलग उठा। असाधारण स्वर में बोली—"जी जल गया न ? मेरा तो तुम्हें कुछ भी नहीं सुहाता। काजल टीकी क्या कर लिये, बस तुम्हें बनाने का बहाना मिल गया। पर जान रखो, तुम्हारे तानों से मैं सूरत नहीं बिगाड़ूँगी..."

अवि, विजया के इस असंगत संभाषण से चौंका। वस्तुतः उसने ताना नहीं मारा था। पर जब तनिक सतर्कता से भर नजर विजया को देखा, तो दंग रह गया। अन्य दिनों की अपेक्षा वह

आज अतीव मोहक जान पड़ी और इसका कारण, सौन्दर्य-प्रसाधनों का प्रयोग भी हो सकता है, तो अवि सचमुच लज्जित हो गया। वह विजया के कथन का कुछ विरोध करे, तबतक तो वह अन्दर दूध लाने चल दी।

थोड़ी देर बाद जब वह लौटकर आई, तो अवि ने देखा—भड़कीली साड़ी के स्थान पर बिलकुल साधारण मैला कुचैला आवरण, मुख मंडल पर यत्र तत्र काजल का लेपन और कुन्तल पाश में विद्रोह का सजीव आह्वान। वह अचम्भित होने के साथ साथ, हँसे बिना भी न रह सका। विजया तो इससे और भी तुनक गई। अंग-प्रत्यंग मानों जल उठे। क्रोध में चेहरे की आकृति में विकार उत्पन्न हो गया, पर सेंवालन मध्य कमलिनी की उपमा, इससे और भी संगत जान पड़ी। अविनाश ने आपाद मस्तक विजया का निरीक्षण कर, व्यंग्य के लहजे में कहा—"सुना था, रूप जब हँसता है, तो फूल झड़ते हैं...पर आज यह भी अनुभव हुआ कि उसका विद्रोह, महान घातक भी है। यह किसका संहार करने चली हो? नयनों के डोरे पीड़ा ही पहुँचायेंगे क्या?'

"हाँ प्रहार भी तुम पर ही होगा। त्राण का संबल है क्या? वरना तो मौत, तरस न खायेगी .."

"इसकी चिन्ता नहीं करूँगा। जीवन भी है, इसका अनुभव नहीं हुआ। पर सुना है, मरनेवाले की हर इच्छा पूरी की जाती है। कुछ कह दूं क्या?"

"हाँ...जरूर कहो, पर मुक्ति की याचना न करना। मरण से छुटकारा नहीं होगा।" और विजया गौरव के भाव से भर गई। अवि ने तनिक समीप आ, दूध का प्याला लेते हुए विजया के माथे पर पड़ी, नागिन सी लट की ओर संकेत कर कहा—"इस भुजंगिनी को यथा स्थान जाने को कहोगी क्या, ताकि आवरण से हीन रूप देख, अपनी अन्तिम साध पूरी कर लूँ..."

"हट् शैतान कहीं के ?" और विजया सिहर उठी। अंग प्रत्यंग न जाने किस भय से काँप उठे। माथे पर पसीने की बूँदें झलकने लगी। अवि बेबस सा, बस एक बार उसकी ओर देख भर सका। विजया ने सरोष कहा—"इन कविताओं से पेट नहीं भरेगा...चुपचाप दूध पी लो...।"

"यह तुम्हारी आज्ञा है क्या ?"

"हाँ, ऐसा ही समझ लो "

"फिर तो जहर भी पी लूँगा...विरोध करने की शक्ति नहीं। सब दिन तुम्हारी ही बात मानता आया हूँ।...पर जान रखना, एक दिन विद्रोह का विस्फोट अवश्य होगा। उस दिन अंगारे आबद्ध रख सकोगी क्या ?"

"इन धमकियों से मैं नहीं डरूँगी...विप्लव की कहानी ही सुनी है, विजया ने उसका रूप नहीं देखा।"

"तो दिन रात जुल्म ही करोगी ? उभड़ने की आदत नहीं है। फिर करुणा का स्रोत सदा ही अवरुद्ध रहेगा क्या ?"

अवि प्रतिक्षण भावुक होता हुआ भी दयनीय होता जा रहा

था। ऐसा जान पड़ता था, जैसे पत्नी की इच्छा के सम्मुख, उसका अपना कोई महत्व नहीं। इधर विजया न जाने क्यों अधिक रौद्रमयी ही जान पड़ रही थी। अंतर में क्या था, सो तो ज्ञात नहीं, पर वह संवेदन शील नहीं जान पड़ती थी। अवि जितना ही गंभीर होता जा रहा था, उतनी ही वह किनारे पर उछल कूद कर रही थी। शनैः शनैः अवि में, वेदना ने घुलना-मिलना शुरू किया। दूध के पात्र से एक आध घूँट पी कर ही, उसने पात्र जमीं पर रख दिया। अपने कहे प्रश्न का समुचित उत्तर पाने के लिये, कातर निगाहों से विजया की ओर देखा। वह उसे अतीव क्रूर ही जान पड़ी।

जब विजया ने धीरे से कहा—"इतना भावुक होना, अच्छा है क्या? न जाने क्यों करुणा से ज्यादा, मुझे तुम पर क्रोध ही आता है...।"

सुनकर अवि स्थिर न रह सका। पलकें भींग गईं। वेदना उभाड़ खा, नयनों की राह बहने लगी। अब तो विजया भी अधीर हो गई। घबरा कर पूछा—"अरे तुम रो रहे हो? मैंने हँसी क्या की...तुम जान ही देने लगे। मनुहार करके तो दूध पिलाया, और तुम आँसुओं से उसका प्रतिदान दे रहे हो?"

"इस दूध की जगह जहर ही पिलाया करो।" अवि रंज होता हुआ रोष में बोला—"मैं उसी में सुख मानूँगा।"

विजया ने अब अनुभव किया कि अवि बहुत दुखी है। शायद उसे क्रोध भी हुआ है। अतः अब और अधिक हास्य

पर उतरना संगत नहीं। इसलिये वह भी गम्भीर हो बोली—

"जहर पिलाने का भी एक दिन आयेगा। अवि! जब मुझ से दिल भर जायगा, तुम को जहर पिलाकर, स्वयं भी पीलूँगी..."

"लेकिन ऐसा दिन आयेगा ही क्यों कर? लज्जा का अवगुंठन, तेरे नारीत्व की रक्षा कर लेगा। सत्य का नग्न रूप देखूँगा, तब तो आँखें फूटेगी न। उसकी याचना करके भी जिद्द न करूँगा। हाँ, इतना अवश्य कहूँगा, कि राग की चरम अभिव्यक्ति, विराग को जन्म दे देती है। ढलान देख, कभी लुढ़क पड़ूँगा, तो सम्हालना दुश्वार होजायगा, सो जान रखना।

सुनकर विजया चौंक पड़ी—"इतना हीन भाव संगत है क्या? स्वभाविक लज्जा को बदगुमानी समझ लोगे, यह तो मैंने नहीं सोचा था। फिर नारी से यह भी छीन लोगे, तो अभिमान के लिये, उस अकिंचन के पास क्या रह जायगा? ऐसा कह दूँ क्या, कि तुम्हारी आतुरता स्वभाविक नहीं।"

अविनाश भी अब अधिक गम्भीर हो चला था। विजया के स्वभाविक कथन में उसे सत्य का सभावेश ही जान पड़ा। वह संयत वाणी में बोला—"तेरी बातें सत्य ही मान लूँगा, पर आतुरता का लाँच्छन, संगत नहीं जान पड़ता। धैर्य की परीक्षा लोगी तो देख लेना, मैं उस दिन तक भी खामोश ही रहूँगा, जब कि मिलन घड़ी के इन्तजार में, शनैः शनैः तेरे सिर के बाल सुफ़ेद हो जायेंगे... और मेरी आँखें पथरा जायंगी। यों मुझे

व्यवहारिक ज्ञान नहीं। पत्नी रूप में मैंने, विवाह के बाद ही किसी को देखा है।"

"यह तुम अपनी पवित्रता का प्रमाण दे रहे हो क्या? विजया, यों भी तुम पर विश्वास कर लेगी...डर है तो अर्चना बहन की ओर से..." तो गम्भीरता में भी विजया चुटकी लेने से बाज न आई। फिर जैसे. बहेलिया तीर फेंक कर परिणाम का इन्तजार, बेसब्री से करता है, वह भी अवि के मुख का सूक्ष्मता से निरीक्षण करने लगी। तनिक तिल मिलाकर अवि ने कहा – "चंचल नारी! अपनी विवशता हास्य में तिरोहित करना तुम खूब जानती हो। वरना तो, ऊपर से इतनी कठोर जान पड़ने वाली नारी, तुम अंदर से बिलकुल खोखली हो। भय तो य' है, कि समर्पण की घड़ी में व्यर्थ सा ही खण्डित कौमार्य का भाव, कहीं हीनता न झलका दे। तुम अन्तर में विश्वास पाल रही हो कि पति का पुरुष, सद्भाव से तेरे नारीत्व को नहीं अपनायेगा।......पर ऐसा नहीं है री पगली! भोग का सम्बन्ध भावना से है और भावना की उत्पत्ति मन के उदर से। तन और मन को दो अलग वस्तु मान लोगी न, तो भ्रान्ति की निवृत्ति आप से आप हो जायगी। फिर पति और पत्नी में तो आत्माओं के सम्मिलन का प्रश्न उठता है, जो मन से भी ऊपर है। विजया की आत्मा पुण्यमयी है, इसके लिये अवि ने प्रमाण की याचना कभी नहीं की। रही अर्चना की ओर से भय वाली बात, सो निराधार तो नहीं। काका ने उसके बारे में

लिखा है। यह पत्र रहा। पढ़ कर मन उसके विषय में सोचे बिना न रह सका।" और अवि ने जेब से निकाल, काका वाला पत्र बढ़ा दिया। विजया ने उसे लिया नहीं, पर वह अवि से पूछे बिना न रही—"तो तुम पत्र पढ़कर ही विचलित हुए थे न...? वरना कभी आज का सा रूप न देख सकी थी।"

"हाँ विजया! तुम्हारा अभियोग असत्य नहीं। अर्चना के पिता पक्षाघात से पीड़ित हैं। मन ने उस बेचारी के विषय में सोचना शुरू कर दिया था, पर अचानक ही जब देखा, कि तुम्हें सूना जान, दुनियाँ के क्रूर हाथ, तुम पर फैल रहे हैं और तुम क्रमशः अवि की दृष्टि से ओझल होती जा रही हो, तो आत्मा चित्कार कर उठी। तुम्हें खोकर, क्या रहेगा मेरे पास? मुझे बहुत भय लगा...तभी तो दौड़ा आया हूँ..."

"यह खुशामद करने का नया ढंग निकाला है क्या?" विजया के कथन पर अवि को स्पष्ट जान पड़ा कि यह नारीत्व, लहर से भी अधिक चंचल है। अवि का पुरुष तो, बिलकुल साधारण है, जो दौड़ में अधिक बार फिसलेगा ही। इस भाव के आने से अविनाश के अन्तर से अनजाने ही हूक उठी और एक दर्द में लम्बी श्वाँस भर वह मुँह घुमाकर इतना ही बोल सका—"न जाने कबतक मैं, तुम्हारे मनोविनोद का ही साधन बना रहूँगा?" अब की विजया ने और भी स्पष्ट अनुभव किया कि अवि की आत्मा रो रही है। अनजाने ही नारी का स्वभाविक करुणा-श्रोत उमड़ पड़ा। हास्य, समवेदना में घुलकर प्रगाढ़

हुआ—"अय, नाराज न होना, विजया ने, भगवान् समझ कर तुझे पूजा है। रूठ जाओगे तो जिन्दगी दू भर होजायगी?"

. "विजया!!" अवि व्यग्र हो बोला—"मुझे यह पूजा पसन्द नहीं...अपने अलग अस्तित्व की कल्पना भी तुम न कर सको, अवि की यही कामना है।"

विजया को जान पड़ा, जैसे वह पकड़ा गई है। उसे अपने पर क्रोध भी हुआ कि अवि ठीक ही तो कहता है। उसने कभी पति को प्यार तो नहीं किया। एक दिन भी तो कभी वह उस के सुपुष्ठ वक्ष पर सिर रख, अन्तर का दाह नहीं मिटा सकी। अवरुद्ध कंठ से वह बोली—"तुम नारी का 'अहम्' मार देना चाहते हो न? विजया इसे स्वीकार करलेगी...?"

"नहीं विजया! तेरा नारीत्व मेरे स्वर में ध्वनित होगा री! अलग अलग तो दोनों ही अपूर्ण अर्थहीन नाद हैं न?"

सुनकर विजया ममतामई बन गई। अवि उसे बिलकुल छोटा सा बच्चा जान पड़ा। अनजाने ही हृदय से लगालेने को न जाने किस भाव से व्यग्र हो वह बोली—"तुमने सम्मिलन के हेतु मेरी स्वीकृति चाही न? यह भूल गये क्या कि विजया निर्लज्ज नहीं बन सकेगी। चाहते तो ताड़ना के बल पर भी अधिकार का उपभोग कर लेते। हम आर्यनारियाँ तो विरोध का साहस न करतीं। अवि रे! सच तो यह है, पत्नी का 'मान' ही याचना का भूखा है, वरना स्वभाव तो युग युग की दासता के कारण, या प्रकृति प्रदत्त अभिरुचि के वशीभूत, बहुत बार पति

की ताड़ना का भूखा रहता है। बल का प्रयोग करते तो बुरा न मानती।"

"लेकिन ऐसा नहीं कर सकूँगा विजया! अपने प्यार पर विश्वास नहीं रहेगा न? तुम किसी भी दिन अपने को सबल पा अनजाने ही बंधन को झकझोर, स्वच्छन्द होने की कामना कर लोगी। फिर तो अवि घड़ी भर भी दुनियाँ में नहीं रहेगा न...?"

"नहीं रे नहीं, अपनी विजया पर विश्वास करले, वह मानिनी जरूर है, पर इतनी शक्ति शालिनी नहीं कि तेरे बिना अपने अलग अस्तित्व की कल्पना भी करले। स्वार्थी तुम हो, इतना कहे बिना नहीं रहूँगी? इच्छा पूर्ति के लिये, शाम-दाम का ही प्रयोग सफल हुआ, ऐसा ही समझना। दण्ड-भेद की याचना न कर सके, यह जान कर धन्य ही हुई।" और विजया विभोर सी अवि के विशाल वक्ष पर सिर रख आत्मसात् होगई। युग-युग का प्यासा पुरुष शान्ति का अनुभव भी कर सका या नहीं, नियंता ही जाने। पर इतना अवश्य सत्य था कि विजया में अब वाचाल होने की शक्ति नहीं रही। किस तरह अवि की भुज-वल्लरी, विजया के कृश-तन-मृणाल को आगोश में आबद्ध कर सकी, यह ज्ञात नहीं हुआ। सचमुच अवि ने शायद विवाह के बाद आज ही क्षण भर के लिये संतोष का अनुभव किया होगा, ऐसा आत्मा कहती है।

८

हरदेव बाबू अर्चना का पत्र पाते ही आँधी के सदृश्य दौड़े हुए लखनऊ आये। साँझ के झुटपुटे में अपनी लाड़ली 'बहू-रानी' पर इस असम्भावित वज्राघात के होने से, उसे छाती से लगा बिलख बिलख कर विलाप किया। बचपन का साथी मोती लाल, आज लोथ हुआ खटिया पर पड़ा है। मुनीम गुमास्ते अपने प्यारे मालिक के लिये, अब केवल आँसू ही तो बहा सकते हैं। रोग का इलाज तो डॉक्टर वैद्य ही करेंगे न, सो उनका ताँता सुबह से शाम तक लगा रहता है। पर सेठजी ने जो आँखें मूँदी सो अभीतक एक पल के लिये भी नहीं खोली हैं।

हरदेव बाबू की छाती से लिपट, अर्चना जी भर रोई। जब अंतर की वेदना के घनी भूत कुहासे को आँसुओं की बूँदों ने जीर्ण करदिया, तब कहीं वाणी को वाचाल होने का संबल

मिल सका। बड़े बाबू को अत्यधिक अधीर देख, उसने हिचकियाँ रोकते हुए कहा—"बाबू ! तुम इतने अधीर बनोगे तो अभागी अर्चना को धीरज कौन बँधावेगा ? फूटे भाग पर बस तेरा आसरा जान संतोष कर लूँगी।"

हरदेव बाबू रोते हुए बोले—"सो तो है बेटा, पर उस निर्मम का ही दुख क्या कम था, जो यह नई मुसीबत खड़ी होगई। मन कैसे शान्त रहे री...! मेरा बचपन का साथी म्रियमाण पड़ा है और मैं.." इस से आगे वो नहीं बोल सके। वेदना ने कण्ठ-स्वर, अवरुद्ध कर दिया। अर्चना भी अब स्थिर न रह सकी। एक बार पुनः दहाड़ पाड़ रो पड़ी। हरदेव बाबू ने अपने आँसू पोंछ, अब उसे ही शान्त करना आवश्यक समझा- "रो नहीं बेटा ! मेरी जिन्दगी में तुझे क्या चिन्ता है ? बेटा, खोकर मैंने बेटी प्राप्त की है. तू मुझे अवि से भी ज्यादा प्यारी है री,...तेरी चिन्ता मैं करूँगा. तू न रो...।"

और बड़े बाबू अर्चना का प्यार से सिर सहलाने लगे। वह उनकी छाती में सिर डुबा, रोई और बहुत रोई। रात की गहन कालिमा ही इन दोनों प्राणियों को दुख से विमुक्त कर सकी होगी, ऐसा विश्वास कर लेना पड़ता है।

दूसरे दिन से बड़े बाबू और अर्चना रानी, दोनों मोती बाबू की सेवा टहल में जुट गये। उनका फैला हुआ कार्य समेट लेने का आदेश मुनीम को दिया गया और जहाँ-तहाँ लेन-देन है उस को शीघ्रातिशीघ्र सलटा लेने की भी योजना बनाई गई। इस

तरह व्यवसाय का समुचित प्रबन्ध कर हरदेव बाबू ने क्षण भर के लिये निश्चिन्तता की श्वाँस ली। फिर दो चार दिन योंही बीत गये।

अधिक दिन का रोग जैसे अपने शिकार को पीड़ा से अभ्यस्त सा बनादेता है, उसी प्रकार सेठ मोती लाल का रोग उनको तो लोथ बनाये था ही, बड़े बाबू और अर्चना भी, अब उस के वातावरण से अभ्यस्त से होगये थे। रोगी की सेवा उनके दैनिक कार्य क्रम में सम्मिलित होगई थी। ऐसी अवस्था में हरदेव बाबू के तो नहीं, पर अर्चना के मानस में अब भी अवि, यदा कदा अपने को उपस्थित कर उसे झकझोरा करता था। पिता की बीमारी से उत्पन्न विषम परिस्थति में भी, न जाने क्यों, वह अवि ही के लिये अधिक चिन्तित दृष्टिगत होती थी। इसका कारण होसकता है यही हो, कि लड़की होने के नाते, पिता का वियोग तो एक दिन निश्चित ही था, पर जीवन साथी का वियोग ऐसा नहीं, जिसे वह सरलता से सहले। सो अर्चना रह रह कर यही सोचा करती कि क्यों न पिता को हरदेव बाबू की संरक्षता में छोड़ वह एक बार अपने अविनाश के लिये, धरती का चप्पा चप्पा छाने और उस छलिये को ढूँढ कर ही दम ले। पर न जाने क्यों, ऐसा कहने का साहस, उसे बड़े बाबू के सामने नहीं होता था।

आज भोजन करते समय हरदेव बाबू ने पूछा—

"बेटा! मैं कल काशी लौट जाता..."

"यह कैसे होगा बापू ?"—बीच ही में अर्चना ने विरोध किया—"अगर तुम चले गये, तो जान रखना, अर्ची किसी न किसी दिन आत्मा हत्या कर लेगी" सहसा बड़े बाबू का ग्रास हाथ ही में रहगया। विस्मय से अर्चना की ओर पलकें उठाई तो वह मुँह घुमा रो पड़ी।

"रोती क्यों है बेटा ? ले मैं नहीं जाऊँगा...। मेरा क्या है, काशी में भी तो उस नालायक बेटे की याद ही झकझोरेगी, यहाँ तेरे पास मन तो लगता है।"

और अर्चना ने मनोनुकूल विषय छिड़ा देख, आँसुओं का वेग रोक कहा-"तो बापू ! मुझे आज्ञा देदो, बाबू को तेरे भरोसे छोड़, मैं उसकी खोज करूँगी...देखती हूँ कबतक छिपा रहेगा ?"

"नहीं बेटा, जब उसे हमारी चिन्ता ही नहीं, तो... ...हम ही क्यों परेशान हों..."

"बापू !!"—अर्चना ने दुख के उभाड़ में हरदेव बाबू को बीच ही में टोक दिया—"मुनीम काका ने भी यही कहा था—लेकिन तुम लोग समझते क्यों नहीं—अवि को भुलाना सहज तो नहीं ? बापू मैं जानती हूँ, मेरा सम्भाषण शोभनीय नहीं, पर अपने से कोई जीत सका है क्या ? अर्चना तुम्हारी लिहाज करके नहीं बोलेगी। लेकिन मेरे मन को कैसे मनाओगे ? उसका जीवन भर साथ निभाने का प्रण स्मरण कर, यह दिन में लाख बार उसके लिये धड़कता है। बापू ! तुम्हारा वह केवल बेटा है लेकिन मेरा तो वो सब कुछ था बापू सब कुछ !" और अर्चना

रोती हुई भागी अपने कमरे में। हरदेव बाबू स्तम्भित से आहार करना छोड़ सोचने लगे—'ठीक तो कह रही है। माना कि, मैं पका हुआ फल हूँ। किसी भी समय टूट कर गिर सकता हूँ ..पर अर्चना के सामने तो पूरा जीवन पड़ा है। इसने अवि को पति रूप में ग्रहण किया था, फिर यह कैसे अनिश्चित काल के लिये, अपने को अंधकार में रख सकती है? इसके लिये, अवि का मिलना नितान्त आवश्यक है। वरना यह......शायद किसी दूसरे को पति रूप में ग्रहण नहीं करेगी और आजन्म अविवाहित रह, तड़प तड़प कर मर जायगी...। ओह! इतना दुखद अंत...इस मासूम बच्ची का?'

ऐसा सोचते हुए बड़े बाबू अर्चना के कमरे में चल पड़े। पलंग पर चित्त लेटी वह घड़ों आँसू, अब भी बहा रही थी। बड़े बाबू ने सिर पर दुलार से हाथ फेरते हुए कहा—"तो अब रोती ही रहेगी? समझ तो रहा हूँ कि तू उसके बिना नहीं जी सकेगी...लेकिन वह अभागा तेरे आँसुओं की भाषा पहचाने तब तो? अब ज्यादा रोयेगी, तो मेरा जीना भी दुश्वार होजायगा। ले आँसू पोंछ ले...।"

और हरदेव बाबू के स्वर में व्यथा का आभास पा, अर्चना ने अपने को संयत करलेना ही श्रेयस्कर समझा।

अल्प काल अपने मनो प्रदेश में अविनाश के बारे में इधर उधर सोच कर, अर्चना ने अब दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह बापू से आज अवश्य जानकर रहेगी कि बेटा किस कारण बाप

से बदगुमान होगया। अतः बड़े बाबू का मुख अन्वेषक की तरह हेरती अर्चना बोली—"बापू ! बुरा न मानो तो अर्ची आज यह जानने के लिये अतीव व्यग्र है कि बाप-बेटे के झगड़े का क्या कारण था ? क्या अनिश्चित अवधि के लिये उसे बनवास दिया है ? लौटने की सम्भावना नहीं है क्या ?"

हरदेव बाबू अत्यन्त व्यग्र हो म्रियमाण से होगये। सहसा ही, बेटी के इस प्रश्न ने मुँह पर स्याही सी पोत दी। जान पड़ा जैसे जिज्ञासा की निवृति में प्राण निकल जाने का भय है। फिर भी चुप तो नहीं रहा जायगा न ? अर्चना तो व्रत सा ले बैठी है कि झगड़े का कारण वह जान कर रहेगी। तो हरदेव-बाबू ने कहा -"अर्ची बेटा ! अपना अवि, पिता आज्ञा से ही बनवास गया है री...और लौटेगा भी अवश्य...पर राम की तरह पिता के जीवन में नहीं, जब मेरी चिता धू धू जल जायगी वो अभागा जिज्ञासा में अवश्य आयेगा कि ..मेरा बाप कब चल बसा...कैसे मर गया...?" और हरदेव बाबू पुनः सजल होगये। अर्चना ने मुँह घुमा व्यथा की टीस को दबोच दिया। बड़े बाबू एक बार अर्चना की ओर देख फिर बोले-"लेकिन तुम नहीं रोना बेटा ! तेरे लिये वह एक दिन अवश्य लौटेगा... और वह दिन तेरे बड़े भाग का होगा री।"

"हाँ बाबू, यही दुराशा तो जीने का बहाना बनी है। यह न रहती तो अभागा इन्सान इतना थोड़े ही छला जाता ? आत्म हत्या ही न कर लेता। पर तुमने मन मुटाव का कारण तो नहीं बताया ?

"बिटिया ! बहुत सी बातें ऐसी होती हैं जिनका भेद खुलने से जीवन और भी अशान्त होता है।...सच तो यह है...अवि मेरी जायज संतान नहीं...और यह रहस्य मैंने ही क्रोध में खोल दिया था।" कहकर बड़े बाबू हत्यारे के समान बेबस से अर्चना की ओर पल भर देख सके। अर्चा पर तो मानों अचानक आकाश टूट गिरा था, ऐसे ही वह चौंक कर सिहर उठी। सहसा ही हरदेव बाबू की बात पर विश्वास नहीं हुआ। ऐसा तो उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। वस्तुतः वह प्राण हीन प्रस्तर प्रतिमा सी मूक बनी बड़े बाबू की ओर देख भर सकी। हरदेव बाबू उसे सांत्वना देते से बोले—"मेरा भगवान् जानता है बेटा, इस बूढ़े ने प्यार और ममता का सागर सींच कर उस निर्मम को पाला था, यह दिन देखने के लिये तो नहीं। बाप ने तो बेटे के लिये स्वयं ही दरवाजे बंद किये हैं...पर तू सोच न करना...एक दिन वह, तेरे लिये अवश्य लौटेगा...तू उसकी जिन्दगी है न ? तुझ से क्यों रूठेगा...अभागा तो मैं ही हूँ। आजीवन उसे गले लगाने के लिये तड़पूँगा...।"

सुनकर अर्चना सिहर उठी। अब उसकी समझ में यह भेद आया कि अवि लखनऊ क्यों नहीं आया। शायद इस भेद के जान लेने पर उसने अवश्य सोचा होगा कि बड़े बाप की बेटी अर्चना को वो भुलावे में नहीं रखेगा...वह अब उसके लायक नहीं। सभी की तरह शायद उसने भी प्यार को, तराजू पर दौलत के साथ तौला होगा। उफ़ ! अब अर्चना उस निर्मम

को कैसे बताये कि उसने केवल अवि को प्यार किया है। न तो उसके सम्बन्ध को और न ऐश्वर्य को। और ऐसा सोचने से अवि के प्रति उस का अनुराग और भी प्रगाढ़ होगया। वह घनी वेदना के ज्वार में एक बार सिहर कर, केवल इतना ही बोली—"अवि का जीवन वृतान्त जो भी हो, मुझे उससे सहानुभूति ही है। बापू! अवि अब मेरे लिये अधिक ही स्नेह भाजन है...मैं जीवन की अंतिम घड़ियों तक उसका इन्तजार करूँगी... अवश्य करूँगी।"

और अर्चना उठ कर बीमार पिता की ओर चल दी। हरदेव बाबू लम्बी श्वाँस ले, ऐसा अनुभव करके ही रहे कि अर्चना के लिये अवि का शीघ्र मिलना नितान्त आवश्यक है, वरना इस निरपराध अबला का जीवन भी भार स्वरूप होगा और अवश्य होगा। अन्तर से 'आह' निकली, पर उसका मूल्यांकन कौन करता?

× × × ×

मधुर मिलन की उस घड़ी के बाद अवि और विजया का जीवन क्रम साधारण अवस्था में हँसी खुशी में ही बीत रहा था। व्यतिक्रम तो यों नित्य ही उपस्थित होता था, पर वह वैसाही जैसा कि एक ही परिवार के दो बच्चों में खिलौना विशेष के लिये जिद्दा जिद्दी और बाद में फिर मनोमालिन्य भूल, एक ही साथ धमा चौकड़ी। इस बीच मुनीम काका के पत्र बराबर आते रहे और इधर से भी उनका समुचित उत्तर जाता रहा।

विजया अब पहले से बहुत ज्यादा प्रसन्न रहती थी। सौन्दर्य की आभा पूर्ण निखार पर थी। अवि उस में डूबता-उतराता विगत को भूल वर्त्तमान को साज सँवार रहा था। कभी कभी तो ऐसा भान होता था कि भूँचाल इनके जीवन में कभी आया ही नहीं और आया भी तो संहार का सृजन ही नहीं कर पाया। सुबह शाम दोनों राजू के साथ विक्टोरिया, कभी लेक या फिर कभी बोटानिकल गारडेन की ओर हो ही आते थे। अवि के कार्यालय का कार्य भी सुचारु रूप से चल रहा था।

आज दफ्तर से लौट कर अवि इसलिये ही शीघ्र घर आया था कि विजया के साथ उसने किसी चित्र विशेष के देखने का कार्य-क्रम पहले ही से निर्धारित कर रखा था। घर आया तो देखा—पूर्णमासी का चाँद, सोलहों कला से परिपूर्ण, आसमान की छाती पर सौन्दर्य का अजीब समाँ लिये देदिप्यमान हैं। वह विजया थी जो ड्राइंग रूम में सज धज कर अवि की राह देख रही थी। सहसा ही अवि ने सन्मुख आ आश्चर्य से विजया को एक टक घूरना प्रारंभ किया। वह विचलित होती सी बोली—"मैं तुम्हारा मतलब समझ रही हूँ। अब कहोगे-जरा जूता खोल दो तो मैं भी बन-ठन लूँ। और एक गिलास दूध बदहजमी नहीं करेगा."

अवि ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। वह अब भी मौन बना विजया को आश्चर्य से घूरता ही रहा। उसकी भंगिमा देख विजया को अजीब कौतूहल हो रहा था। वह समझ ही नहीं पा

रही थी कि अवि क्या देख रहा है। पलकें उठा अवि की नजरों से मिलाईं तो आँखें आप से आप न जाने क्यों शर्म से झुक गईं। शरीर में मादक सिहरन हुई। दर्द और घबराहट के स्वर में वह बोली—

"अगर इस तरह बनाना हो तो मैं अभी जाकर काजल पोत लेती हूँ।" और वह उठने को ही हुई कि अवि ने टोक दिया— "विचार तो बुरा नहीं है विजया! जानती हो चाँद में दाग क्यों है? इसलिये कि दुनियाँ की नजर उसे न लग जाय। फिर तुम्हें भी कम से कम काजल की एक बिन्दू भर अवश्य लगा लेनी चाहिये। वरना तो..."

"देखो अवि! मुझे तुम्हारी ये छेड़खानी पसन्द नहीं। चलना है तो कपड़े बदल लो। मुझे व्यर्थ ही परेशान न करो वरना ऐसा महा भारत छेड़ूँगी कि..."

"विजया मैं झूठ नहीं कहता। अगर सड़क पर दो चार दुर्घटनाएँ होगईं तो मैं बेचारा मारा जाऊँगा। लोग रास्ता नहीं देख कर, बस तेरी ओर लुभा जायेंगे और दस बीस मोटरें एक साथ ही सीने पर चढ़ जायेंगी...बाप रे..."

"शैतान कहीं के? मुझे चिढ़ाना चाहता है...ले..." और टेबुल पर पड़ी 'एस्ट्रे' दे मारी। राख घुला पानी छिटक कर अवि पर गिरा और सारे कपड़े खराब होगये। इतने पर भी अवि को क्रोध नहीं आया, बल्कि तनिक मुस्कुराते हुए ही वह बोला "हाँ अब ठीक हुआ। पूरा मेम सा'ब का बैरा बन गया।

चलिये मेम सा'ब ! गाड़ी बुलाऊँ ?" और अवि सचमुच झुक कर बैरा का अभिनय करने लगा। विजया के क्रोध की सीमा न रही। गुस्से में उफन कर आव देखा न ताव, अच्छी भली रेशमी साड़ी चर्र से फाड़ डाली। कुन्तल राशि को बंधन विमुक्त कर छितरा दिया। मुख को पल्ले से रगड़ बड़बड़ाई- "ले तुझे भठियारनें ही पसन्द हैं तो वो भी बनकर दिखा देती हूँ।"

अवि 'हाँय...हाँय' करता न जाने क्यों कमरे से भागा। पल भर में ही विजया ने अच्छी भली सूरत को बिगाड़ कर रौद्र रूप धारण कर लिया। सामने पड़ी कुर्सी में ठोकर मार जब वह जाने को उद्यत हुई तो अवि हड़बड़ाया सा हाथ में आयना लिये उपस्थित हुआ।

"विजया तुम्हें सोगन्द है जो रूप बिगाड़ा...पहले शकल तो देखलो कि मैं ने झूठ कहा था क्या ?" और जैसे ही अवि ने शीशा विजया के सामने किया, उसने जमींन पर दे मारा। पल भर में ही सुन्दर आयना टुकड़े टुकड़े हो, फ़र्श पर गरीब के अरमानों की तरह बिखर गया। "ले और सूरत दिखा...घर के सारे शीशे न फोड़ डाले तो कहना...।" और विजया नागिन सी फुफकारती अपने कमरे की ओर चलदी। अब तो अवि हक्का बक्का रह गया। एक बार जाती हुई विजया की ओर देखा और दूसरी बार शीशे के बिखरे टुकड़ों की ओर।...... इतना होने पर भी अवि की मुद्रा अभी हास्य मय ही थी। न जाने क्यों विजया को चिढ़ाने में उसे असीम आनन्द मिलाथा।

सचमुच में पिछले दो-तीन दिनों से दोनों में तनिक देर भी झड़प नहीं हुई थी, सो अवि को बड़ा वैसा-सा लग रहा था। जी करता था कि या तो वो रूठे और विजया नयनों में लाख लाख आँसू ले सदा की तरह मनोतियाँ करे, तब कहीं वह माने। या फिर विजया ही मुँह फुलाकर बैठ जाय और वह स्वयं हजारों खुशामदें कर इसे रिझा सके। पर यह सब तो दो-एक दिन से हुआ नहीं था, सो दोनों का भोजन भी पचता था या नहीं, नियंता ही जाने।

तो विजया अपने पलंग पर जा असीम क्रोधाभिभूत हो रोने लगी और अवि, गोपाल नौकर को दूध का प्याला लाने का आदेश दे उन्मना सा कपड़े बदलने लगा। अभी ही तो यह शुभ घड़ी आई थी, जब वह अपनी विजया को मनोतियाँ कर मनायेगा और चल चित्र घर चलने को विवश करेगा। वह रूठ कर मुँह फेर लेगी और अवि बस रोने को तत्पर सा होता कहेगा—'तू नहीं चलती तो आजीवन चित्र न देखने की, ले मैं प्रतिज्ञा कर रहा हूँ।... फिर कभी न जाऊँगा'— सुनकर विजया उछलेगी और उसका मुँह बंद कर कहेगी—'आगे जो बोले तो गला घोंट दूँगी... पहले पाँव छू के क्षमा मांग, कि फिर कभी ऐसा नहीं करूँगा '। और जब वह सचमुच में झुकेगा तो विजया तुनक कर बोलेगी—'फिर शैतान, मुझ पर पाप चढ़ा रहा है—' तो बस इतने ही में कहानी का अंत और फिर दोनों सानन्द चलचित्र का उपभोग करेंगे।

तो इस तरह दूध पीते हुए अनगिनत योजनाएँ बना लेने पर भी अवि को आज विश्वास नहीं हो रहा था कि विजया इतना शीघ्र प्रस्तुत हो जायगी। रह रह कर मनमें भ्रान्ति उत्पन्न हो रही थी—अवि रे, आज विजया बहुत नाराज है... वो तेरे साथ नहीं जायगी रे।' और इस विचार से अवि बोखला-सा गया। वह अधिक समस्याओं के जाल में उलझता कि इतने में राजू खेल के मैदान से लौट आया। नित्य की भाँति "बैड मिन्टन" वा 'रैकेट' फेंक, हाथ मुँह धोने 'बाथरूम' में चला तो अवि ने आवाज दी—

"जल्दी से आ राजू! दीदी के साथ सिनेमा चलेगा न?"

"अभी आया... गोपाल, जरा जलपान जल्दी ला..."

और वह दो-तीन मिनट में ही 'बाथ रूम' से निकल आया।

अवि ने अनुभव किया कि मनोवाञ्छित फल, अब शायद प्राप्त हो जायगा। सो वह जलपान करते राजू से बोला—"तू जल्दी से दीदी को बुला लेना...वह बस तुम्हारी ही राह देख रही हैं।"

"हाँ...वो मैं बुला लूँगा...तुम जीजा तैयार हो लो ना—फिर घंटे भर सिंगार करोगे..."

"अरे मैं तो तैयार ही हूँ—" अवि ने हँसकर कहा।

विजया अपने कमरे से सब बातें सुन रही थी और अवि की चालाकी पर मन ही मन जल रही थी।

राजू की पदचाप जब विजया ने सुनी तो मुँह फेरकर वह

सोने का उपक्रम कर गई। अपरिचित सा राजू, दीदी को यों निश्चिन्त सोया देख तनिक विस्मित हुआ, फिर स्वभावत: ही उस के निकट आ, दीदी को झकझोरा—"उठो ना दीदी, जीजा इन्तजार कर रहे हैं और तुम सोयी हो, सिनेमा नहीं चलोगी क्या ?'

"जा मुझे सोने दे। नहीं जाना है सिनेमा..."

विजया ने राजू को इस तरह डाँटा कि बेचारे की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। अवि किवाड़ों की ओट से देख रहा था, सो अनजाने ही मुस्कुरा पड़ा। राजू रोनी सी सूरत बना खड़ा रहा। विजया ने जब फिर करवट बदल ली तो अवि ने उफन कर राजू से कहा—

"चल रे, नहीं जाती तो छोड़ दे...हम दोनों ही देख आयेंगे...।" और राजू गुम सुम सा, अवि के पास चला आया। विजया और भी जल भुनकर खाक हो गई। वह उठकर जब झाँकने को तत्पर ही हुई कि राजू का हाथ पकड़ सबल खींचते हुए अवि, मानों विजया को सुनाने ही के लिये 'गोपाल' से बोला—"देख रे, मेम सा'ब की तबियत अच्छी नहीं है। हम-लोग सिनेमा जा रहे हैं। खाना भी होटल में ही खायेंगे। तुम जरा खयाल रखना। न हो तो पूछ कर डॉक्टर बुला देना।" चौंक कर गोपाल ने कहा—"मालिक ! 'बहू माँ' तो अच्छी थी, अभी अभी तो _"

"हाँ रे, अभी ही १०५ डिग्री बुखार आगया। है न राजू !" और अवि धड़ धड़ाता चलदिया। गोपाल विस्मित सा देखता

ही रहगया। विजया ने जो सुना तो उठकर क्रोध में गुलदस्ता फोड़ दिया। गोपाल हड़बड़ाया सा आवाज सुन कर दौड़ा— "क्या हुआ माँ ..चोट तो नहीं लगी ?..." और वह विजया के पास आया तो वह पूर्ण रौद्रमयी सी रोष में गोपाल से बोली— "क्यों रे ! सा'ब चले गये क्या ?"

"हाँ माँ, अभी गये हैं...बुलाऊँ क्या ? फिर आप को तो दुखा .."

"तू हँसी करता है क्या ? देख गोपाल, इतनी मार मारूँगी कि .."

"एक बार मारो ना माँ ! झिड़कियाँ बहुत सुनी, पर तेरे हाथ की मार नहीं खाई...। जी करता है एक बार खूब पिटता और तू ही आकर मुझे मनाती।" हँसता हुआ विजया का दुलारा नौकर गोपाल, जो शायद अनाथ ही है और मालकिन को 'माँ' कहकर ही पुकारता है, विजया की ओर हास्य मय मुद्रा में देखने लगा। विजया ने तनिक रुष्ट हो कहा—"बातें न बना...और देख रसोई बनाकर रख देना, मेरा जी भारी है......" और गोपाल मालकिन का विक्षिप्त भाव लक्ष्य कर स्वीकृति में गर्दन हिला चल दिया।

विजया अभी भी क्रोधाभिभूत ही थी। अवि जो मनाने नहीं आया, इसका अत्यधिक क्लेश था। अन्तर में रहरह कर भाव उठते थे, अविने बड़ा तिरस्कार किया है। चित्र दिखाने जो नहीं ले गया, सो वह अब उससे नहीं बोलेगी—कभी नहीं बोलेगी।

लेकिन 'कबतक'? और इस कबतक की अवधि विजया निर्धारित करती तो क्यों कर ? वह जानती है-सिनेमा में अवि का मन, पल भर भी नहीं लगेगा। स्वाभिमान में, जरा झुकने से आँच न आजाय, ऐसा अनुभव कर वह चला तो गया, पर वहाँ जब ध्यान आयेगा कि वह अपनी पत्नी को नाराज़ करके आया है, तो बावला बना दौड़ा आयेगा।

संध्या की प्रति पल बढ़ती कालिमा में विजया निर्विघ्न सोई हो, सो बात नहीं। पलंग पर व्यर्थ लेटी भी वह, यह सोचे बिना नहीं रही कि वस्तुतः पति के जरा से मजाक से, उसे इतना नाराज होने की क्या आवश्यकता थी ? माना कि उसने रूपकी प्रशंसा भर की, तो क्या ऐसा करना अनुचित था ? अवि अपनी बिवाहित स्त्री के सौन्दर्य का बखान ही तो कर रहा था, इसमें रुष्ट होने वाली बात कहाँ से आगई ? क्यों विजया ! इतना मान अच्छा है क्या ? कहीं किसी दिन अवि, क्रोधाभिभूत हो ठुकरा कर चल देगा, तो पलभर भी जी सकेगी क्या ?

और मन की इस जिज्ञासा से अतीव व्यग्र हो, विजया निर्विकार भाव से सोने का क्रम करने लगी। बहुत मानसिक संघर्ष के बाद ही वह सो सकी होगी, ऐसा जान पड़ता है। वरना यों तो मानस में अवि की उपस्थिति उसे झकझोर कर ही रही होगी।

करीब ९॥ बजे रात में अवि राजू के साथ, सिनेमा से लौटा। विजया निद्रानिमग्न ही थी। यद्यपि अवि ने किसी

रेस्टोरेन्ट में राजू के साथ जलपान अवश्य कर लिया था, पर जब से वह घर छोड़कर गया था, विजया के बारे में प्रत्येक क्षण सोचता रहा था। उसे रह रह कर स्वयं पर अतीव ग्लानि हो रही थी कि वह क्यों पत्नी से लड़ कर आया। वास्तव में आज उसने विजया पर घोर अत्याचार किया था, जिस के विरोध स्वरूप, वह पति से जीवन परयन्त न बोलने की प्रतिज्ञा भी कर सकती है। माननी तो वह है ही, फिर कहीं रूठ गई तो अभागे अवि तेरा क्या होगा? और अवि बहुत अधीर होगया था। मन तो करता था, यथा शीघ्र लौट चले और विजया को मना ले, पर वो ऐसा कर न सका। न जाने उन्मना सा ही क्यों जाकर सिनेमा घर में बैठगया? फिर वहाँ भी तो, पल भर उसका दिल न लगा। जैसे तैसे चित्र समाप्त होते ही दौड़ा आया। इस बीच राजू को प्रायः नींद ने घेर ही लिया था, सो घर पहुँचते ही बच्चा सोने चलदिया। अवि विस्मित सा कुछ सोचता रहा। फिर गोपाल से बोला—"हैं रे! विजया नहीं जागी क्या, भोजन कर के सोई हैं न? तुम से बातें की है क्या?"

और गोपाल ने अस्वीकृति सूचक संकेत कर इतना ही कहा—"मालिक! माँ तो उसी दम से सोई है। भोजन मैंने बना लिया। आप चलकर कर लीजिये... माँ की तबियत भारी है-"

सुनकर अवि झुँझलाया—"तो जा, खाना रख दे! मैं भी नहीं खाऊँगा" और वह झटक कर विजया के समीप शंकित मन से आया। वह निंदिया के धुनिल पालने में झूल रही थी।

अवि सुगुप्त सौन्दर्य पर मादक सलोनापन देख विभोर हुए बिना नहीं रह सका। एक टक पत्नी के भोले मुखड़े पर दयार्द्र हो स्नेह की अश्रु-बूँद चुलना चाहता था कि विजया ने अनजाने ही करवट बदली। हड़बड़ा कर अवि धड़ाम से बगल में बिछे अपने पलंग पर जूता पहने ही लेट गया। उसने अनुभव किया कि अब विजया जाग कर अवश्य ही मेरे बारे में पूछ ताछ करेगी। लेकिन जब दो चार मिनट बीतने पर भी विजया में जागृति के कोई लक्षण प्रगट नहीं हुए तो वह पुनः अधीर होगया। मन में संघर्ष होने लगा— मान के वशीभूत तू जीवन में दर्द घोल रहा है। उठता क्यों नहीं अभागे! मनाले रूठी राधा को, वरना आजन्म पश्चाताप के आँसू बहायेगा।

और अवि सचमुच अधीर बना पुनः विजया के पलंग निकट आया। "उठेगी नहीं क्या? क्रोध शान्त नहीं हुआ न?"

अवि ने विजया को झकझोरा। सहसा उनींदी आखें खोल, एक बार चौंक कर विजया ने अवि को देखा और जैसे शाम की घटना स्मरण ही न हो, ऐसी ही अवस्था में मुख पर सौम्यता बिखेरते हुए कहा-"नींद नहीं आती क्या? नियत तो ठीक है?"

"नींद तो आयेगी, पर तुमने भोजन क्यों नहीं किया..?"

और अचानक संध्या की घटना विजया की आँखों के सामने घूम गई। सौम्यता को कटुता में तिरोहित कर उसने अवि से कहा—"मेरे खाने की चिन्ता तुम्हें कब से होने लगी? पेट भर के आये हो न? समझ लूँगी मैं भी खा चुकी। पति के

सुख में ही पत्नी की प्रसंन्नता है न ?"

अवि ने लक्ष्य कर लिया कि विजया ताना मार रही है। वह अधीर हो पलंग पर बैठते बोला—तेरे हाथ से खाये बिना पेट भरा है क्या ? फिर ले बाबा, कान पकड़े जो अब तुम्हें छेड़ूँ ...उठो..."

"नहीं मैं नहीं उठूँगी...।" और विजया ने करवट बदलली। अवि हक्का बक्का सा लम्बी श्वाँस भर के ही रहगया। थोड़ी देर तो वह मूक बना उसकी ओर देखता रहा। फिर दर्द में 'आह' सी भर कर यह बोलते हुए उठ गया— 'अगर इन तानों से पेट भर जाय तो रोकूँगा नहीं। तुम यह भी जानती हो कि नाराज करने में मुझे सुख नहीं मिलता..."

क्रोध में ही विजया फुफकार उठी—"सुख मेरी चिता जलाने में ही मिलेगा...मरने पर तुम मिठाइयाँ बाँटोगे मैं जानती हूँ"

सुनकर अवि सन्न् से रह गया। पलंग पर आ, म्रियमाण सा लेट गया। मन में शान्ति तो थी नहीं जो निद्रा घेर लेती, सो वह योंही वेदना से भरा भरा, सिरहाने पड़ी किताब ले पढ़ने लगा।

यद्यपि उपर्युक्त कथन विजया ने कह तो दिया था, पर जैसे बहेलिया तीर फेंक कर परिणाम का इन्तजार बेसब्री से करता है, विजया भी उसी तरह बेचैन हो अवि की ओर पल भर देख सकी। वह किताब में ही डूबा रहा। यह विजया को अब अच्छा नहीं लगा। एक आध बार पाँव इधर उधर

फेंक, उसने चुप चाप सोने का बहुत उपक्रम किया, पर नींद क्यों कर आती ? आखिर व्यग्र हो वह बोल ही पड़ी "किताब पढ़ने के लिये दिन भी होता है, जिसमें बिजली की जरूरत नहीं होती। दूसरे भी यहाँ हैं जिन्हें रोशनी में नींद नहीं आ सकती !"

सुन कर अवि बोखला गया। झट से उठकर लाइट का स्वीच गिरा दिया तो कमरे में पूर्ण अंधकार हो गया। अब भी अवि कुछ बोला नहीं, चुप चाप पलंग पर लेट गया।

विजया को काटो तो खून नहीं। अवि की चुप्पी से वस्तुतः वह इतनी घायल हुई कि मर्म तक पीड़ा का अनुभव हुआ। जी तो करता था, उठ कर अवि को एक चपत मारे और पूछे—तुम गूँगे हो क्या जो बोलते नहीं ? पर वह ऐसा कर न सकी। यों ही ऊहा-पोह में बिछौने पर करवट बदलती रही।

अल्पकाल बाद अवि जब निश्चेष्ट हो, शायद सोने का बहाना कर गया तो विजया अत्यन्त अधीर हो गई। घोर अंधकार में उसे हजार हजार राक्षस अपने कुरूप हाथों से तन बदन नोचते मालूम हुए। सहसा अपने को अवरुद्ध न रखने के कारण वह चुपके से उठी और धीरे धीरे अवि के पलंग निकट आ खड़ी हो गई। अंधेरे में उसने स्पष्ट अनुभव किया कि अवि करवट बदल सोया हुआ है। थोड़ी देर तो न जाने वह क्या सोचती रही, फिर पुनः अपने पलंग पर आने को मुड़ी। अचानक, अवि जाग ही रहा था क्या, जो विजया को यों लौटता देख, झटक कर उठा और उसे जबरन बाहों में भर

बोला—"मान जा माननी नारी, ले यह पुरुष—अपने अपराधों के लिये क्षमा मांगता है।"

"अरे बाप रे—" विजया चीखी—"छोड़ दो मुझे...तुम तो गूँगे हो, बोलकर जवाब भी नहीं देते।"

अवि, विजया को अपने पलंग पर जबरन बैठाते हुए बोला—"तेरे तानों का जवाब दे, नई आफ़त कौन मौल लेता ? तुम तो जहर उगल रही थी। मैंने चुप रहना ही श्रेयस्कर समझा।"

"हाँ, तुम तो जानते थे न कि चुप्पी से विजया मर जायेगी" और विजया रोने रोने पर हो गई। अवि जरा मुस्कुराते हुए बोला—"तेरी मौत के बाद मैं जिन्दा रह सकूँगा क्या ? फिर मुझ पर यह हत्या का लाँछन क्यों लगा रही हो ?"

"सत्य ही तो कह रही हूँ...रोज तो तुम बात बात में झगड़ा करते हो। आज क्या था जो चुप हो गये ? मुझे जबरन उठा के खिला नहीं सकते थे क्या ? नहीं, मैं तुम से नहीं बोलूँगी... तू जी जलाता है।"

अवि ने स्पष्ट अनुभव कर लिया कि आज विजया 'दुलार' की नहीं ताड़ना की भूखी है। सो जबरन गोद में उठा के अवि बोला—"चलती है कि घसीट के ले चलूँ...।"

और जब वह सबल विजया को उठा कमरे से बाहर चला, वह चिल्लाई—"अरे छोड़ो, बाहर गोपाल होगा...ए राम ! कितने बेशर्म हो..."

और विजया छलक कर उतर पड़ी। अवि ने कहा—"तो चलो अब, वरना फिर उठाऊँगा और अब की चिल्लाने पर छोड़ूँगा भी नहीं—"पर विजया, बच्चे की तरह टसकती ही रही। अवि उसे जबरन रसोई घर में ले गया।

अवि ने जब थाली परोस कर विजया की ओर सरकाई तो वह झेंप कर बोली—"पहले तुम खाओ . वरना नहीं खाती..."

"अरे तो मैं खा ही रहा हूँ...झगड़े में भी तेरा नियम नहीं भूलता...याद रख, सब चट कर गया तो भूखों मरना पड़ेगा।"

और झट से मुँह में ग्रास लेते हुए विजया बोल पड़ी—"मैं इतनी नासमझ नहीं, घाटा मुझे ही रहा। झगड़े में सिनेमा भी छूटा और मायूसी भी मिली...। अब खाना नहीं छोड़ूँगी..."

और थाली पर बैठते हुए अवि भी बोल पड़ा—"तभी तो कहता हूँ—न झगड़ा कर...।"

"हाँ, तुम्हीं क्या मानते हो? बात बात में चिढ़ाते हो... काका थोड़े ही है जो तुम्हें डाँट बता दे ..।"

"अरे अच्छा याद कराया—अवि चौंका—"काका की चिट्ठी आई थी, झगड़े में मैं भूल ही गया था।"

"कहाँ है पढ़ो तो...।"

और अवि ने जेब से पत्र निकाल पढ़ा—"अच्छे तो होगे अवि! मेरी 'बहू रानी' को तंग न करना। चिढ़ाने की आदत छोड़ देना.. वह टेसू की नाजुक कली है रे। कहीं झटके से टूट गई तो जीवन भर पश्चाताप के आँसू बहायेगा..."

"झूठे कहीं के, बना कर पढ़ रहा है—" बीच ही में विजया बोल पड़ी। अवि ने पत्र बढ़ाते हुए कहा—"अरी तो अपने ही पढ़ ले ना...।" और विजया ने पत्र ले पढ़ना शुरू किया।

सचमुच में काका ने वैसा ही लिखा था जो अवि ने पढ़ा। उन पंक्तियों को पढ़कर विजया, इतनी लजाई कि पसीने की बूँदें माथे पर झलक पड़ीं। अवि जो हास्य की मुद्रा में विजया की ओर देख रहा था, उसके भाव को लक्ष्य कर बोला—"शर्मीली दुलहन! घूँघट निकाल, वरना यह लाज कोई देख लेगा।"

"बक शरीर कहीं के।" और विजया थाली सरका भागी शरमा कर, तूफान की तरह कमरे की ओर। अवि पुकारता ही रह गया—"अरी, खा तो ले..."

"मेरा पेट भर गया, तुम खा लो" जाती हुई विजया कह गई। अवि ने स्पष्ट अनुभव किया कि रूठी राधा अब सहज ही मान गई। अपनी लज्जा में ही अब वह इतनी डूबी रहेगी कि रात भर बोलना दुश्वार हो गया। और आनन्द में झूमता सा अवि, पुनः भोजन करने लगा।

१

सुख के दिन हवा के पंखों पर अठखेलियाँ करते बीतते हैं और दुख की एक रात भी सहज ही काटे से नहीं कटती। आसमान के तारों की गणना कई बार हो जाती है, पर दर्द के सुर मापदण्ड में नहीं आते। यही विजया जो तीन दिनों से मुरझा कर, डाली से झड़ने वाले फूल के सदृश हो गई, सो अवि पल भर भी चैन से रह सका क्या? रोग के तो कोई लक्षण विद्यमान नहीं, लेकिन अवि की हजार मनौतियाँ करने पर भी विजया जो जीवन से जोग लेना चाहती है, यह समीचीन नहीं जान पड़ता। दिन रात के चौबीस घंटों में, शायद चार सौ बार अवि टोकता है—"विजया! खाना नहीं पचता, हर घड़ी जी मचलता है, कै होने का सुमार नहीं, अच्छी भली आँखें कालिमा लपेट रही हैं और इस पर भी तेरी यही जिद कि अवि मूर्तिमान बना रहे? बीमारी बढ़ती जा रही है,

डॉक्टर इलाज नहीं करेगा, तो मेरी याचना ही संजीवनी हो जायगी क्या? तुम आज लाख मना करो, डॉक्टरों की फौज इकट्ठी न कर दी, तो कहना। तीन दिन से एक भी डॉक्टर नहीं आया, आज तीन सौ बुलाऊँगा। देखता हूँ कौन रोकता है?"

सुनकर खाट से सबल उठने का क्रम कर विजया मुस्कुरा कर कहती "सभी बातों में हठ करना अच्छा है क्या? भली चंगी को बीमार तुम्हीं बना रहे हो। तीन दिन से एक भी काम नहीं करने दिया, क्या अपाहिज बना दोगे? कह तो रही हूँ .. दफ्तर क्यों नहीं जाते?" सुनकर अवि और भी झुँझलाकर टल जाता। कार्यालय न जाने का वह अन्य कोई बहाना तलाश लेता।

तो आज पुनः रात भर विजया को नींद न आने के कारण विक्षिप्त हुआ अविनाश, मन में दृढ निश्चय कर के ही विजया के सन्निकट आ भरे स्वर में बोला—"विजया! जीवन का यों अंत ही करना हो तो कह दो, समझलूँगा, मुझ से जी भरगया। सच जानना, मरण के पंथ में भी अवि तुम्हारी इच्छा जान, व्यवधान उपस्थित नहीं करेगा। केवल वहाँ भी साथ ले चलने की याचना भर करुँगा। न ले चलोगी तो अफीम की दुकान मैंने भी देखी है" सुनकर विजया दुखी होने के बजाय हँस पड़ी। निकट बैठ अवि के बालों में अंगुलियाँ डाल कहने लगी—"यों तो मौत के दिन करीब ही हैं ..पर अभी मरुँगी नहीं। तेरे उपकार मुझ पर बहुत से हैं...हो सका तो कर्ज से उऋण होकर ही मरुँगी। साथ चलने की याचना बहाना मात्र है, यह मैं

जानती हूँ। यों अवहेलना से अवगत हो कहीं मालिक ने नौकरी छुड़ा दी तो..."

"मुझे किसी नौकरी की परवाह नहीं...तुम तो चाहती हो—किसी बहाने अवि को टरका कर शाँस की फाँस काट दूँ, जो कूच करने वाले का कोई दामन न थाम ले, पर मैं इतना नासमझ नहीं–" अवि ने विजया को छेड़ते हुए कहा। वह और भी अधिक प्रसन्नता व्यक्त करती बोली—"तुम मेरी कमजोरी को जानते हो न, कि आँखों की ओट को ही विजया परदेश कहती है? तभी मौत की चर्चा करके सदा डरा देते हो। लो आज कह दूँ—पहले तो कभी कभी विजया अधिक बली होने का गुमान कर भी लेती थी, पर अब तुमने पंख ही काट दिये। उड़ान भरने से तो गई ही, साथ ही तेरे आशियाने से ममता भी होगई। फिर मैंने बहुत बार तुम्हें भगवान् कहा है न! स्वयं पर विश्वास कर अभिशाप की भावना से ही क्यों नहीं कह देते कि—ले विजया! अवि ने रुष्ट हो तुम्हें श्राप दिया कि तेरा अंत भी बिना पति की मर्जी के न हो। अवि रे विजया कभी तेरी गोद में ही सिर रख के दम तोड़ेगी, ऐसा विश्वास कर ले। तेरी हर शांस ने मुझे यही वरदान दिया है. फिर निश्चिन्त क्यों नहीं हो जाते..." अवि खिन्न होता हुआ पलंग से उठकर बोला—"ना, मैं तेरी छलना में नहीं आऊँगा, क्या भरोसा? तू तीन दिन से मुझे ठग रही है ..मैं तो डॉक्टर खन्ना को बुलाऊँगा ही..."

और अवि ने सामने पड़े टेलीफोन का चोंगा जैसे ही उठाया, झपट कर विजया ने छीन लिया।—"मेरी बीमारी तेरे डॉक्टर के हाथ न आयेगी।...फिर तुम इतने भोले हो कि जब तक नग्न रूप से न कहूँ, समझोगे भी नहीं..."

झुँझला कर अवि बोला—"तो तू सदा मेरे लिये पहेली ही बनी रहेगी-कभी तो सीधे से कह दिया कर कि क्या बात है ?"

सुनकर विजया लजा सी गई। वस्तुतः अन्तर की बात मुँह पर लाने के विचार मात्र से ही, पलकें धवलागिरि के भार से विनीत सी हो, अवि की ओर देखने का हौसला ही न कर पाईं। लज्जा की नकाब चेहरे को ऐसा ढँक लेना, चाहने लगी कि विजया के अस्तित्व का आभास भी न रहा। शर्म की फुहारों में भींगती विजया बोली—"अवि रे ! नारी को पहेली की संज्ञा, संसार युग युग से देता आया है। विजया उस कहानी को दोहरायेगी नहीं। तेरे लिये मैं सदा पहेली का हल ही बनकर रहूँगी, ऐसी इच्छा है। लेकिन बार बार तुम मुझे बेशर्म न बना सकोगे, सो कहे देती हूँ। मान का अपहरण सह लूँगी, लज्जा पर बलात्कार शोभनीय नहीं। यौवन जब साथ छोड़ देगा, अन्य पुरुषों की तरह तुम भी भागना चाहोगे न ? उस दिन इसी का आसरा लूँगी। जो भी अदृश्य रहेगा, उस का भेद जानने का लोभ तो तुम्हें मोह पाश में आबद्ध रख सकेगा न ? अदृश्य में भ्रान्ति है, भ्रान्ति में मोह, और इसी मोह के कच्चे धागे से हमारे जीवन की डोर आबद्ध है। नग्न

को दृष्टि गोचर करा, सत्य का ज्ञान क्यों कराऊँ ?"

"अरे राम, तुम्हें तो दर्शन पर ग्रन्थ लिख मारना चाहिये-" अवि ने कहा—"चिन्तन की साधिके ! सरलता से प्रवचन कर, जो अवि के पल्ले भी कुछ पड़े। वरना यह लो, फौन हुआ ही चाहता है...।" और जैसे ही अवि ने 'डायल' घुमाया, विजया उछल कर उसे रोकती, एक ही श्वाँस में बोल गई—"जब रोग तुमने लगाया है तो इलाज के लिये डॉक्टर क्यों बुला रहे हो ? पीड़ा सहने के लिये ही तो विधि ने नारी का निर्माण किया है। चुपचाप सब सह लूँगी..."

सुनकर अवि विभ्रम मय हो गया। सहसा समझ में ही न आया कि विजया क्या कह गई। शब्दों पर थोड़ा मनन कर वह बोला—"इतने बड़े अभियोग का प्रमाण भी देना होगा विजया ! अवि ने तुम्हें दुलारा ही है, संहार की याचना कभी नहीं की।" लजाती सी विजया बोली—"तो डरो नहीं, सुख की अजीर्णता को भी रोग की संज्ञा दी जाती है तुमने भी ऐसा ही रोग लगाया है ..।"

अवि तो और भी उलझ गया। झुँझलाहट में इतना ही कह सका—"कुछ भी हो, इतना बड़ा अविश्वास लेकर नहीं जी सकूँगा ? अभियोग की सत्यता के लिये, तुम्हें प्रमाण देना होगा,"

"यह प्रमाण मैं आज कहाँ से लाऊँगी—" बिलकुल जमीन में गड़ती विजया बोली—रुनझुन नूपुर का मादक संगीत मुखरित करने, पैर के अंगुठे से धरती जो कुरेदने लगी, तो जान

पड़ा—चतुरवादक विपंची के तार, सुर और लय में ही निकाल रहा है। लज्जा से पूर्ण रतनार हो समीप आ विजया बस इतना ही और बोली—"क्या सोचने लगे...,? अपराधों का निर्णय आज थोड़े ही करने जा रही हूँ? अभी तो दो ही मास बीते हैं। सात महीनों के बाद गुनाहों की तस्वीर सजीव हो, सामने आयेगी, तो अभियोग स्वयं ही स्वीकार करलोगे"-कह-कर विजया ने इतरा कर मुँह घुमा लिया। अवि थोड़ी देर तो निस्तब्ध खड़ा रहा, फिर मन में विजया के बताये महीनों की गणना कर, सहसा उछल पड़ा—"अरे बाप रे, इतना बड़ा भेद छिपालिया... मैं तो बाप बनने वाला हूँ...।"

"चुप निर्लज्ज कहीं के"—विजया ने सिहर कर कहा। अवि ने आव देखा न ताव, विजया को बाहों में भर घुमेरी लगादी। यह तो सौभाग्य हुआ कि चक्कर आने से दोनों गिरे तो पलंग पर ही, वरना हड्डी पँसली टूट ही जाती।

"अरे राम, जान ही मार दोगे..." विजया ने चिल्ला कर कहा। अवि सम्हलते हुए इतना ही बोलकर भागा—"अवि के अंश को धरा पर उद्भूत करने वाली नारी! आज मैं खुशी में पागल हो सारे संसार का ऐश्वर्य लुटा दूँगा। तेरी हर इच्छा पूरी करूँगा..." और पाँव से रास्ते में पड़ी थाली में 'झन्न' से ठोकर मार वह चल दिया। विजया पुकारती ही रह गई-"ओ दान वीर कर्ण! इस पीड़ा के बदले, मुझे मेरा चैन ही लौटा दे...।"

पर उसकी कौन सुनता? नारी के सच्चे स्वरूप का दर्शन

तो मातृत्व का वरदान पाकर ही होता है न? फिर विजया क्यों डरती है? प्रशव की पीड़ा सरस न होती, तो सृष्टि का विकास ही क्योंकर होता? लज्जा का पर्यायवाची शब्द होकर भी नारी, निर्लज्ज न होती तो उसे पहेली कौन कहता? अतः विजया ऊपर से अविसन्न रहने पर भी, अन्तर में शायद असीम आनन्द का अनुभव कर रही थी। शायद उसका नारीत्व भी अर्से से यही अरमान अव्यक्त रूप से पाल रहा था। तभी तो अवि के यों चले जाने पर विजया आप से आप ही, इतनी स्वर्गीय सुख में आत्म विभोर होगई कि, सच्चिदानन्द के स्वरूप का आभास अनजाने ही होगया। वस्तुतः संतान की कल्पना मात्र से विजया के अंग अंग में प्रसन्नता की पुलकन समाँ गई थी, जिसे जानना चाह कर भी अवि अभीतक न जान सका था। इसी लिये तो एकाएक विजया के गर्भवती होने का ज्ञान होते ही वह कुबेर का खजाना पा, प्रमोद में पागल होगया।

उस दिन के बाद अवि दत्तचित्त हो विजया की देख भाल करने लगा। ऐसा मालूम होता था कि वह सेवा करना अपना अधिकार समझ सदा यही प्रयत्न करता है कि विजया सद्यः स्नात कुसुम सी उत्फुल्ल और नीलाम्बुज की तरह पूर्ण विकसित रहे। म्लानता का क्षीण आभास भी अवि के लिये चिन्ता का विषय होजाता। नित्य के आपसी मन मुटाव वाला कार्य क्रम पूर्णतः स्थगित तो नहीं हुआ था, पर अब अवि यदाकदा ही विजया से छेड़खानी कर उसे चिढ़ाने का प्रयास करता था।

वरना तो विजया के दिल बहलाव के साधन ही जुटाने में वह लगा रहता। पति की यह तल्लीनता विजया के लिये विचार का कारण बनती जा रही थी। वह नहीं चाहती थी कि अवि उसे यों अपाहिज बना के रख दे।

आज भी वह बोली—"अवि रे! तू मुझे नर्क में ही ढकेलेगा। दिन रात ऊँची नीच कार्य करके पाप बढ़ा रहा है न? मुझे कहाँ ठौर मिलेगी...?"

तुनक कर अवि ने जबाब दिया—"पाप-पुण्य की परिभाषा कभी समझा देना चिन्तन कर निर्णय करूँगा कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं।...अभी तो तुम्हें आराम की आवश्यकता है...फिर ये स्वर्ग-नर्क का झंझट क्यों ले बैठी...?"

"तो क्या करूँ? तेरे आराम निर्घोष ने तो बिलकुल अपंग बना दिया। काम न करूँगी तो शरीर में जंग लग जायगी न?"

"इस भय से डरूँगा नहीं विजया! तेरी बात मानकर सुख के अस्तित्व को विपत्ति में क्यों डालूँ? यथा शक्ति सुरक्षा का प्रबन्ध करूँगा ही—"

विजया हँस पड़ी—"स्वार्थी पुरुष! तेरी यह सेवा भावना राग से हीन नहीं। यहाँ भी तुम अपने स्वार्थ के लिये ही प्रयत्न करते हो। वरना तो संघर्ष में ही दिन बीतते थे।"

"सो तो अब भी तुम्हें चिढ़ाने को जी ललचता है। सच तो यह है विजया! रूप में तुनक मिजाजी न रहे तो बिना नमक की सब्जी सा ही लगता है। फिर स्वार्थी की कहानी भी

सत्य ही मानलेता हूँ। पर इतना अवश्य याद रखना... कि आने वाले अंश को ममता के दामन में तू ही दबोचेगी। अवि तो आरजू मिन्नतों के बाद ही अधर पान कर पायेगा। मुमकिन है किसी दिन घूस भी देनी पड़े, क्यों कि अवि पर जुल्म ढाने में तुम्हें आनन्द मिलता है न ?"

"झूठे कहीं के !—" विजया मोद में मुस्कुरा कर बोली—"ले तुझे अभी से विश्वास करा दूँ कि विजया तेरी विभूति को जन्म देकर तुझे ही सौंप देगी। कृपण के धन की तरह सुरक्षा का भार तुम पर ही रहा। शिशु के दुलार में बँटवारे की याचना करूँ तो गला घोंट देना।"

अवि अत्यन्त विभोर होगया। विजया की ओर लुभावनी नजर से देख केवल इतना ही बोला—"इतना सब होने पर भी 'माँ' की संज्ञा तुम्हें ही प्राप्त होगी। अच्छा विजया तू ही बता—'माँ' बनना उतना सहल नहीं न जितना बाप बनना ? शिशु का अधिक सामीप्य तो जननी ही को मिलता है न ? अभागा बाप तो 'परमिट' के सहारे ही दुलार का सिमित 'कोटा' ले पाता है। तभी तो तेरे भाग्य से ईर्ष्या हो जाती है। काश, बाप के बजाय 'माँ' ही बनता...।"

"बड़े ढीठ हो...प्रसव की पीड़ा का आभास नहीं न ? अच्छा तो तुम दफ्तर क्यों नहीं जाते ? व्यर्थ की बातों में समय गँवाना अच्छा है क्या ?"

"ले चला, तुझे थोड़े ही सुहाता हूँ—" और, जैसे संरक्षक

के भय से बच्चा बेमन से ही पाठशाला जाता है, वैसे ही अवि-नाश उन्मना सा उठकर दफ्तर चल दिया।

कार्यालय में जैसे तैसे कर वह तीन बजे तक तो कार्य की अधिकता से बैठा रहा, पर उसके बाद तनिक निश्चिन्तता मिली तो विजया की ओर, अनजाने ही मस्तिष्क उन्मुख हो गया। झटक कर वह चौरंगी में चला आया। दो चार दूकानों के सामने से गुजरने पर अचानक ही मन में विचार उठे—अवि रे! क्यों न विजया के लिये 'टेबुल टेनिस' का 'सेट' खरीद लेता! दिन भर उसका जी तो लगता नहीं। इसी बहाने दिल बहलाव भी होगा और हल्का व्यायाम भी, जो गर्भावस्था में उसके लिये आवश्यक है। तो अवि उसीकी खोज में चौरंगी सेल्स ब्यूरो' के निकट आया ही था कि अचानक पूर्व परिचित सा स्वर सुन चौंका—

"अवि ऽऽऽ"

आवाज प्लुत स्वर में थी। विस्मय से उसने घूमकर सामने के फुटपाथ की ओर दृष्टिदौड़ाई तो विषधर नाग पर पाँव पड़ने के समान चौंक पड़ा।

अर्चना अवि को देख, चिघाड़ती, हर्ष-विषाद सब के सम्मि-श्रण में परिस्थिति का ध्यान भूल, बेतहाशा भागी उसकी ओर-सामने के फुट पाथ पर। पर जब तक अवि सम्हले सम्हले, और अर्चना को यों आने की मनाही करें ..तबतक तो वह बीच सड़क पर आ गई और घर्रर से एक साथ ही कई शब्द हुये।

भूँचाल तो नहीं आया, पर उससे भी अधिक भय से अवि सिहर उठा। 'बाप रे ..' अभागी अर्चना से तेज रफ्तार में आती कोई मोटर टकराई और वह धक्के से धराशायी हो गई। पल भर में ही मीलों लम्बी मोटरों की कतार रुक गई।

'एक्सीडेन्ट.. दुर्घटना...पिच गई—मर गई...' हजारों स्वर एक साथ ही ध्वनित हुए और उन सब के बीच में भय से अवि के मुख से निकली चीख भी कोई सुन सका या नहीं, क्या जाने ?

"अर्चना SSS" आदि चिल्लाता अवि जबतक अर्ची के लोथ पड़े शरीर निकट पहुँचे, तबतक तो चौराहे की पुलिस ने शीघ्र ही उसे मोटर में लाद, सरकारी अस्पताल की राह ली। जनकोलाहल से परिपूर्ण क्षेत्र में केवल क्षण भर के लिये शब्द ध्वनित हुए—"बच जायगी .. नहीं बचेगी। बड़े घर की लड़की थी। रूप तो चू पड़ता था...नई ही कलकत्ते आई है...बेचारी का कोई साथी भी नहीं।"

सुनकर अवि चीख पड़ा—"है क्यों नहीं...मैं उसका साथी हूँ...बचपन का, जन्म मरण का..."

और पता नहीं किसी ने अर्थ समझा भी या नहीं, पर जन समुदाय पल भर विस्मित सा, इस अच्छे भले आदमी को बौराया देख, कौतूहल किये बिना न रहा। अवि तो भागा, पागल की तरह अस्पताल की तरफ और जन समुदाय, पुनः अपने पंथ पर अग्रसर हो गया।

फिर इस धर्मतल्ले में वही चहल पहल, वैसा ही मोटरों का बेशुमार तांता। न किसी को, किसी के मरने से प्रयोजन, और न किसी को नये जन्म से कौतूहल। तभी तो इन शहरों में मानवता नहीं, पशुता पनपती है। सम्वेदना, हर्ष, विषाद और प्यार मुहब्बत का नाटक ही सदा होता है। असलियत से लोग कोसों दूर रहते हैं। यहाँ मानव के नैसर्गिक गुण भी लुप्त हो जाते हैं।

× × × ×

अस्पताल में बेहोश पड़ी अर्चना के समीप बैठा अविनाश, दीन-दुनियाँ को भूल उसके होश में आने की प्रतीक्षा व्यग्रता से कर रहा था। डा० रमण अवि की अवस्था पर तरस खा बार बार उसे धैर्य बँधाने की कोशिश कर रहा था, पर वह था कि मस्तिष्क का संतुलन गँवा, बिलकुल पागल सा व्यवहार करने लगा। अर्चना मूर्छितावस्था में कभी कभी 'अवि अवि' करती और अविनाश और भी अधिक बेहाल हो जाता। डा० रमण ने अनुभव किया कि घायल के समीप अवि का रहना संगत नहीं। अतः उसे दूसरे कमरे में चलने को विवश कर वो उठ गये। नर्स से कहा गया कि घायल के होश में आने पर सूचना दी जाय।

अवि को सामने की कुर्सी पर बैठा कर रमण ने पूछा—"मिस्टर, घायल शायद आप के सम्बन्धी..."

"अर्चना मेरी सब कुछ है डॉक्टर! वह मेरी तलाश में दूर

दूर भटकी है...इन अँधे मोटर वालों को सूझता नही न ?"

"हाँ. तो आपकी शादी हो चुकी क्या ?"

"शादी ऽऽ—" और अवि का मस्तिष्क झन्ना गया। सहसा अपनी परिस्थिति का ज्ञान होते ही वह सम्हला—"मेरी शादी तो विजया से हो चुकी डॉक्टर। अर्चना कभी की मेरी मंगेतर थी। हम दोनों साथ ही पढ़े थे। आज इस बेचारी के पिता भी पक्षाघात से पीड़ित हैं। न जाने यह क्यों उनको छोड़कर मेरी खोज में..."

"तो आपके विवाह की खबर इसे नहीं क्या ?—" रमण ने बीच ही में टोक दिया। इस २८–३० के गठीले नवयुवक को वास्तव में बड़ा कौतूहल हो रहा था। अवि ने दबे स्वर में उत्तर दिया—

"अर्चना, विजया के बारे में नहीं जानती......तभी तो..."

"तो मिस्टर, फिर आप इनको यह भेद नहीं बतायेंगे, मुमकिन है, खून अधिक गिरने से, इस कमजोरी में इनको भारी धक्का लगे,"

"जी अच्छा—" और अवि ने और भी अधिक अपने को सम्हालने का प्रयास किया।

अचानक नर्स ने आ सूचना दी कि घायल को होश आ गया। वह किसी अवि के बारे में पूछ रही है।

और जब तक डा० रमण उठे, अवि हड़ बड़ाकर अर्चना के कक्ष में घुस गया।

"अर्चीं ऽऽऽ—" अवि ने पुकारा और आंधी सा वह

अर्चना के पलंग पर लुढ़क पड़ा। नर्स सम्हालना चाह कर भी न सम्हाल सकी।

"अवि, अवि तुम कहाँ चले गये थे।" अर्चना रो रो कर पूछने लगी। अविनाश के भी आँसू रोके से न रुके। डा० रमण और नर्स किंकर्त्तव्यविमूढ़ से खड़े के खड़े रह गये। यों थोड़ी देर अर्चना की बाहों में अवि आबद्ध रहा और दोनों के नयनों से गंगा-यमुना मिलकर बहती रहीं। फिर डा० रमण ने घायल की परीक्षा की और संतोष की आभा उनके मुख पर झलक पड़ी।

वस्तुतः अर्चना को चोट तो बहुत थी, पर आवश्यक उपचार के बाद जीवन का कोई खतरा नहीं था, इतना भर रमण को विश्वास था।

अवि को पूर्ण सांत्वना देकर, डॉक्टर अपने कार्य में रत हो गया। अवि अब भी अर्चना के पास ही बैठा था और कब तक बैठा रहा, इसका ज्ञान तो सूर्यास्त होने पर ही उसको भी हुआ। इस बीच में अर्चना ने अवि से कुछ बातें भी की, सो ज्ञात नहीं। लेकिन अब अवि का घर लौटना अतीव आवश्यक था। अतः वह छुटकारे का बहाना ढूँढ़ने लगा।

× × × ×

इधर विजया समय पर अवि के न लौटने से अत्यन्त व्याकुल हो रही थी। एक तो, प्रथम गर्भधारण के कारण शरीर में नित्य नये उत्पातों का आघात और दूसरे, हँसा खिला कर

बहलाने वाले प्रिय पति का समय पर न लौटना, विजया के लिये विचार और चिन्ता का कारण बने हुए थे। नित्य तो पाँच बजते बजते ही अवि लौट आता था, पर अब तो रात की सघन कालिमा भी धरती को ढँक लेना चाहती है, फिर ऐसे में वह क्यों नहीं लौटा०? जाते समय फल भी ले आने को कहा था—दोपहर में कोई सम्वाद भी नहीं दिया—तो किस काम में डूबा रहा वह ?

विजया बहुत कुछ भला बुरा सोच गई। चिन्तन के तारों से अशुभ की रागिनी ही झंकृत होती थी, लेकिन 'क्यों, इसका उत्तर कौन दे ? मन तो स्वभावत: ही बुरा पहले से सोच लेता है न ? सो विजया भी किसी अदृश्य में होने वाले अशुभ की सम्भावना से अनजाने ही विह्वल हो रही थी। अब करे तो क्या ? एक यही तो मार्ग था कि वह गोपाल को दफ्तर भेज कर पता लगाये कि अवि, अबतक वहाँ क्या कर रहा है ? और यदि वहाँ नहीं, तो फिर कब और कहाँ चल दिया ?

तो अविसन्न सी विजया, यों प्रतिक्षण अधिक ही विक्षिप्त हुई जा रही थी। हार कर जब गोपाल को पुकारा, तो अचानक ही अवि सदेह सामने आ खड़ा हुआ। म्लान मुख, थकित अवयव, क्लान्त कलेवर और चकित भंगिमा। जान पड़ता था—दिन भर सूर्य की प्रखर रश्मियों में तन को तपाकर, भयानक शारीरिक श्रम करके आ रहा है। अगर यह सत्य नहीं तो, या तो अंतर में कोई दावानल सुलग रहा है, या फिर उग्र,

समय से पहले ही चेहरे से कान्ति छीन लेना चाहती है।

शंकित आकृति में अवि ने भेद भरी नजरें उठा विजया को देखा। वह उसकी विक्षिप्तावस्था का अध्ययन करती हुई बोली—

"कहाँ थे इतनी देर ? जान पड़ता है—जीवन के दाव में सब कुछ हारकर, चले आ रहे हो–किसको दाव पर रखा था ?"

"तुम्हें ही—" अवि ने व्यंग्य में ही अपनी अवस्था को तिरोहित करना चाहा। कारण वह स्पष्ट जान गया था, कि अपनी हालत छिपाने में वह असफल रहा है। खूँटी पर कोट टाँगते हुए वह पुनः विजया की ओर उन्मुख हो बोला—"डरी तो नहीं न ? सौभाग्य अच्छा था, जो गई हुई पूञ्जी लौट आई विजया ! वरना तो परिस्थिति ने पासा प्रतिकूल ही फेंका था।"

अवि के मुख से अन्तर का भेद जानने के लिये उतावली सी विजया ने उत्तर दिया–"चेहरे का भाव विजय का सूचक तो नहीं, पर कहते हो तो मान लेती हूँ। दफ्तर में काम था क्या ?"

"हाँ, वहीं तो इतनी देर हो गई। अरे हाँ, मैं तो तेरे लिये फल लाना भी भूल गया। न हो तो गोपाल से मंगाये लेता हूँ"

"उन्हें रहने दो—" विजया बोली—"तेरी ओर से ही चिन्ता हो रही थी, वरना अवस्था अच्छी ही है। हाँ, देर से आने की कैफ़ियत जो दी, उस पर विश्वास कर लूँ न ?"

"क्यों, इसमें अविश्वास की क्या बात है ?" अवि कह तो गया, पर आत्मा ने दूसरे ही क्षण उसे बहुत धिक्कारा - छिः

अभागे ! बस इतने ही दिनों में लगा छल करने ? इस सती साध्वी को झूठ बोलकर ठग रहा है क्या ? अगर पाप का दण्ड मिलता है तो झूठे, तेरी क्या गति होगी ? मासूम पत्नी के साथ, यह दुराव शोभनीय नहीं। पर कौन सुनता है? एक पाप को छिपाने के लिये, और भी करने पड़ते हैं। सो अवि अब भी अविचल हिमालय सा अपने कथन पर दृढ़ रहा, इतना ही बोला—"मुझे देर हो रही है विजया ! शीघ्र आहार का प्रबन्ध करो ना, ताकि पुनः लौट चलूँ ...उफ ! कितना काम पड़ा है ?"

और विजया और भी शंकित हुई—"क्या कह रहे हो ? रात को जाने दूँगी ?, ना तुम नहीं जाओगे, मेरा जी अच्छा नहीं।"

"लेकिन काम जरूरी है...हेड आफिस ने ताकीद कर रखी है – फिर नौकर की जिन्दगी में रात दिन बराबर है।"

अवि ने दृढ़ स्वर में कहा था। विजया ने स्पष्ट लक्ष्य करलिया कि अटल निश्चय की आभा अवि की कठोर आकृति दे रही है। मन में शान्ति नहीं रही। अगर अन्य कोई विचार न उठा, तो इतना वह अवश्य सोच गई कि पति पर जटिलता ने दामन फैलाया है। वरना तो, स्वर में मिठास की जगह कडुवाहट क्यों कर घुल गई ? संयत स्वर में मानिनी नारी बोली—"मेरे अनुरोध की अवहेलना कर लोगे न ? विजया की सेवा से जी चुराना चाहते हो, यह मैं भी जानती हूँ। अपने शरीर पर इतना जुल्म कर बीमार तो पड़ोगे ही, पर मुझ में समीप बैठ आँसू बहाने का हौसला कहाँ रहा ? फिर किस

उद्देश्य से अस्वस्थ होना चाहते हो ?"

"तेरी इन पहेलियों का जवाब मेरे पास नहीं। बीमार पड़ूँगा तो तुझे कष्ट करने की जरूरत नहीं। चाहो तो अभी से शपत खा लेता हूँ जो तुम से शरीर का स्पर्श भी कराऊँ। फिर मुझे तो रात भर नहीं लौटना है, सो जान रखना।"

अब की विजया को पूर्ण विश्वास होगया कि कोई असम्भावित घटना अवश्य घटी है। वरना यों मस्तिष्क का संतुलन बिगाड़, अवि इतने रूखे स्वर में कभी न बोलता। शंका के साथ साथ, मन में पति के प्रति सहानुभूति के लहजे में वेदना भी जागी और विजया उसी के सहारे बोली—"लड़ाई के लिये बहाना ढूँढ रहे हो क्या? लो, मैं अवसर न दूँगी। पर अपनी परिस्थिति से अवगत कराते, तो मन विभ्रम में अधिक चिन्तित न होता। कोई असम्भावित घटना घट चुकी है, यह तेरे न बताने पर भी मन ने जान लिया।...रात भर कहाँ रहोगे...?"

"जहन्नुम में—मालूम पड़ता है अदृश्य को देखने की आँखें तुझे ही मिली है? थाली परोस कर देनी हो तो दे, वरना यों भी चला जाऊँगा,। तेरे शक की दवा मेरे पास नहीं।" विजया धक् से रह गई। कमजोरी पकड़ा जाने पर अवि, स्वभावतः ही अत्यधिक् क्रोधित होगया था। ऐसी अवहेलना की आशा तो विजया को नहीं थी। थोड़ी देर तो प्राण हीन प्रतिमा सी वह खड़ी ही रहगई। फिर एक बार अन्वेषक की सी नजर अवि पर डाल, वह खिन्न सी रसोई घर की ओर चली गई।

भोजन करते समय विजया को साहस भी नहीं हुआ कि एक शब्द भी बोले। अवि को भी, या तो भोजन नहीं रुचा, या फिर विक्षिप्तावस्था ने स्वीकृति नहीं दी, सो आहार का केवल बहाना सा कर, वह शीघ्र ही थाली से उठ गया। कपड़े पहन जब जाने लगा तो विजया ने सारी शक्ति सँजो संयत स्वर में पूछा—"यह सत्य है न, कि रात भर नहीं लौटोगे..."
"हाँ, हजार बार तो कह दिया—" कोट की बाँह खींचते, अवि बोला।

अकेले रात में रह सकोगे क्या ?...मेरी तबियत, अचानक खराब होजाय तो..."

"शहर के डॉक्टर मरे नहीं हैं...टेलीफोन का नम्बर तुझे भी मालूम है—।"

"अवि SSS" विस्मय से विजया बोली। अवि झटक कर बाहर जाते बड़बड़ाया—"इस तरह नखरे करती रही, तो एक दिन भीख ही मंगा कर छोड़ोगी ...।"

सुनते ही विजया पर बिजली गिर पड़ी। पर कटे पंछी सी माथा पकड़ के वहीं बैठ गई। अचानक ही आँखें न जाने क्यों गीली होगईं और टप् टप् गर्म आँसू घर आंगन भिगाने लगे। वास्तव में इतना अनादर तो कभी न हुआ था। मुख पर तनिक मलिनता देख, प्राण दे देने पर उतारू होने वाला पति आज अचानक ऐसी अवहेलना करेगा, यह तो स्वप्न में भी विजया ने नहीं विचारा था। मन करता था—अभी आत्म

हत्या करले जो यों तिरस्कार करने वाले अवि को अनुभव तो होजाय कि विजया कितनी माननी थी। भला कैसे वह अब जिन्दी रहेगी? जब पति ने यह भी परवाह नहीं की, कि रात में उसकी नाजुक गर्भवती पत्नी की अवस्था खराब भी तो हो सकती है—कहीं पति की अनुपस्थिति में महा प्रयाग की ही घड़ी आजाय, तो वह कैसे अपने अवि की आज्ञा बिना, शरीर का त्याग करेगी? उफ! यह क्या होगया? कैसे, अचानक अवि इतना बदल गया? अभी सुबह विजया के जिद करने पर ही तो वह बे मन से दफ्तर गया था, और अभी यह लौटते ही कैसे परिवर्तन होगया? विजया री, यह किसी महानाश का संकेत तो नहीं? अवि के भेष में, कोई राक्षस तो रूप बदल कर नहीं आया? ओह भगवान्? और वस्तुतः विजया हजारों प्रश्नों पर एक ही बार में विचार करलेना चाहती थी। मस्तिष्क में नई नई समस्याओं का तूफान उठ रहा था और वह थी, जो कहीं भी त्राण की ठौर नहीं पा रही थी।

रोते रोते जब विजया की आँखें सूज गई तो वह भूखी प्यासी ही अपने पलंग पर आ, औंधे माथे गिर शोक में डूब गई। वस्तुतः आज अवि ने, व्यर्थ ही उसका इतना अपमान किया था, जिसकी कभी कल्पना भी नहीं की जासकती। इस बीच गोपाल ने आ बहू-माँ को अवश्य जगाना चाहा था, पर अवि के साथ रोष में हुई बातों को थोड़ा बहुत सुनने के कारण, उसका साहस न हुआ, जो पलंग पर घायल मछली की तरह

छट पटाती विजया को वह टोकता। चुप चाप कमरे से ही गोपाल लौट गया था और बिना भोजन किये ही वह भी जाकर पड़ रहा। राजू संध्या से ही सो गया था, तो अब विजया को आकर कौन मनाता ?

तनिक जी हल्का होने पर विजया के मन में विचार उठे—नादान क्यों डरती है ? अवि तेरे बिना, एक रात भी गुजार लेगा क्या ? देख लेना-वह तेरे बिना पागल बना, दौड़ा आयेगा और आँचल में आँसू भरा मुँह डुबा, तुझ से अपने अपराधों के लिये लाख लाख याचना करेगा। पगली ! कार्यालय में कोई व्यवसाय की घट बढ़, या रुपये पैसे की गोल माल होगई होगी। मुमकिन है, उसी में अवि मस्तिष्क का संतुलन, घबराहट में न रख सका हो। सम्भव है, अनजाने ही पत्नी की अवहेलना हो गई हो ..। फिर कैसी चिन्ता ? क्यों डरती है ?

तो इस तरह मन को बार बार कोशिश कर, विजया समझाना चाहती थी, पर न जाने क्यों, वह मानता ही नहीं था। शंका का अंकुर जन्म अवश्य ले चुका था, यह विजया भी जानती थी, पर 'क्यों' और 'कैसे' यह उसे विदित नहीं हुआ था। लाख कोशिश कर वह इस घटना को भूल जाना चाहती थी, पर एक पल के लिये भी ऐसा संभव न हो सका। हार थक कर विजया, चुपचाप सो जाने का उपक्रम करने लगी। रात के किस प्रहर में, उसको नींद ने चिन्ता और भ्रान्ति से मुक्ति प्रदान की, स्पष्ट ज्ञात नहीं। फिर मस्तिष्क में इतना बड़ा

बवण्डर ले, वह सुसुप्तावस्था में भी कितनी बार चौंकी होगी, यह भी कौन कहे ? पर यह तो निर्विवाद सत्य था कि गाढ़ी निद्रा का उपभोग वह कतई न कर सकी।

इधर विजया का इतना तिरस्कार कर अवि भी अशान्त हुए बिना न रह सका। जानबूझ कर तो उसने ऐसा किया नहीं था, परिस्थिति ही आप से आप उस रूप में परिणत हो गई थी और अवि के मुँह से क्रोध में ही कटु शब्दों का प्रयोग हो गया था। अब वह टैक्सी में अस्पताल जाता हुआ अत्यन्त व्याकुल था और अपने किये पर कोटि कोटि पश्चाताप करने को उत्सुक था। लेकिन प्रत्यञ्चा से पतित तीर और अधरों से प्रस्फुटित वाक्य, लौटाने से वापस नहीं आ सकते न ? सो अब मनमें कितना भी अवि पश्चाताप प्रगट करे, विजया तो सुनती नहीं, जो अन्य सैकड़ों अपराधों की तरह इसे नगण्य समझ भुला दे। अंतर में विचार उठे—अभागे! उस मानिनी का तुमने अपमान किया, जो तनिक भृकुटी तनी देख, प्राणों का अंत कर सकती है। फिर वह तो गर्भवती है, तेरे अंश को सजीव रूप दे, धरा पर उद्‌भूत करने वाली। ऐसे में तो तुझे उसकी हर इच्छा पूरी करने का प्रयास करना चाहिये और तू है कि वाक्-बाणों से, तलवार से भी अधिक तीखा घाव करके आया है। बेचारी वेदना से तड़पेगी-बिलखेगी... सम्भव है प्राण भी त्याग देगी। उफ ! अवि, यह क्या किया तू ने ?

और अवि स्वयं बड़बड़ाया—मैंने जानकर तो कुछ नहीं

किया। अर्चना मृत्यु शैया पर पड़ी है। अगर उसे विजया के बारे में मालूम हो जाय, तो सदमे से दमतोड़ देगी। कैसे मैं उस बेचारी के जीवन से खेलूँ ? वह मर जायगी, और उधर विजया हाँ, मेरी पत्नी, उसे मैं कैसे सता सकता हूँ ? उफ, क्या करूँ ?

और अवि जबतक किसी निर्णय पर पहुँचे, टैक्सी अस्पताल में प्रवेश कर गई। हड़बड़ाया सा वह, किराया चुका, अर्चना के कक्ष में घुसा। साथ में चौरंगी से खरीदे हुए फल भी थे। अर्चना ने आहट पा करवट बदली तो अवि पर अनजाने ही दृष्टि चली गई—"कहाँ थे तुम इतनी देर ?...मेरा जी घबरा रहा था...।"

"बस यहीं तो था। तेरे लिये फल लाने थे न ?" और अवि अपने भाव को भूलकर अर्चना की परिस्थिति में गर्क सा हो गया। बगल में बैठ कर अर्चना का अवलोकन कर बोला—"जी कैसा है ? मन में घबराहट तो नहीं...?"

"वो सब तो ठीक है, पर तुम तो अच्छी भली को भी बीमार कर देते हो न ? कहाँ छुपे बैठे थे इतने दिन ? मोटर के नीचे दब कर जान निकल जाती तो मन की मन ही में रह जाती न ? शिकायत का चिट्ठा है, मुंशी राम होटल से आ रहा होगा, पूछ लेना, कितनी हैरान हुई हूँ मैं तेरे लिये ?

"मुंशी राम भी आया है ? फोन करदिया था क्या ? तुम अच्छी होजाओ, सारी शिकायत सुन लूँगा...मुझे भी तुम से बहुत कुछ कहना है.. बहुत से अपराधों के लिये क्षमा याचना करनी है।"

"लेकिन मैं कुछ भी नहीं सुनूँगी। जहांतक क्षमा का प्रश्न है, ले तेरे मांगने से पहले ही सारे अपराधों के लिये बक्स देती हूँ, पर मैं अपने लिये क्षमा नहीं मांगूँगी, सो जान रखना ..।"

इतने में मुंशी राम ने आकर अर्चना और अविनाश के बीच व्यवधान उपस्थित कर दिया।

"क्या हुआ छोटी सरकार...? ये...अ......अवि बाबू ??" और हड़बड़ा कर आया हुआ मंशी राम अवि बाबू को देख कर वैसे ही चौंका, जैसे बच्चे अँधेरे में भूत की काल्पनिक आकृति से। फिर अर्चना के सिर पर पट्टी देख, शिशु के समान रोने लगा तो अर्चना कराह कर बोली—"अरे चुप भी रहेगा, कुछ हुआ थोड़े ही है ?" और मुंशी राम ने मानो जबरन ही आँसुओं के आवेग को अवरुद्ध किया।

मुंशी राम को देख कर अवि के मस्तिष्क में एक विचार कौंधा—क्यों न अर्चना को इसकी संरक्षता में छोड़, रात में घर चला जाय ? वहाँ विजया की अवस्था ठीक नहीं—मुमकिन है, क्रोध में वह और भी अधिक बेहाल होगई हो ? और इसी नियत से वह अल्पकाल बाद अर्चना से बोला—

"सुबह शीघ्र ही चला आऊँगा अर्ची...अभी आज्ञा है न ?"

"क्यों ?"—अर्चना चौंकी—"मुझे किस के सहारे छोड़े जा रहे हो ? समझते हो न कि दर्शन की इच्छा तो पूरी हुई। अब अर्ची दम भी तोड़ देगी तो भूत बनकर मेरे पीछे नहीं रहेगी-।" सुनकर अवि हँस दिया—"घबरा नहीं...अवि तुम्हें जिन्दगी

ही देगा। मौत आयेगी तो अपने गले का हार बनालूँगा...तू क्यों चिन्ता करती है ?"

"बाज आई मैं ऐसी जिन्दगी से। अपना वरदान मुझे न देना...पर कहने पर विश्वास कर लूँ न कि सुबह लौटकर चले आओगे ? फिर तो मुझे नहीं छल रहे न ?"

"नहीं री नहीं...अपने अवि पर तुम्हें विश्वास नहीं क्या?"

"मैं तो विश्वास कर लूँगी ..मन नहीं मानता रे" अर्चना ने लम्बी श्वाँस भर कहा। अवि झेंपता सा बोला—"इसको मैं भरोसा दिला दूंगा ..फिर हमेशा तो तुम्हें यहाँ नहीं रखना है न ? घर चलोगी क्या ?"

"मैं तो नर्क में भी चली चलूँगी...तुम साथ ले चलोगे न ?"

"हाँ अर्ची, मेरा घर सचमुच तेरे लिये नर्क ही होगा..."

अचानक अवि के मुँह से सत्यता प्रगट हो गई। अर्चना चौंकी—

"ऐसा क्यों कह रहे हो ?"

"नहीं-नहीं, मेरा मतलब है—यहाँ महल तो रहने को नहीं मिलेंगे न ?"

"फिर भी...यहाँ तो मेरा जी घुट जायगा, हम वहीं रहेंगे"

और अवि स्वीकृति में सिर हिला उठ गया। मुंशीराम को आवश्यक परामर्श दे, वह खोया खोया सा रात्रि के करीब ग्यारह बजे सरकारी अस्पताल से बाहर निकला।

अवि जब घर लौटा तो विजया कभी की अपने कमरे में

सो चुकी थी। बंद किंवाड़ गोपाल ने ही नींद से जगकर खोले थे। अवि ने तो सोचा था कि आहट मिलने पर विजया अवश्य सामने आयेगी, पर गोपाल ने जब कहा कि माँ का जी अच्छा नहीं। भोजन किये बिना ही सो गई, तो वह अधीर बना विजया के कक्ष में ही आया। मनमें विचारों का संघर्ष चल रहा था कि कैसे रूठी पत्नी को मनाया जाय।

विजया नींद में डूबी हुई थी और अवि गुमसुम, पलंग निकट खड़ा, सौम्य मुखड़े पर, प्रभात में दुर्वादल पर पड़ी ओस की बूँदों के सदृश्य, सूखते अश्रु बिन्दुओं को वेदना विदग्ध हो निहार रहा था। कितना निष्ठुर था वह, जिसने इस मासुम को यों तिल तिल जलाया? जी तो चाहता था कि वह पत्नी की गोद में सिर छुपा, अपने किये की क्षमा-याचना करता। पर अपना पौरुष था, जो इतना झुकने को स्वीकृति ही नहीं देना चाहता था। अवि अपने से बहुत लड़ा और इस संघर्ष का परिणाम अन्य कुछ नहीं तो इतना अवश्य हुआ कि आँखों से अनजाने ही अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। लाख अवरुद्ध करने पर भी वेदना की हूक दाबे से न दबी। दर्द के उभाड़ में ही फफकता अवि निद्रानिमग्न विजया की छाती में सिर छुपा, फूट फूटकर रो पड़ा। चौंक कर विजया उठी और पति को यों विलाप करता देख किसी अशुभ की अशंका में बेहाल हो गई।

"क्या हुआ? बार बार डराते ही रहोगे क्या? नींद नहीं आई न"

"मैं सोने कहाँ गया था ? अकारण ही तुम्हें रूठा कर शान्त न रह सका ।"

"तो फिर यह आँसू क्यों ?...दफ्तर गये थे न ?"

"वहाँ मैं नहीं गया—" अवि ने आँखें पोंछ ली – "तुम से झूठ ही कह दिया था । तभी तो ये आँसू..."

"मुझे रिझाने के लिये है, यही न ? बहूरूपिये ! सदा मुझे छलोगे ही, सच कहते भय लगा क्या ? जान तो नहीं मारदेती"

"उसका मुझे भय नहीं था । तेरा विश्वास खोकर जीना नहीं चाहता । इसीलिये लौट आया ।"

"फिर असत्य कह रहे हो क्या ? मैंने कहा था न, कि अकेले रह न सकोगे ? फिर अकड़ कर क्यों चल दिये थे ? क्या बात थी?"

सुनकर अवि ऊहा पोह में पड़ गया । विजया के मुख पर पलकें स्थिर कर उसके चेहरे का भाव पढ़ने लगा । विजया ने शंका से जब उसकी ओर देखा, तो वह सहम कर बोला — "तेरे विश्वास का सहारा लेकर ही कह रहा हूँ, रूठोगी तो नहीं ?"

"नहीं रे नहीं... कह क्यों नहीं देता .."

अवि विचलित होता सा दबी वाणी में बोला—"अर्चना आई है । मोटर दुर्घटना का शिकार हो अस्पताल में पड़ी है... वहीं गया था ।"

सुनकर विजया चौंकी तो अवश्य पर यथा शीघ्र उसने अपने को संयत कर लिया । बिलकुल साधारण स्वर में बोली— "बस इत्तीसी बात थी...? तुम इसी का अफसाना बना रहे थे

न ? अर्चना से मिलने को मैंने कब मना किया था ? उसे अधिक चोट तो नहीं आई न ? पहले कहते तो मैं भी मिल आती। वरना कहेगी न कि अवि से व्याह क्या किया, बहन बनने का अधिकार भी छीन लिया ”

“यह सब तो है, पहले कहो—मुझे क्षमा कर दिया न ?”

विजया ने संशय से पति की ओर देखा। अव्यक्त भय से न जाने क्यों अवि सिहर उठा। पलकें विजया की आँखों से मिली अवश्य, पर उन में विश्वास की ज्योति नहीं, किसी अज्ञात अपराध की म्लानता लक्षित हुई। विजया ने गंभीर वाणी में कहा—“अगर बुरा न मानो तो कह दूँ, कि यह क्षमा-याचना की भावना अन्तर की निर्बलता प्रगट कर रही है। कहीं तेरा पुरुष स्वयं पर अविश्वास तो नहीं करता ? मैं तो वैदिक ऋचाओं को सत्य मान भरोसा कर लूँगी कि तुम जीवन भर साथ निभावोगे। फिर तुम स्वयं को ही संतुलित करना क्यों नहीं सीख लेते ? यों मैं कहे देती हूँ कि विजया का अन्तर अथाह नहीं, तो विशाल अवश्य है। तेरे जीवन में आने वाली प्रत्येक नारी को सौत ही क्यों कर समझूँगी ? फिर तूने तो ऐसा दाग लगा दिया है, कि दुनियाँ में तेरी बेवफाई का ढिंढोरा पीटने पर भी झूठी मैं ही ठहराई जाऊँगी। अब सो क्यों नहीं जाते ? तुम पर अविश्वास कर विजया कितने दिन जी लेगी ?”

सुनकर अवि जैसे निहाल हो गया हो, ऐसी ही संतोष की लम्बी श्वाँस निकली। कृतकृत्य होते हुए वह बोला—

"तुम कितनी बार मुझे मरने से बचाओगी? सच तो यह भी है कि मैं अर्चना से भी झूठ बोलकर आया हूँ। डॉक्टर ने अभी अपनी शादी की सूचना देने से मना कर दिया था, तभी तो अर्ची मेरे प्यार में विभोर हो मुझ से वहीं रहने की याचना कर रही थी।"

"इस तरह किसी के जीवन से खिलवाड़ करना अच्छा है क्या? नारी को छलने की भावना, पुरुष में युगों से है, तुम लोग ऐसा करने में गौरव समझते हो न? वरना तो इतना अवश्य विचारते कि व्यर्थ ही किसी के मन को दूषित करना अन्याय है। हाँ, पत्नी बनाकर अर्चना बहन को रख सको, तो सारे कुकृत्यों पर समाज की अदालत औचित्य की मोहर लगा देगी।" विजया ने गंभीर होते हुए भी व्यंग्य किया। अवि तिल मिलाकर रह गया।

"फिर तेरा क्या होगा, यह भी बता दे?"

"विजया, रानी न सही, चेरी ही बनकर जी लेगी, बहाना करने के लिये तेरा अंश मिल जायगा।"

"अब तू मुझे चिढ़ा रही है—" अवि ने कहा। विजया उछल कर बोल पड़ी—"कभी कभी ही तेरा पुरुष मेरी सत्ता स्वीकार करता है न? आज विजया को अपने पर हावी देख, तुझे ईर्ष्या होती है। ले मैं तेरी सत्ता स्वीकार कर कहती हूँ—निश्चिन्त सो जा। कल अर्चना बहन को ले आना...स्वयं ही आकर उसे अनुभव करने दे कि कल का अवि, आज उसकी

पहुँच से कितनी दूर है ? यों आवश्यकता हुई तो तेरे विश्वास को अक्षुण्ण रखने के हेतु, विजया घर की दासी कहकर भी परिचय दे लेगी।"

सुनकर अवि चिढ़ गया। झटक कर पलंग से उठते हुए रूठने के लहजे में बोला—"तू मेरा जीना हराम कर रही है। मैं कल से कहीं न जाने वाला हूँ।" और वह अपने पलंग पर पड़ रहा। विजया ने और चुटकी ली—"निष्ठुर श्याम, ऐसा करोगे तो अस्पताल में पड़ी राधा दम तोड़ देगी। ना...ना, मैं ऐसा नहीं होने दूंगी। नारी होकर नारी की पीड़ा भला न समझूँगी ? तुम्हें वहाँ भेजने का उत्तरदायित्व मेरा रहा। दोनों को मिला दूँगी .."

"बक्...शैतान कहीं की !" और अवि ने तुनक कर तकिया फेंका। विजया चिहुँक कर खिलखिला पड़ी, पर न जाने क्यों हास्य में स्वभाविकता नहीं मालूम हुई। शायद अभी की वार्ता से विजया ऊपर से चाहे कितनी भी उत्फुल्ल प्रतीत होती हो, अन्तर में उसके अज्ञात भय की सिहरन अवश्य थी।

तो अवि मुँह घुमाकर सो गया। विजया चुपचाप न जाने क्या सोचती रही कि रात्रि के अंतिम प्रहर तक भी जागृति के लक्षण ही उसमें विद्यमान रहे। मालूम पड़ता था, जैसे कि वह किसी मानसिक मंथन में अत्यन्त पीड़ित है। शायद अर्चना ने उसे कुछ विशेष सोचने का विषय प्रदान कर दिया था, पर क्या, यह नियन्ता ही जाने।

१०

अर्चना को दुर्घटना का शिकार हुए आज सातवाँ दिन था। इस बीच में अवि बराबर आता रहा। प्रीत और मुहब्बत की दो चार बातें भी अर्चना ने की, तो अवि ने प्यार के लहजे में ही उनका उत्तर दिया। अर्चना ने समझा कि अवि के दिल में उसका प्यार आज भी जिन्दा है। न तो हरदेव बाबू के रहस्योद्घाटन ने कुछ व्यवधान उपस्थित किया और न इतने दिनों के वियोग ने ही उसे इतनी दूर किया कि जहाँ वह पहुँच नहीं सकती। इस तरह से वह पूर्ण निश्चिन्त सी हो चुकी थी। अपनी दुर्घटना का समाचार उसने हरदेव बाबू को भेजना अच्छा नहीं समझा था, क्योंकि इसमें उसे भय था कि कहीं वो चले आये तो बरबस ही अवि का संसर्ग छूट जायगा और मिली हुई निधि फिर खो जायगी, जो उसे कतई मंजूर नहीं।

अर्चना के अब घाव भर चुके थे। अस्पताल से बस अब उसे छुट्टी मिल ही जायगी। अत: उसने निश्चय कर लिया था कि आज ही वह अवि के आने पर उसके घर चली जायगी। विजया के बारे में तो उसे कोई ज्ञान नहीं, फिर अवि के संग जाने का हठ वह क्यों न करेगी? बेचारा अवि कल रात्रि को अर्चना के समीप से लौटते समय ही इस बात का पूर्ण अनुभव कर चुका था कि शायद कल ही उसकी जीवन-परीक्षा का सब से बड़ा दिन होगा। वह किस प्रकार कल अर्चना की प्रसन्नता को लुटता हुआ संसार देख सकेगा, इसकी कल्पना मात्र से ही शरीर रोमांचित हो उठता था। यद्यपि कल रात्रि में ही उसने विजया से कह दिया था कि कल अर्चना घर आ सकती है, फिर भी पिछले एक सप्ताह से वह पूर्ण अनुभव कर रहा था कि विजया पहले की अपेक्षा गम्भीर होती जा रही है। बात बात पर रूठने के अंदाज और पल पल में तुनक मिजाजी ने इन दिनों में अवि को क्षण भर के लिये भी यह अवसर नहीं दिया कि अपनी विजया को आँखों में आँसू भर कभी मना पाता। अवि इस परिवर्त्तन से प्रसन्न नहीं था। प्राय: नित्य ही उसकी आत्मा यह प्रतिक्षण अनुभव करती जा रही थी कि विजया और उसके बीच, कोई ऐसी दीवार शनैः शनैः खड़ी हो रही है जिसकी ओट में कभी दोनों, दोनों की नजरों से ओझल हो जायेंगे। यह अवि को मंजूर नहीं था, पर चारा तो कोई नजर नहीं आ पाता था। कभी कभी वह चाहता था कि

अर्चना से मिलना जुलना एकदम बंद कर दे, पर जब विजया ही उसे जिद्द कर उसके पास भेज देती तो वह न जाने क्यों उसका विरोध नहीं कर पाता था। यह वह अवश्य समझ रहा था कि विजया की चुल बुलाहट उसी दिन से बंद हो गई है, जिस दिन उसने पहले पहल अर्चना का जिक्र उसके सामने किया था। पर इस विषय पर चर्चा करने की हिम्मत उसकी कभी नहीं हुई।

आज जब वह सुबह करीब नौ बजे दफ्तर जाने से पूर्व नित्य की भाँति भोजन कर अचना के यहाँ जाने को हुआ, तो न जाने क्या सोचकर उसने विजया को टोक दिया—"अगर बुरा न मानों तो एक बात पूछूँ विजया, मैं पहले की तरह...तुम्हारे चेहरे पर प्रसन्नता नहीं देखता...कहीं तुम मुझ पर शक तो नहीं करती...?"

विजया जैसे जेब काटते समय पकड़ा गई हो, विचलित होती सी बोली-"तुम्हारे इस भ्रम का कोई इलाज है क्या ? बच्ची तो मैं रही नहीं, जो बात बात पर रूठती फिरूँ...कल माँ बन-जाऊँगी, तो बच्चे पर मेरे इस स्वभाव का क्या असर पड़ेगा ? फिर तुम किस किस के अंदाज उठाओगे, मैं अकेली ही तो नहीं,?"

"तो फिर दूसरा कौन है, जिसके मैं अंदाज उठाऊँगा ?" विजया ने स्पष्ट अनुभव कर लिया कि अवि की वाणी में जिज्ञासा से अधिक रोष है। अतः बात टालने के विचार से उसने कहा-"यह मुझ से क्यों पूछते हो...दिल को टटोलोगे तो उत्तर

आप ही मिल जायगा.. शायद जिम्मेदारियों ने उम्र से पहले ही तुम्हारी चुलबुलाहट भी नहीं छीन ली क्या? यह कमीज की बटन कैसे टूट गई?..." और विजया मानों बात को तरह देने के लिये हों सूई-डोरा लाने के बहाने कमरे में चली गई। अवि चोट खाकर तिल मिला उठा। दिल हुआ कि विजया को स्पष्ट कहदे कि तुम अर्चना से जल रही हो, पर तबतक तो वह कमरे में चल दी थी। अतः उसके लौटने का इन्तजार वह बेसब्री से ही कर रहा था। मुँह की बात मुँह ही में रहने से उस की आकृति बड़ी क्रूर हो गई थी। जान पड़ता था कि वह किसी को घुला घुला कर मारने वाला वधिक है जिसके मुख पर दया का रंग नहीं, सदा जुल्म की ज्वाला जलती रहती है।

विजया जब आकर बटन टाँकने लगी तो अवि चुप न रहा· "मैं तुम्हारा इशारा स्पष्ट न समझ सका? अगर सीधे से कहोगी तो जान नहीं मारूँगा? और अब तो मैं साफ साफ जानना भी चाहता हूँ कि आखिर तुम्हारे दिल में कौन सा चोर घुसा हुआ है?"

बिजया ने देखा कि अब बात यों न टलेगी। अतः उसका जी हुआ कि वह स्पष्ट कहदे कि तुम मुझ से ज्यादा अब अर्चना में रुचि ले रहे हो। पर यह बोलने की उसकी हिम्मत न हुई। इसलिये घुमाकर ही वह बोली—"पहले बटन तो टाँकने दो... एक साथ दो घोड़ों पर चढ़ना तो तुम्हें भी अच्छा नहीं लगेगा न? कहीं...सूई चुभ गई तो और लाल पीले होगे...तुम तो

झगड़े का बहाना खोज रहे हो न ?"

अवि अब तो आपे में न रह सका। वस्तुतः विजया ने उसकी कमजोरी को पकड़ लिया था, जिस से उसे लज्जित होना चाहिये था, पर यह तो मानव स्वभाव है कि पकड़े जाने पर प्रत्येक अपनी कमजोरी को क्रोध के आँचल में ढँकते हैं, ताकि उसका असली रूप न प्रगट होजाय। इसी सिद्धान्त के अनुसार अवि, विजया पर बरस पड़ा—"अपना कलंक मेरे मत्थे क्यों मढ़ रही हो ? साफ क्यों नहीं कहती कि अर्चना काँटे की तरह तुम्हारे दिल में चुभ रही है। तुम इसी मसले को लेकर मुझ से लड़ना चाहती हो, जिसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ।"

सुनकर अब तो विजया भी शान्त न रह सकी। अनजाने ही नारी की असीम शक्ति साकार हो उठी—"यद्यपि तुम्हारी बातें झूठ हैं, पर अब मैं इन्हें ही सत्य मानूँगी। तुम्हारी तरह क्या कोई मनुष्य इतना कठोर होसकता है कि अपनी गर्भवती पत्नी का खयाल भूल !, रात दिन पराई स्त्री के पीछे पड़ा रहे ? अपने झूठे प्यार की बेशर्म बातें हँस हँस कर पत्नी कहीं जाने वाली नारी को शान से कहे ? क्या मैं पूछ सकती हूँ कि दुर्घटना की ओट में तुमलोग अपनी दबी वासना की हविस को पूरा करने का संरजाम नहीं जुटा रहे ?"

"विजया !!!"

और विजया अधिक उत्तेजित हो और कुछ बोलती कि असीम क्रोध में जल भुन कर, अवि ने आव देखा न ताव, एक

करारी चपत विजया को लगादी। उसका शोर सुन, राजू जो कमरे से निकला था, बहन को मारता देख चीखा। अवि क्रोध में गर्जा—"चुप रह शैतान...तुम भाई बहन गंदी नाली के कीड़े हो, जिनकी यहाँ कोई जरूरत नहीं।"......और सामने पड़े हुए स्टूल को ठोकर मार वह धड़ धड़ाता सीढ़ियाँ उतर गया। विजया तो सन्न सी रह गई। ओह, भगवान् यह क्या होगया? सहसा उसे विश्वास ही नहीं होरहा था कि यह सब सच्ची घटना है। भला जो कभी स्वप्न में भी न सोचा था, वह इतना प्रत्यक्ष कैसे होगया? आह रे नसीब। और विजया घायल हीरनी सी कराह उठी—"चलो राजू, अब एक पल भी यहाँ नहीं रहना..." और वह राजू को झटक कर गोद में उठा बढ़ी ही थी, कि नौकर ने रोते हुए पाँव पकड़ लिये...

"मालकिन! मैं आप को नहीं जाने दूँगा...मालिक ने क्रोध में कह दिया है। वो लौट कर आप को नहीं देख पागल हो-जायेंगे...क्यों गृहस्थी को बरबाद कर रही हैं?"

विजया ढाँ ढाँ रो पड़ी—"रोक नहीं गोपाल! अब मैं यहाँ नहीं रह सकूँगी-।"

"तो माँ फिर कहाँ जाओगी—"

"यह तो मुझे भी नहीं मालूम...पर इतनी बड़ी दुनियाँ में मुझे जगह जरूर मिल जायगी..."

"नहीं माँ...मैं नहीं जाने दूँगा...आप बाबू के आने पर चली जाइयेगा...वरना वो आत्म हत्या कर मर जायेंगे। मुझ

से न देखा जायगा।"

"नहीं रे नहीं...बाबू का दिल मुझ से भर गया। तेरे लिये वो दूसरी माँ ले आये हैं रे!"

सुनकर गोपाल दंग रह गया। उसे 'माँ' के कथन पर न जाने क्यों विश्वास नहीं होता था। पति पत्नी में जिस अपूर्व प्रेम की कल्पना कोई कर सकता है, उस से भी अधिक ही प्रेम, गोपाल ने, विजया और अवि में देखा था। 'माँ' की गृहस्थी से बढ़कर भी कोई सुन्दर घराने की कल्पना, वह कभी कर सका हो, याद नहीं पड़ता। वह जानता था कि 'माँ' हजार बार अवि बाबू से लड़ा करती है, पर मालिक का हाथ उठते उसने कभी नहीं देखा था। आज जो अचानक ही यह घटना घटी, इस से गोपाल को जितना दुख हुआ था, उस से किसी भी अंश में कम आश्चर्य नहीं हुआ।

विजया जब राजू के साथ सजल नयनों से चल पड़ी, तो गोपाल ने पाँवों में लोटते हुए व्यवधान उपस्थित किया—"इस बेटे को किस के सहारे छोड़े जा रही हो माँ! तेरे बिना, पल भर भी कैसे रहूँगा मैं?"

"तो चल, मुझ पर ही कृपा कर दे...काका के पास दिल्ली जाऊँगी रे"

"चलो माँ..."

और सभी चल पड़े। बच्चे राजू की आकृति से शायद ऐसा झलकता था, कि वह घर छोड़ने से अप्रसन्न है।

× × × ×

कहते हैं मनुष्य का सब से बड़ा शत्रु क्रोध होता है। पल भर का अमर्ष जीवन में ऐसी भूलें करादेता है कि उम्र भर पश्चाताप में आँसू बहाने पर भी उनका सुधार नहीं हो सकता।

अवि जो अमर्ष में अपनी प्राण-वल्लभा पर हाथ उठाचुका, सो उसका, उसे अब कम दुख थोड़े ही हो रहा था? चौरंगी तक आते आते, अंतर शत् शत् तूफान ले, उसे डोलाय मान करने लगा। विनाश का सजीव चित्र आँखों के सामने घूम गया। जी तो करता था, कि पत्नी पर उठने वाले हाथ को चलती ट्राम के नीचे दबा, काट ही डाले। या फिर स्वयं ही किसी मोटर दुर्घटना का शिकार हो, इस दुनियाँ से ही मुँह मोड़ ले। कारण-मस्तिष्क हथौड़े मार मार उसे कह रहा था-भूल तेरी है—विजया ने जो कुछ कहा सत्य है। वस्तुतः तूने अर्चना में अभिरुचि ली। विजया के प्रेम को तू न परख सका। अभागे! अपनी भूल के लिये—उस सतवंती को क्यों मारा? वह माननी इतनी भर्त्सना के बाद जिन्दा भी रहेगी? या तो घर छोड़ कर चल देगी—या आत्म हत्या...हाँ हत्या कर लेगी—जा...देख. देर की तो आग के शोले भड़क उठेंगे... घर जल जायगा...तू जल जायगा...तेरी अर्चना जल जायगी सब समाप्त होजायगा रे...।

और अवि इस विचार के आते ही बेतहाशा टेक्सी पकड़, भागा अस्पताल में अर्चना के पास। वह उसे यों हड़बड़ाया देख, हकी बकी सी कुछ पूछती, कि उसके पहले ही अवि उसकी

गोद में सिर रख, दहाड़ कर रो पड़ा। अर्चना तो और भी बिस्मित हो गई—"क्या हुआ...? यह क्या कर रहे हो ?"

"अर्ची मेरी दुनियाँ लुट रही है...उसे बचा ले। एक ही श्वाँस में अवि बोल गया। सुनकर अर्चना किसी अशुभ की आशंका में अधिक ही परेशान हुई—"बोलो भी, बिना बताये मैं क्या जान सकूँगी "

"देर न करो अर्ची...उठो, वरना विजया आत्म हत्या कर लेगी...मैं उसके बिना जिन्दा न रह सकूँगा..."

"कौन विजया?"

"मेरी पत्नी...तुम चलो ना...।"

और अर्चना को कुछ सोचने का अवसर भी नहीं मिला।

अवि उसे मानो घसीटते हुए ही उठा, टैक्सी में ले आया। कारण—'पत्नी' शब्द के उच्चारण मात्र से ही अर्चना के प्राण से निकल गये। वह तो केवल जिन्दा लाश के तुल्य ही रह गई। भयानक वज्राघात अंतर पर हुआ था, पर ठनके का शब्द सुनने का अवकाश, अभी अवि को कहाँ था? वह तो स्वयं में ही उलझा हुआ था, फिर झगड़े का कारण भी विशेष रूप से पूछने पर वह क्यों कर बताता ?

अर्चना के साथ जब घर पहुँचा, तो बूढ़े दरबान ने रो रो कर कहा—"बाबू ! बहू रानी हवड़ा चली गई। उसे ले आओ बाबू !"

और बिना उत्तर दिये ही अवि अर्ची को घसीटते हुए हवड़ा की ओर चल पड़ा।

विजया जब गोपाल और राजू के साथ, स्टेशन पहुँची थी, दिल्ली की गाड़ी मिलने में पूरे दो घंटे बाकी थे। सो वह राजू को लिये वापस नहीं लौटी, बल्कि वहीं प्रतीक्षालय में वेदना का दावानल लिये बैठ गई। यद्यपि वह भी क्रोधाभिभूत होकर ही इतना शीघ्र चली आई थी, पर यहाँ आने पर मनमें कोई घर छोड़ने का विरोध भी कर रहा था। एक बार तो विजया के दिल में हुआ कि चुपचाप पुनः लौट चले और आवेस की मात्रा कम होने पर सिर फोड़ मरते हुए अवि को गोद में भर लाख लाख आँसू बहाये। लेकिन उसका अहम्, था जो उसे यों हार स्वीकार करने को मना क रहा था। जब भी अवि के कहे शब्दों का स्मरण होता, वह तीर का बिंधना, अन्तर में अनुभव कर कराह उठती और अवि की दुनियाँ से दूर ही रहने का विचार दृढ़ कर लेती।

राजू और गोपाल गुमसुम थे। विजया ने मौनता भंगकर गोपाल से कहा—"राजू को जरा टहला ले रे..."

और गोपाल उदास चित्त माँ की आज्ञा मान, राजू को लेकर बाहर चला आया। अब अकेली विजया-'वेटिंग रूम' में बैठी सोच रही थी—क्या यह सम्भव नहीं कि अवि उसे यहाँ से लौटाने चला आये? भला, इतना अन्याय कर वह स्थिर रह सका होगा? और विजया किसी निश्चय पर पहुँचती उससे पूर्व ही किसी की आहट से चौंकी। पीछे घूमकर देखा, तो असीम आश्चर्य हुआ। अर्चना आँधी की तरह लपक कर

विजया के पाँवों में गिर ढ़ाँ-ढ़ाँ रोने लगी।

गोपाल और राजू के साथ खड़ा हुआ अवि भी आँसुओं का सागर ले, अपराधी की तरह पश्चाताप में गलने लगा। भौंचक सी विजया करे तो क्या ?

"यह कलंक मुझ पर लगाकर न जाओ बहन! वरना नारी जाति बदनाम हो जायगी। हम किसी का घर थोड़े ही उजाड़ती हैं ?"

यह अर्चना का दर्द भरा स्वर था। किंकर्त्तव्य विमूढ़ सी विजया ने स्वभावत: ही अनुमान लगा लिया था कि आने वाली अर्चना ही है। उसे बाँहों में झुलाते हुए रुँधे गले से ही बोली- "यह क्या कर रही हो बहन! क्यों पाप चढ़ा रही हो—"

"तो उठो... घर चलो, वरना अवि की मौत के साथ साथ अर्चना की हत्या का अपराध भी तेरे सिर होगा। मुझ में इतनी शक्ति कहाँ—जो तुम्हें घसीट कर घर ले चलूँ .."

विजया को सूझ ही न पड़ा कि क्या जवाब दे। एक बार उसने रोते हुए पति की ओर निहारा और दूसरी बार जिज्ञासा के भाव में तिरोहित अर्चना के मुख की ओर। उसे यों ऊहा-पोह में देख अर्चना बोली—"ससुराल से तो हमारी अर्थी ही उठा करती है बहन! अर्ची तेरे घर उजाड़ने का कलंक लेकर कैसे जी सकेंगी ? यों ही बहुत दुखी हूँ। अब जीने का बहाना भी न रहने दोगी क्या ?"

"ऐसा क्यों कह रही हो बहन -"मैं तो पति आज्ञा से गृह त्याग कर रही हूँ।"

"तो अब मेरी आज्ञा से ही लौट चलो—"

कटे वृक्ष की तरह फूट-फूटकर रोता हुआ अवि, विजया पर लुढ़क पड़ा। वह भी हिचकियाँ भर भरकर रोने लगी। अर्चना वेदना के उभाड़ में, या फिर जानकर इन दोनों को अकेला छोड़, बिलखते हुए राजू को गोद में भर बाहर आ गई। विजया ने आँसू पोंछते हुए कहा—"क्यों जग हँसाई करा रहे हो ?"

"तो फिर घर चलो !" और अवि ने जबरन विजया को उठाया। वह मुकड़ती सी बोली—"जबरदस्ती क्यों कर रहे हो ? गृह-प्रवेश की आज्ञा मिल चुकी न...लौट चलूँगी ..पर अब अर्चना बहन भी मेरे साथ ही चलेगी..."

और विजया अपनी अवस्था स्वभाविक करने का प्रयास कर अवि के साथ ही बाहर आई।

जिस समय, अर्चना को लिये हुए विजया घर पहुँची थी, मानो गई हुई बाहर के वापस लौट आने से आँगन-मकान का कोना कोना झूम उठा। बूढ़े दरबान ने 'बहूरानी' को देख आनन्दातिरेक में, वैसे ही आँसू बहाये, जैसे वर्षों के बिछुड़े बेटे के लौट आने पर दुखियारी माँ बहाती है।

× × × ×

और जिस दिन विजया अर्चना को लेकर स्टेशन से लौटी उसी दिन, सदा के लिये अवि के बिछुड़ जाने का सदमा या जीवन में इस अप्रत्यासित घटना के कारण दुर्बल शरीर का

प्रहार न सहना, अर्चना को रोगी बना चुके। प्रस्तर प्रतिमा सी वह जीर्ण शरीर को लिये छ-सात दिन भयानक अवस्था में ही पड़ी रही। इसी बीच, विजया ने अपने शरीर की सुधबुध भूल, दिन रात अर्चना की ऐसी सेवा की जैसे रोगी बच्चे की मां करती है। समय पर दवा दारू पथ-पानी, सभी कुछ वह अपने हाथों से अर्चना को देती थी। अवि भी मनोयोग से इसमें सहायता करता था। अर्चना का गुमास्ता मुंशीराम तो, मानो कोई काम न रहने के कारण, बस इधर-उधर ही कर लेता था।

यद्यपि अर्चना पर इसका अधिक ही प्रभाव पड़ा था। विजया के ऋण से उऋण होने का साधन सहज ही न सूझ पड़ता था। पर जब अवि के चिर वियोग का ध्यान आता, तो मन करता था कि यथाशीघ्र वह इस छलना की नगरी का परित्याग कर, दूर देश चल देती। भला जिस आशा के सहारे वह अबतक भटकती रही, जब वह आशा ही टूट गई, तो जीवन से कैसा मोह? न हो तो किसी कुएँ तालाब में डूबकर ही इस बेजार जिन्दगी का अंत कर दिया जाय, ऐसे अरमान, खटिया पर चुपचाप पड़ी अर्चना, अन्तर में पाल रही थी।

इधर अविनाश, दिन-रात अर्चना का ध्यान रखते हुए भी सदा बच बचकर ही उसके सामने जाता था। उस दिन विजया के साथ हुई घटना के बाद, अभी तक उसे, पत्नी से एक बार भी जी खोलकर बातें करने का अवसर नहीं मिला

था। अतः वह अन्दाज ही नहीं लगा पा रहा था कि वस्तुतः विजया ने उसे क्षमा किया या नहीं। यों बातचीत तो दोनों में नित्य ही होती थी, पर उनका विषय, सदा ही अर्चना का स्वास्थ्य रहा।

विजया भी कुछ कतरा रही हो, तो ज्ञात नहीं। हाँ इतना अवश्य सत्य था कि अब वह रात्रि में भी अवि के कमरे में शयन नहीं करती थी। इसका कारण अवि के प्रति रोष की भावना थी अथवा जानकर वह अर्चना के समीप सोती, यह कौन कहे ?

अर्चना भी यों सदा मूर्छित ही नहीं रहती थी, पर यह सभी अनुभव कर रहे थे कि वह बोलती बहुत कम है। इसकी वजह चाहे बीमारी के कारण हुई कमजोरी हो, चाहे अवि के वियोग का सदमा, पर वह दो चार आवश्यक बातों के अलावा विशेष कुछ न बोला करती थी।

इसी तरह दो चार दिन और बीत गये। इस बीच अर्चना के स्वास्थ्य में अभिवृद्धि के लक्षण झलकने लगे। इससे विजया और अवि, दोनों को ही प्रसन्नता हुई। विजया तो मानों कई दिनों से यही याचना कर रही थी कि अर्चना शीघ्र से शीघ्र अच्छी हो जाय। तभी तो आज जरा सी उत्फुल्लता देख, वह फूली नहीं समाई। अवि जब दफ्तर जाने लगा, तभी उसने हास्य के लहजे में कह दिया था—

"अपने मरीज की सलामती चाहते हो तो फल लाना न

भूलना...” इसका अर्थ अवि ने क्या समझा, सो तो ज्ञात नहीं, पर उसने गर्दन हिला स्वीकृति अवश्य दे दी थी। विजया तो चाहती थी, वह कुछ बोले, लेकिन न जाने क्यों उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई।

तो संध्या में फल लेकर अवि जो लौटा, तो विजया अर्चना के पास ही बैठी थी। पति के लाये फल उसके सामने खोल विजया बोली—

“मैं जरा नारंगियों का रस निकालूँ तू बीमार को अकेला न छोड़ना—” और विजया चली गई। अवि ने कुछ उत्तर तो नहीं दिया, पर कुर्सी पर अर्चना के समीप बैठ गया अवश्य। एक बार जाती हुई पत्नी की ओर देख उसने बीमार पर नजर डाली। देखा - अर्चना के मुख पर मलिनता के आवरण में भी सुन्दरता झलक रही है। अर्चना ने जब अनजाने ही आँखें मिलाई तो अवि ने पूछा—“कैसा जी है अर्ची! जान तो पड़ता है तुम बच गई।”

अर्चना ने न जाने क्यों लम्बी श्वाँस भरी और तनिक हास्य बिखेरती हुई बोली—“बचती कैसे नहीं? देवी की प्रार्थना व्यर्थ थोड़े ही जाती है? विजया ने रात दिन घुलकर जो सेवा की उसके प्रतिदान स्वरूप ही भगवान ने जीवन लौटा दिया... पर यह अच्छा हुआ क्या?”

अवि अनजाने ही मुस्कुरा पड़ा—“अच्छा क्यों नहीं हुआ? देखो ना... विजया तुम्हें पाकर कितनी खुश है? न जाने वह

क्या जादू जानती है जो पल भर में, सम्पर्क में आने वाले को मोह लेती है ? तुम अपने को ही लो न ! बस चन्द दिनों में ही देवी की संज्ञा दे दी .. और मुझे..."

"जलो नहीं, वह तुम्हारी सौत तो नहीं जो अर्घ्य का अधिकार छीन लेगी ? फिर मैं तो नारी हूँ। हाँ, अगर पुरुष होती तो अवश्य कोशिश करती कि तुम्हें छोड़ वह मेरे साथभाग चले..."

"ले जाओ न अब भी—" 'ही ही' हँसकर अविनाश बोला।

"अंध कक्ष में भटक कर मर जाओगे। बड़ी तपस्या के बाद ही मिलती है ऐसी देवी—" अर्चना ने लम्बी श्वाँस भर कहा। अवि उसकी गम्भीरता में पैठ नहीं रहा था, सो साधारण स्वर में ही बोला—"यह तो ठीक ही कह रही हो, पर इसे पाने के लिये मुझे तप नहीं करना पड़ा।"

"तो कहाँ मिल गई थी यह निधि ?"

अनजाने ही अर्चना के मुख से निकल गया। सुनकर अवि ने एक बार अर्ची की ओर देखा जो गम्भीर बनी जिज्ञासू की तरह उसी को निहार रही थी। अवि उसका भाव न समझते हुए भी बोल गया—"पूर्व जन्म के संस्कार पर विश्वास करो तो, वही सत्य है। वस्तुतः अनजाने ही यह जीवन में प्रवेश कर गई और आत्मा ने न जाने क्यों, तेरे अधिकार का अर्घ्य, इस देवी को समर्पित कर दिया।"

अवि के कथन से, अर्चना के अन्तर से 'आह' निकल गई। वह अधिक ही वेदना विदग्ध हुई। एक बार जमीं की ओर

देख अनुभव किया, कि अवि से यों घुल मिल बातें करना अच्छा नहीं। पर न जाने क्यों, खामोशी उसे अच्छी नहीं लगी, सो वह बोली—"अच्छा ही किया तुमने। वस्तुतः अवि रे! तेरे अर्घ्य की अधिकारणी वो ही थी।, हाँ, तुम अबतक इस भेद को मुझसे छिपाते रहे ना? कलकत्ता आने पर तो बता देते...!"

"क्या करता, डाक्टर ने जो मना किया था.. तुम बहुत कमजोर थी न? मुमकिन था..."

तेरे वियोग के सदमे को न उठा पाती, यही ना?...पर जिस अभागे कैदी को फांसी की सजा हो चुकी, उसे कबतक मौत के मुँह से छीनते रहोगे?"

और अर्चना ने दर्द से मुँह घुमा लिया। अवि ने अब अनुभव किया कि वस्तुतः वातावरण अत्यन्त गम्भीर है। वह भी वेदना में सने बिना न रह सका। उसने स्पष्ट जान लिया कि अर्चना और भी कुछ बोलती, पर दर्द ने ही उसकी वाणी को अवरुद्ध कर लिया है, सो वो ही बोला—"मौत तो जीवन का अंतिम परिणाम है अर्ची! वस्तुतः मैं उस से नहीं डरा था। भय तो इतना ही था कि उस अवस्था में मतिष्क पर कोई बुरा प्रभाव पड़ जाता, तो जीना दूःभर होजाता न?"

"अच्छा ही किया तुमने... अब मैं बहुत अच्छी हूँ..."

और अबकी अर्चना रो पड़ी... अवि बेहाल होता-सा बोला—"धर्म-पुस्तकों में किसी ने ईश्वर की कल्पना की है। कहते हैं उसकी इच्छा के बिना तृण भी नहीं डोला करता। फिर विगत

पर अश्रुपात करना उचित है क्या ? हम इसे नियंता की इच्छा जान संतोष नहीं कर सकते क्या ? अर्ची ! नाव को लहरों की मर्जी पर छोड़ दो न ! कहीं किनारा मिल ही जायगा।"

"ऐसा ही करूँगी—" दर्द को जप्त करती हुई अर्चना बोली- "जहाँ ईश्वर की कल्पना की गई है, वहाँ 'विवशता' की कहानी तुम ने नहीं पढ़ी क्या ? भाग्य के हाथों लुटे इन्सान ने किसी अनजान गिरि-कन्दरा में मायूस हो आत्म-हत्या करनी चाही, तो तेरे ग्रन्थकारों ने, इसे 'होनी' का वरदान मान संतोष करने की सलाह दी थी। अबि रे ! अर्चना अपनी बेबसी को संतोष का चोला पहना देगी......।" और पलकों से चूते आँसुओं को अर्चना समेटने लगी। अबि को सूझ ही न पड़ा कि क्या बोले। एक बार तो उसका मन हुआ कि इस तरह दर्द से उफनती अर्चना को वह छाती से चिपका कर कह दे-ले अभागी ! अबि अब तेरा है—पर ऐसा हुआ नहीं।

अचानक विजया शीशे के गिलास में रस भर कर जो आई सो इन दोनों को यों आँसू बहाते देख, पल भर ठिठकी। फिर टेबुल पर पात्र रखती बोल पड़ी—"अबि अगर एक ही बार में पूरा इतिहास पढ़ाओगे, तो कमजोर विद्यार्थी कैसे समझ पायेगा ? फिर ये गड़े मुर्दे उखाड़ने से तो अच्छा है-विज्ञान की चर्चा करो। अर्चना दी तो डॉक्टर है न ! इसके लिये अतीत का क्या महत्व ? भविष्य के लिये, रोग की परिचर्या का कोई नया आविष्कार मिल जाय तो अच्छा है न ?"

अविनाश और अर्चना दोनों ही विजया की उपस्थिति से चौंक कर सम्हलने का प्रयास करने लगे। विजया ने इनके झेंपने की अवस्था का अनुभव कर अनजान बनकर ही कहा—"चाहो तो छुट्टी मिल सकती है अवि !"

और जैसे वर्षों की कैद से मुक्ति मिल गई हो, ऐसा ही अनुभव कर अवि वहाँ से उठ चला।

अर्चना ने अब अपने को बहुत कुछ सम्हाला पात्र से रस पी कर विजया से पूछा—"यह इतिहास और विज्ञान कहाँ से ले आई दीदी ? विगत की चर्चा कर के भी भविष्य से मायूस तो मैं नहीं न ? फिर सबकुछ अपनी इच्छा से तो नहीं होगा। नियंता की मर्जी को स्वीकार करलूँगी। फिर देख मैं कितनी खुश रहती हूँ—" अर्चना ऐसा कह कर विजया के दिल की थाह लेना चाहती थी। लेकिन वह अभागी क्या जाने कि विजया को समझना इतना सहल नहीं। वह स्वयं ही इतनी सतर्क है कि बात को तौल कर बोलने का मानो खूब अभ्यास कर चुकी है। तभी तो नपी तुली भाषा में बोली—"दीदी ! तेरी खुशी तो वस्तुतः उस दिन प्रगट होगी, जब दुल्हन बना, तुझे किसी के साथ विदा करूँगी...मुझे माँ बनने का अधिकार दे देगी न ? अभी जरा अच्छी हो ले...वरना इस अवस्था में कोई नाक भौं सिकोड़ चला गया, तो फिर तू सदा के लिये पुरुष जाति के प्रति विद्रोह की भावना पाल लेगी..."

अर्चना ने चाहा कि वह कह दे—पुरुष के प्रति विद्रोह का

सूत्रपात तो अवि की छलना ने कर दिया—पर वह ऐसा न बोल कर तनिक सावधान होती हुई कह गई—"दीदी जहाँतक 'माँ' बनने का प्रश्न है—वो मैं पहले ही स्वीकार कर चुकी हूँ। वरना मेरी बीमारी में तेरी ममता का इतना सजीव रूप, न देख पाती। रही बात मेरे दुल्हन बनने की, सो दीदी, अर्चना ने अपने देश में पराश्रिता नारी पर किये जाने वाले अत्याचारों के प्रति विद्रोह प्रगट करने के लिये, बचपन से ही स्वआश्रिता रहने का व्रत ले रखा है। आजन्म अविवाहित रहना अनुचित होगा क्या ?"

"यह तू पुरुष जाति के प्रति रोष प्रगट कर रही है अथवा मेरे या अवि के प्रति ?"—विजया ने सीधे से प्रहार किया। अर्चना तिलमिला उठी, पर वह जबतक कुछ कहे—विजया मुस्कुरा कर पुनः बोल पड़ी—"घबरा नहीं, तेरा यह रोष भी स्वाभाविक ही है—मैं शिकायत नहीं कर रही। लेकिन तेरा स्व-आश्रिता वाला सिद्धान्त कुछ जँचा नहीं। वस्तुतः अन्तर को कभी टटोल कर देखा है क्या ? पुरुष से समता का दम भरने वाली नारी में सेवा की भावना जन्म जात होती है... और इस सेवा में हीनता नहीं, तो समता भी न मानूँगी। सच तो यह है री—कि हम उपभोग की वस्तु हैं...।"

सुनकर अर्चना वेदना में भी क्रोध की भावना से न बच सकी। उत्तेजित हो बोली-"यह तेरे विचार हो सकते हैं दीदी! मैं तेरे या अवि के प्रति रोष नहीं व्यक्त करती। पर नारी

और पुरुष में असमता का सिद्धान्त भी, मैं नहीं मानूँगी"

"हटीली नारी! क्यों अपने को छल रही है? अगर तेरे विचार ही सत्य हैं, तो बता, पति से ताड़ना-भर्त्सना और मार सह कर भी, क्यों हम सदा उसी पुरुष में अपना अस्तित्व विलीन करने को तड़पती रहती हैं?"

"यह युग युग की दासता का प्रभाव है, नारी का स्वभाव नहीं—" अर्चना बीच ही में फुफकार उठी। विजया अधिक सरस होती हुई बोली—"दीदी, तेरे ज्ञान विज्ञान की बातें तो नहीं पढ़ी...पर इतना मैं भी जानती हूँ कि दाता सदा याचक के लिये श्रेष्ठ ही रहा है। क्या तू इसे अस्वीकार करेगी कि हमें पुरुष से कुछ प्राप्त करना है? जिसे वो अगर न दे तो नारी जीवन में पूर्णता ही न आये। मैं कह दूँ क्या कि अवि की छलना। पर जहाँ तुम उत्तेजित होती हो, वहाँ अंतर, अब भी जाने अनजाने उसमें लीन होने की याचना कर लेता है ..."

विजया के व्यंग्य पर पुनः अर्चना चौंकी, पर उसकी इच्छा अधिक तर्क करने की नहीं थी। सो वह संयत स्वर में ही बोली—"तर्क में तुम से न जीत सकूँगी दीदी! अवि से मुझे लगाव रहा है, लेकिन किस रूप में? इसकी विवेचना कभी न कर सकी...और अब तो करना भी नहीं चाहूँगी। शादी वाला प्रस्ताव मानने को जी नहीं चाहता ..अत्याचार करोगी तो इसे भी नियति का विधान समझ, संतोष कर लूँगी। विरोध की शक्ति अब अर्चना में नहीं। हारा हुआ जुआड़ी, झुँझला

सकता है, अधिक भाग्यशाली और बुद्धिमान होने का दावा तो नहीं कर सकता न ?"

"तभी तो कहती हूँ अर्ची—कि गई हुई पूँजी लौटाने के लिये ... एक दाव और लगा–काश भाग्य साथ दे दे...।" अर्चना न जान सकी कि किस उद्देश्य से विजया ने उपर्युक्त बात कही, पर इतना अनुमान उसने अवश्य लगा लिया कि विजया उसकी शादी करने का हठ अवश्य करेगी। तो क्या चारा है ?

इसका उत्तर अर्चना की समझ में न आया। वह केवल इतना ही बोली—"दीदी ! किसी दिन मेरे ब्याह की आवश्यकता आ पड़े, तो याद रखना, पात्र-चयन और समय-निर्धारण का अधिकार मैंने तुझे नहीं दिया है।"

"हाँ री हाँ, तेरी अनुमति से ही सब कुछ होगा .."

और न जाने किस कार्य से विजया उठकर बाहर चली आई। अर्चना ने लम्बी श्वाँस भर कर करवट बदल ली। कौन जाने, वह प्रसन्न थी या दुखी ?

११

विधि की भी कैसी विडम्बना है कि ज्यों ज्यों अर्चना का स्वास्थ्य सुधर रहा था, विजया प्रतिक्षण अधिक ही दुर्बल होती जाती थी। इसका कारण—प्रथम गर्भाधान के कारण उत्पन्न हुए, शरीर के वे अनेक विकार हो सकते हैं जो साधारणतः प्रत्येक नारी की, मातृत्व का अमर वरदान देने से पूर्व इतनी ही कठोर परीक्षा लेते हैं। तभी तो चंचलता की प्रति मूर्ति-भ्रान्ति का प्राँजल रूप-श्री, जगद्धात्री जगदम्बा का सच्चा स्वरूप बन पाती हैं।

लेकिन विजया के गिरते हुए स्वास्थ्य के सम्बन्ध में एक संदेह रह रह कर और भी हो जाता कि कहीं वह अर्चना में सौतिन का स्वरूप देख, अनजाने ही अन्तर में वेदना तो नहीं घोल रही? कारण-यदाकदा अवि और अर्चना जब भी विजया की अनुपस्थिति में तनिक देर के लिये भी घुल मिल पाये, तो

विजया के सहसा ही आजाने पर, सदा उनकी मुखाकृति अपराधी के भाव का आलेपन कर लेती थी। अव्यक्त भय से वे न जाने क्यों, यों सिहर जाते, जैसे कि कोई संगीन अपराध करते समय रंगे हाथों पकड़ा गया हो। विजया इस भाव को लक्ष्य करती और उसका अन्तर दर्द में घुलने का प्रयास करता, फिर भी इतना अवश्य सत्य था कि इन दोनों को वो आसानी से अपनी परिस्थिति से अवगत नहीं होने देती थी। अपने कृश तन को बरबस सम्हाल, वह सदा प्रसन्न चित रहने का ही स्वाँग भरती रहती थी।

इधर अर्चना पूर्ण स्वस्थ हो चली थी। मुंशी राम को उस के गाँव से माँ की बीमारी का सम्वाद आगया था, सो वह कुछ दिन पूर्व वहीं चल दिया। यद्यपि रह रह कर अर्चा को यह ध्यान अवश्य हो आता था कि स्वास्थ्य की अभिवृद्धि जहाँ जीर्ण शरीर में सुपुष्टता भर, यौवन के निखार में चार चाँद लगा रही है, वहीं वह वियोग की विषम घड़ी को भी पल पल अधिक ही सन्निकट ला रही है, फिर भी इतना उसे अवश्य विश्वास था, कि माँ से भी अधिक ममता का दामन फैलाने वाली—मुँह बोली बहन विजया, इतनी निर्मम नहीं बनेगी कि सबल उसे अविनाश के दीदार से भी बंचित रख देगी। रह रह कर उस का मन यही कहता था— नादान ! प्रीत में रंगी यह मोह की चादर समेट ले। अवि से तेरा अब क्या सम्बन्ध ? वासना की गंदी नाली में अरमान के बीज बिखेरना अच्छा है क्या ?...

तो अर्चना व्यग्र हो बड़बड़ाती—मैं क्यों चादर फैलाने लगी ? तनिक अच्छी होते ही इस छलना की नगरी से दूर... बहुत दूर चली जाऊँगी... ।' पर वह अभी तक गई क्यों नहीं इसका उत्तर ढूँढे से भी नहीं मिल पाता । कभी कभी अवि और विजया के सात्विक प्रेम के विषय में अर्चना सोचती, तो आत्मा कहती ओ पथ भ्रमित नारी ! इनके स्वर्गिक संसार में जहर घोलने का प्रयास न करना । विजया ने तुम्हें बहन का दुलार, माँ की ममता और सखी का स्नेह प्रदान किया है । इसके बदले में तुमने अगर बासना का विष वमन कर अवि को पथ-भ्रष्ट किया, तो नारी जाति के मुख पर सदा के लिये कलंक का अमिट टीका लग जायगा—तो अर्चना अतीव उदास हो लखनऊ शीघ्र से शीघ्र लौट पड़ने का निश्चय करती । लेकिन अपना अभिमत व्यक्त करने जब वो विजया के पास आती वह उसे प्यार का रस घुला कहती—"यह मायूसी का आलम, लोगों में मुझे बद-नाम करने को बनाया है क्या ? दुनियाँ यही कहेगी-विजया ने—अर्चना से जलन का आभास पा, उसे सुख नहीं दिया। कहीं तू मँझधार में छोड़, जिन्दगी से कन्नी कटाने का विचार तो नहीं कर रही ? जान रखना, विजया तुम्हें घर से दुलहन बना कर ही विदा करेगी । कभी चुपके से भागने का इरादा किया तो जहर खा कर मर जाऊंगी । हत्या का अपराध तेरे ही सिर होगा—" तो अर्चना अपनी सारी वेदना भूल विजया की गोद में सिर रख अनजाने ही कह देती—"डर नहीं दीदी ! तेरे ऐसा

सुख कहाँ पाऊँगी। छोड़ कर जाऊँगी भी तो कहाँ? सखी सहेली तो और ढूँढ निकालूँगी... ...पर तेरे ऐसी माँ कहाँ से लाऊँगी।" और विजया सुनकर आत्म विभोर बनी दुलार से उसका सिर सहला देती।

इतना होने पर भी, यह निर्विवाद सत्य था कि रात की गहन कालिमा में, या दिन के उदास उजाले में, कई बार अर्चना ने विगत के वेदना मय पृष्ठों पर अविनाश के प्यार की कहानी बहुत बार पढ़ी। न चाहते हुए भी मन हजारों बार, आज भी अपने को अवि में तिरोहित करने के लिये लालायित हुआ। अर्चना ने लाख प्रयत्न किये कि वो ऐसा न करे, पर मन से वह बहुत बार संघर्ष कर के भी अंत में हार ही जाती।

इधर अवि की क्या परिस्थिति थी, यह ठीक से ज्ञात नहीं होता। अर्चना से घुल मिल कर कभी वह बातें अवश्य करता, पर उन में किसी लोभ का रस रहता या योंही निर्लिप्त भाव की अभिव्यंजना, यह कौन कहे? लेकिन एक दिन विजया को अपने पति पर कुछ संदेह अवश्य हुआ जब सजी-सँवारी अर्चना ने उसके कक्ष में प्रवेश कर कहा—"दीदी उठो ना! बहुत दिनों से बाहर नहीं निकली। आज 'ओरियेन्ट' सिनेमा में 'कैलाश मान सरोवर' चित्र लगा है—चलो देख आयें।" तो विजया ने अर्चना के रूप की शिखा को यों उद्दीप्त सा देख, तनिक विस्मित स्वर में ही कहा—"इस रूप-शिखा पर किस परवाने को भस्म सात करने चली हो? मेरा तो चित्त ठीक नहीं, अवि को फोन

कर बुलालो।"

तो अर्चा ने चिढ़ कर कहा—"तू मुझे बनायेगी क्या ? और किसी परवाने का परिचय तो नहीं...हाँ तेरा कन्हैया सिनेमा चलने की योजना बना कर गया है। जलो नहीं तो कह दूँ—इस रूप शिखा पर वो ही परवाना चढ़ता आया है।" और वो खिल खिला कर हँस पड़ी। विजया सिहर कर भी सम्हल गई—"तो यों न कह–अवि को रिझाने के लिये यह रूप का जाल बिखेरा है... परिन्दा फँस जायगा न ?

"कभी यह सम्भव था, आज नहीं।"

"क्यों ..?"

"वो इसलिये कि नादान परिन्दे ने तुम्हारे आशियाने की पोस मान ली। दीप-शिखा के बदले इस चाँद से मुखड़े का जलवा जो दिखा दिया फिर भला बिखरे तिनकों का कौन लोभ करे ?" अर्चना इतना ही कह पाई थी कि अचानक अवि दफ्तर से लौट आया। आहट मिलने पर दोनों ही बाहर आईं। अर्चना ने पहले ही टोक दिया—"अब मना लो अपनी राधा को। कह रही है — मैं नहीं जाऊँगी।"

"क्यों क्या बात है विजया ! जी अच्छा नहीं क्या ?" अवि ने पूछा। विजया तनिक मुस्कुरा कर बोली—"जी तो अच्छा है, पर तन न जाने क्यों शिथिल जान पड़ता है। तुम लोग आज हो आओ ..। मैं फिर कभी चलूँगी।"

और अवि ने न जाने क्यों शीघ्र ही कह दिया—"ठीक है,

चलो अर्ची।" पर अर्चना एक बार सहमी-"लेकिन यों अकेले ही, क्या? दीदी चलती तो..."

"वर्षों साथ रह के भी झिझक दूर नहीं हुई न?" विजया ने टोका। अवि ने सह दे दी—"हाँ...हाँ शर्मा नहीं...चल। विजया को पूरा भरोसा है...।" और दोनों चल दिये।

विजया उनके जाने पर, न जाने क्यों उदास होगई। मन ने कहा—तो सिनेमा का प्रोग्राम पहले ही बन चुका था। शायद अवि और अर्चना अकेले ही जाना चाहते थे। लेकिन अकेले क्यों? और इस 'क्यों' का उत्तर कौन दे। दिल ने बहुत से अनुमान लगाये और जब यह विचार उठा कि कहीं विजया की सत्ता से विमुक्त हो ये दोनों दूध-पानी से घुलने का सुअवसर प्राप्त करने का कोई बहाना तो नहीं बना गये-तो वह लाख लाख बिच्छुओं के दंशनकी पीड़ा का एक साथ ही अनुभव कर, सिहर उठी। तो क्या अवि-अर्चना, उसके साथ विश्वासघात करने गये हैं? ना...ना...ऐसा नहीं हो सकता। वो केवल सिनेमा देखने गये हैं। तू व्यर्थ ही भला-बुरा सोच रही है। इस तरह मन को समझाने का भरसक प्रयत्न विजया ने किया। लेकिन असमय ही राजू ने स्कूल से अचानक लौट कर कहा—"दीदी! जीजा और अर्ची दी कहाँ...सिनेमा जाना है न?" तो सुनकर विजया चौंकी—"हैं रे! सिनेमा का नाम तुझसे किस ने लिया...वो तो गये भी।

वाह, अर्ची दी' ने तो कहा था कि विजया दी' नहीं जायेगी,

सो मेरा रहना जरूरी है...फिर, वे अकेले कैसे चले गये ?"

सुनते ही बिजली सी कड़की और विजया की भय से आँखें मुँद गईं। गहन कालिमा के आँचल में, मुँदी आँखों से ही विजया ने देखा कि अर्चना अवि की बाहों में झूल रही है और वह अभागा उसकी रूप मदिरा को युग युग की प्यास लिये तृषित भ्रमर सा, झूम झूम कर पी रहा है। विजया का अंग प्रत्यंग सिहर उठा। अल्पकाल तो विचारों के बवण्डर में भटकती रही, फिर अचानक ही किसी दृढ़ निश्चय पर पहुँच वह राजू से बोली—"उठ रे ! चल तुझे सिनेमा दिखा लाऊँ ......" और वह भाई को सबल खींचती हुई, आँधी की तरह ओरियेन्ट सिनेमा की ओर ही चल पड़ी।

उस समय हॉल में पूर्ण अंधकार था। चित्र शुरू होगया था। फिर भी विजया को डी० सी० के दो टिकट आगे की कतार के ही मिल गये थे। राजू को लिये वह एक बार अंधकार में अविनाश-अर्चना को हेरती, अपनी सीट पर जा बैठी।

बाँये हाथ की ओर 'सोफा' में अर्चना-अवि बैठे थे। वस्तुतः जब वे टैक्सी में घर से चले आ रहे थे, तभी से जान पड़ता है, उन दोनों के अतृप्त अरमान, संयम और दमन की लगाम तोड़ पूर्ण स्वच्छन्द हो, मनचाही करना चाहते थे। तभी तो उस अंधकार में भी विजया ने देखा कि अर्चना विभोर बनी अवि के सुपुष्ठ वक्षस्थल पर सिर रखे, यों अधलेटी है जैसे कि उसका नारीत्व अभी ही अवि के पुरुष में तिरोहित हो

आयगा। अवि की अँगुलियाँ उस कामिनी के कचनार केशों को प्यार से सहला रही थी और भुज-विशाल उस के गले का कंठ-हार बने थे। विजया के तो तन-बदन में आग लग गई। ऐसा भयानक ज्वाला मुखी का विस्फोट हुआ कि उसने जबरन मुँह से फूटती चीख को रोका। आह रे दैव! यह क्या? ये तो दोनों ही विश्वासघाती और फरेबी हैं। अर्चना काम की पीड़ा से काँप रही थी और अवि उद्वेग में भुजाओं का बँधन कस रहा था। छिः कितने निर्लज्ज हैं। लोगों का भी कोई विचार नहीं। और विजया अपना कर्त्तव्य निर्धारित करे, उस से पूर्व ही तो सौभाग्य या दुर्भाग्य से, चलती फिल्म का अचानक फीता टूटा और निमेष भर में ही सारा हॉल प्रकाश से जगमगा उठा। झटक कर विजया ने मुँह घुमाना चाहा, पर तबतक तो न जाने क्यों अवि की दृष्टि उधर ही दौड़ी और पत्नी से आँखें चार होते ही उसके देवता कूच कर गये—"अरे यह तो विजया .." उसके मुँह से फूटा और चौंक कर अर्चना ने सम्हलते हुए अवि की आँखों का ही अनुशरण कर विजया पर नजर डाली तो वह भी हतप्रभ रह गई। काटो तो खून नहीं और जान मार दो तो आह नहीं। भय से अर्चना-अवि दोनों सिहर उठे। लेकिन तबतक विजया ने मुँह फेर लिया था। अवि को ठीक सेंध मारते समय पकड़ाने से असीम क्रोध हुआ और अर्चना धरती फटने का इन्तजार बेसब्री से करने लगी, ताकि अपना कलंकित रूप ले, वह उस में समा जाय। वह उठ

कर शायद अपनी सफाई कुछ पेश करने के लिये विजया के पास आये, तबतक तो चित्र पुनः प्रारम्भ होगया और टूटे दिल से अर्चना मूर्छित सी लुढ़क पड़ी सोफा पर। अवि घबरा कर उसे सहारा देता, न जाने क्यों, आँधी की तरह उठ कर अर्चना को सबल घसीटता हुआ बाहर चल दिया। विजया ने एक उड़ती नजर उन पर डाली, पर वह पुनः चित्र देखने में लीन होने का बहाना करने लगी।

रास्ते भर अवि-अर्चना कुछ न बोले। अर्चना के मन में तो रह रह कर विचार उठते थे-हे भगवान्! यह क्या हुआ? अब किस तरह वह विजया को मुँह दिखा सकेगी? इतना बड़ा कलंक लेकर वह स्थिर भी रह सकेगी? विजया ने क्या सोचा होगा! और वह बेहाल हो गई। लेकिन यह अवस्था भी अधिक देर न रही। मन में छुपे किसी शैतान ने लम्बे लम्बे नाखूनों से अन्तर का दामन तार तार कर कहा-'नादान? अवसर से लाभ नहीं उठायेगी क्या? अवि तो तेरा है, युग युग से, जन्म-जन्मान्तर से। बस तेरी अल्प काल की अनुपस्थिति ने ही तो निर्मम विजया को अवसर दे दिया कि वह उस भोले परवाने को अपनी रूप शिखापर परवान चढ़ा ले। तेरे साथइतना बड़ा विश्वासघात कर के भी, विजया जब दुलार और स्नेह की चादर फैला, तेरे अन्तर में प्रतिशोध की भावना को ढँक देना चाहती है, तो तू ही क्यों शरमा रही है? तू भी अवसर से लाभ उठा...और अपने बिछुड़े साथी को स्वयं में समाले। तड़पने दे दूसरों की

पूँजी लूटने वाले को। वह दिन विजया का था—यह दिन तेरा है। आज दाँव चूकी, तो गई पूँजी कभी न लौटेगी।' और अर्चना बदले की भावना से सुलग उठी।

इधर अविनाश के अंतर में भी संघर्ष का तूफान था। अपने पर न जाने क्यों उसे ग्लानि नहीं हुई, हुआ तो पत्नी विजया पर असीम क्रोध। अपना घृणित रूप तो न दिखाई पड़ा, पर विजया जो छुप कर उनका पीछा करने आई, इस पर वह इतना जल भुन गया कि पत्नी का सत्यानाश करने पर ही उतारू होगया। आव देखा न ताव, मन में दृढ़ धारण कर ली कि जब पत्नी उस पर शक ही करती है, तो वह इसे सत्य कर के ही छोड़ेगा। विजया ने यह देखना चाहा कि अवि अर्चना कहीं घुलते मिलते तो नहीं, पर अब वह देखेगी कि, किस तरह वे उसी के कक्ष में, उसी के पर्यंक पर, वासना का नंगा नाच, नाचते हैं। वह अभागी अपने दीदे फाड़ देख ले कि अवि आज अर्चना में तिरोहित होकर रहेगा। संसार की कोई शक्ति उसे नहीं रोक सकती।

तो इसी पैशाचिक वृत्ति के वशी भूत अवि और प्रतिशोध की जघन्य भावना में लीन अर्चना ने घर पहुँच कर विजया के कक्ष में ही प्रवेश किया। अवि झुँझलाया सा बोला—"अर्ची जान रखो, हमने कोई पाप नहीं किया। अग्नि शिखाओं के चारों ओर भाँवरे डाल लेने से ही विजया हमारे जीवन की नैसर्गिक वृत्तियों को अवरुद्ध न कर सकेगी। हम बचपन के

साथी हैं...युग युग के प्रेमी...जन्म जन्म के संगी। दो तन एक प्राण। बरसाने दो होनी को अपनी आग। भस्म होंगे तो एक ही साथ मिटेंगे तो एक ही साथ।" और अवि के राक्षस ने बाँहों में अर्चना को भर लिया। पता नहीं उसकी मंशा थी या नहीं, पर उसने विरोध नहीं किया। शायद प्रतिशोध और रोष, दोनों ने वासना की चादर तान अपनी मन चीती करनी चाही।

अभागी विजया का कितना बड़ा दुर्भाग्य था, जो वह भी अवि-अर्चना के सिनेमा भवन से लौटने के अल्पकाल बाद ही किसी अनहोनी की आशंका से डर कर, राजू के साथ शीघ्र ही घर आई। कक्ष में जो प्रवेश किया...और यों लिपटे पड़े अवि-अर्चना पर दृष्टि गई तो आसमान सिर पर टूट गिरा। सृष्टि स्थिर न रह सकी। भूँचाल आया और महाप्रलय का सृजन कर चल दिया। "ओह भगवान् यह क्या?" और विजया लड़खड़ाती सी, गिरती पड़ती जब वापस लौटी, तो अनजाने ही तन स्थिर न रहने के कारण किंवाड़ों से ठोकर लगी......और अवि-अर्चना चौंक उठे। देखा अधमरी विजया कमरे से सब कुछ खुली आँखों से निरख. लौट रही है। और...अब काम का वह उन्माद कहाँ, जो स्थिर रहने का संबल दे दे? प्रतिशोध की वह भावना कहाँ, जो अपने किये पर गर्व से सीना फुला ले? रोष का वह रूप कहाँ, जो पत्नी को यों बिलखता देख अवहेलना से हँस ले? अब तो है केवल—श्वाँस की धुकनी चलाता-म्रियमाण अवि, और कमरे से अपनी अवस्था को सम्हाल सन्नी-

पात के कोप में भागती-अर्चना की जिन्दा लाश। दोनों अब शायद अपने किये पर लाख लाख आँसू बहायेंगे, रोयेंगे, फरियाद करेंगे...पर इस पाप का प्रायश्चित हो भी सकेगा ?

× × × ×

और रात की सघन कालिमा में ट्रेन अपनी पूरी रफ्तार में थी। हवा का सन् सन् शब्द और धूरी पर घूमते चक्कों की चरमराहट से अधिक और भी कोई शब्द ध्वनित होता था, तो वह अभागी अर्चना के अन्तरतम से निकला हुआ वेदना का वह-करुण क्रन्दन ही था, जो अपने किये पर आठ आठ आँसू बहा रहा था। अवि के साथ घटी उस अप्रत्याशित घटना ने आज उसकी जिन्दगी को झकझोर रक रख दिया था। कहाँ तो उसे ऐसा विश्वास जम रहा था कि अब फूटे भाग्य को लेकर भी वह विजया ऐसी लाड़ली बहन की संरक्षकता में जीने का कोई बहाना ढूँढ लेगी, और कहाँ पल भर में ही आसुरी वृत्ति ने सारे भविष्य को निमेष मात्र में धूल-धूसरित कर दिया।

विजया के घर का परित्याग करने में उसे असीम पीड़ा हुई थी। जिस समय अटैची लिये नीरव अंधकार में वह गृह-त्याग कर रही थी—मन के किसी कोने से स्वर ध्वनित हुआ था—'अभागी ! सोचती क्या है ? जल्दी न कर, जा और क्षमा-सिन्धु की उस साकार देवी को नत मस्तक हो, प्रणाम कर। वह तेरे सारे अपराधों को क्षमा कर तुझे गले लगा लेगी। विजया ने तुझे मां की ममता दी है री ! तेरे असंख्य अपराध भी

उसके क्षमा सिन्धु की थाह न पा सकेंगे।' और अर्चना आती बार एक बार विजया के कक्ष निकट गई भी थी, पर उस देवी के सन्मुख जाने में साहस ने संबल नहीं दिया और वह अपने पाप की गठरी लिये योंही, उन्माद में घबड़ा कर भाग आई थी।

तो अर्चना इधर लखनऊ लौट रही थी और उधर हतभागी विजया अपने कक्ष में औंधे माथे गिर घुल घुल कर गल रही थी। उसे स्पष्ट जान पड़ा कि जिस पतवार के सहारे जीवन की झांझर नैया चल रही थी, उस पतवार ने आज मँझधार में धोखा दिया। अतः वह अब जी कर क्या करेगी? क्यों न अपने पामर प्राण का अंत करदिया जाय? निष्ठुर अवि! विजया का मूल्याङ्कन तुम तभी कर सकोगे जब वह तुम्हारी पहुँच से परे चली जायगी।...यह छलना और भ्रान्ति की दुनियां ही छोड़ देगी...।' पर दूसरे ही क्षण, विजया के इस विचार का कोई विरोध भी करने लगा - 'तू यह क्या कर रही है? क्षमा का दूसरा नाम भी तो नारी है। पुरुष कभी तेरे इस सुविशाल सागर का किनारा पा सकेगा क्या? माना कि पति का यह गुरू अपराध है—अर्चना ने विश्वास का गला घोंटा है-तो क्या इतने से के लिये जीवन भर तीनों के जीवन में जहर घोलेगी? स्वप्नवत जान घटना को भूल नहीं सकती क्या? फिर अवि ने तो पतिता जान कर भी तुझे अपनाया था...तो क्या तू आज उसके एक अपराध पर अन्तर के कपाट बंद कर लेगी? ना...ऐसा न करना—' और विजया को यही विचार युक्ति-

संगत ऊँचा होगा, ऐसा अनुमान कर लेने को उसके मुख का भाव विवश करता है।

फिर बिचारे अवि का क्या कहना ? कुछ देर तो बिलकुल निस्तब्ध पड़ा, वह क्षणिक उन्माद के भयानक परिणाम का सिंहावलोकन करता रहा, फिर एक एक कर अपने अर्चना और विजया, तीनों के सम्बन्ध में बहुत कुछ सोच गया कि वस्तुतः इस परिस्थिति का उत्तरदायित्व किस पर ? कभी वह अर्चना को दोषी समझता, कभी स्वयं को पापी जान धिक्कारता और कभी अपनी माननी विजया पर, अर्चना को यों अपना लेने पर झुँझलाता। पर वह किसी निष्कर्ष पर बहुत देर तक भी नहीं पहुँच सका।

आधी रात के लगभग अवि न जाने किस आशंका से, मन्थर गति से विजया के कक्ष में आया। उस समय ममता की साकार देवी, वेदना, अंतर-संघर्ष और राग विराग से अनवरत द्वन्द्व कर, न जाने कब निद्रा–निमग्न हो चुकी थी, सो अवि क्षणिक पत्नी के सौम्य मुखमंडल का अवलोकन कर, इस तरह वेदना विह्वल हो गया कि हृदय के हर पुट ने, उसे विजया से क्षमा मांगने की याचना की। पर वह था कि साहस के अभाव या 'मान' के वशीभूत झुक न सका। थोड़ी देर मूक खड़ा रह कर वह अर्चना के कमरे की ओर भी गया। पर वहाँ तो सब कुछ समाप्त था। अर्चना कभी की उस नगरी को छोड़ निकल गई थी। अवि को भारी धक्का लगा, पर बाहरी दुनियाँ

कुछ न जान पाई। उड़ती सी नजर धरण-कड़ियों-बिखरे वस्त्र-आभूषणों पर डाल, वह सिहर कर पुनः अपने कक्ष में लौट गया। अलसित सुबह तक निश्चेष्ट पलंग पर पड़ा वह जाने क्या सोचता रहा, जो सुबह के चार बजे तक सो न सका। इसके पश्चात, नींद ने इस भयानक अंतर-संघर्ष से उसे भी मुक्त किया होगा, ऐसा विश्वास कर लेना पड़ता है।

सुबह विजया जब उठी, तो नित्य के स्वभावानुसार पति की चरण-रज लेने, बरबस ही अवि के कक्ष में आई। रात की घटना का विस्मरण तो हो ही चुका था, सो स्वभावतः ही हाथ सुसुप्त अवि के चरणों का स्पर्श करने बढ़े। अचानक मानस में न जाने क्या धक्का लगा जो विजया के बढ़े हुएकर आप से आप रुक गये। शायद रात की घटना याद करके ही ग्लानि के वशीभूत, वह पति को स्पर्श न कर पाई। पर फिर कोई बोला—'विजया! अपने अन्तर को इतना सीमित रखेगी क्या? हृदय विशाल क्यों नहीं कर लेती जिस में अवि की बड़ी से बड़ी भूल भी तिरोहित होजाय? फिर देख तू कितनी सुखी रहती है। और पुनः तनिक स्वयं से संघर्ष कर मानों विजया जीत ही गई—जो पति के चरण-स्पर्श कर, उन्माद में या असीम आनन्द में विह्वल हो भागी कमरे से। बेचारे अवि को क्या मालूम?

विजया अनजाने ही जब अर्चना के कक्ष में आई, तो एकाएक हृदय न जाने क्यों काँप गया। कहाँ तो वह इस हेतु यहाँ

आई थी कि अगर अर्चना में क्षमा मांगने का साहस नहीं तो वह स्वयं ही जाकर उस नादान बच्ची को क्षमा कर, सारी बिगड़ी परिस्थिति को सुधार लेगी...और कहाँ, यहाँ आने पर उसे अपनी लाड़ली बहन ही अनुपस्थित मिली। पल भर में विजया का मस्तिष्क यह सोचे बिना न रह सका कि कोई असंभावित घटना अवश्य घट गई। सो भयानक भविष्य की कल्पना से सिहर कर वह अवि के कक्ष में आई और चिंघाड़ कर रोती अवि की देह पर लुढ़क पड़ी—"अवि रे! अर्ची कहाँ चली गई?" और चौंक कर अवि जो उठा तो सारी परिस्थिति का स्मरण कर बोला—"वह रात ही कहीं चली गई...परेशान होने की जरूरत नहीं...अब उसकी आवश्यकता भी क्या थी,?" और उसने पुनः करवट बदल सोने का उपक्रम किया। विजया को असीम क्रोध हुआ—'अरे यह तो उस छली भँवरे के स्वभाव को व्यक्त कर रहा है, जो कली का रस बड़ी मनुहार करके लूटता है, पर कार्य सिद्धि के बाद उसे गर्दिश में मिलने को अकेला छोड़ देता है। मन तो हुआ कि ऐसे भीरू पति को वह बहुत कुछ भला बुरा कह दे। पर मन में जब किसी ने यह कहा कि पगली! वह रात की घटना से सचेत हो कर ही, शायद अर्चना के प्रति विराग की भावना-कर्त्तव्य के वशीभूत हो कर ही व्यक्त कर रहा है-तो वह स्थिर भी हो सकी। लेकिन मन में पूर्ण शान्ति नहीं व्यापी।

कुछ देर इधर उधर सोच—अवि के यों निश्चेष्ट सोने पर

झुँझला कर अथवा मानसिक घात-प्रतिघात से अघाकर विजया विक्षिप्त सी सूने मन से अपने कक्ष में लौट गई। रात के बिछे पलंग पर लुढ़क कर उसने पुनः सोने का उपक्रम किया, पर नींद इतनी मेहरबान नहीं जान पड़ी, जो उसे मानसिक चिन्ता से इतना शीघ्र मुक्त कर दे। वह बहुत दिन चढ़े तक भी बिछौने पर करवट ही बदलती रही थी, यह अच्छी तरह ज्ञात है।

× × × ×

इधर लखनऊ पहुँच कर अर्चना बड़े बाबू की छाती से लग कर विलख विलख कर रोई। अपनी 'बहू रानी' के मुख पर वेदना के शत् शत् बादल देख हरदेव बाबू भी अधीर हुए बिना नहीं रहे। अर्चना के माथे पर अब भी मोटर-दुर्घटना के निशान थे। चेहरा वर्षों के रोगी का सा मुरझाया और कान्तिहीन था। बड़े बाबू ने सहज ही अनुमान लगालिया था कि बिटिया वस्तुतः किसी भयानक दुर्घटना का शिकार हुई है सो विलाप करते हुए रुँधे गले से वो बोले—"यह क्या हालत बना कर लौटी हो बिटिया! अवि नहीं मिला न? कहाँ थी तू इतने दिन तक? क्यों उस निर्मोही के पीछे जान देती है?"

मेरा सब कुछ लुट गया बाबू! कुछ भी नहीं बचा...।" और अर्चना अधिक ही रोने लगी। बड़े बाबू ने बड़ी कोशिश की कि वह चुप होजाय, पर यह सहज ही नहीं हो पाया।

योंही विह्वल अर्चना को लेकर हरदेव बाबू कमरे में आये।

दुलार कर जब तनिक शान्त किया तो वह संयत स्वर में बड़े बाबू की ओर देख कर बोली—"तेरा बेटा कलकत्ते में ही है बाबू...उसने ब्याह भी कर लिया..."

"क्या कह रही है?"—विस्मय से चौंक कर हरदेव बाबू बोले। अर्चना ने उसी गुरू-गम्भीर स्वर में कहा—"हाँ बाबू! बहू भी तुम्हें साक्षात जगद्धात्री मिली है...वह स्वर्ग की देवी है। स्वयं जगदम्बा का स्वरूप..."

हरदेव बाबू तो मानो पाषाण-प्रतिमा बन गये। सारे अरमानों पर एक साथ ही वज्राघात होगया। हृदय में हथौड़े चलने लगे। कराह कर संदेहमयी भंगिमा बना वे केवल इतना ही बोले—"तू उसके साथ रही है न बेटी!...कहीं वह शरणार्थी बालिका तो नहीं...।" बाबू को शक हुआ कि कहीं यह वही तो लड़की नहीं जिस पर कभी उन्होंने बलात्कार किया था और अवि जिसे बाद में ले गया था।...

"हाँ बाबू! दंगे में अपना सब कुछ लुटा चुकी वह" अर्चना बोली।

"चुप रहो—" बूढ़ा न जाने किस क्रोध में कड़का। अर्चना हतप्रभ रह गई। बड़े बाबू का तो सिर ही घूम गया। ऐसा तो उन्होंने कभी नहीं सोचा था कि उस पाप का बदला—अवि इतना भयानक लेगा। उफ! उस नागिन को उसने पत्नी रूप में स्वीकार किया? एक पतिता का इतना मान? आह रे भाग्य! और हरदेव बाबू को विषम आघात से अचानक मूर्छा सी

आगई। अर्चना बहुत घबरा गई। नौकर चाकर दौड़े। पल भर में ही यह असंभावित घटना घट गई।

बड़ी लगन और कोशिश के बाद ही बड़े बाबू को होश आया। आँखें फाड़ कर सब को देखते हुए बूढ़े ने अंतर के विचारों को चुपचाप ही दफन करने का बहुत प्रयास किया। पर ऐसा संभव भी हुआ, नियंता ही जाने। लेकिन इतना सभी ने जान लिया कि बूढ़ा किसी अप्रत्याशित घटना से अतीव पीड़ित हुआ है। अब कक्ष में केवल बूढ़े बाबू और अर्चना ही रह गये थे।

अचानक न जाने किस उन्माद से व्यग्र हो हरदेव बाबू चिल्लाये—"अच्छा बदला लिया रे नराधम ! एक ऐसी कमीनी से शादी की जो वेश्या से भी गई गुजरी है। जिसका सतीत्व हजारों ने लूटा ..मैंने जिसे बरबाद किया...उसे अभागे अवि ! तूने पत्नी बनाया ..मेरी बहूरानी बनाया।"

"बाबू !!!" विस्मय की चरम सीमा पर पहुँच अर्चना चिल्लाई। हरदेव बाबू ने बौराई अवस्था में आज वो रहस्य खोला था जिसकी कल्पना मात्र से अभागी अर्चना का अंग-प्रत्यंग सिहर उठा। हैरत में पड़ी वह केवल इतना ही बोली—"उस देवी को तूने अपवित्र किया ? बाबू...तुम मनुष्य नहीं... राक्षस हो.. शैतान हो...नीच हो..." और वह भी पागल बनी भागी, लोथ बने पिता मोती बाबू की ओर। तूफान की तरह लपक कर, उनकी छाती में सिर डुबा कोहराम कर रो पड़ी।

आँसूओं के पनाले बह चले। रुदन सुन बूढ़ा मुनीम आया तो देखा - लाड़ली बेटी म्रियमाण पिता की छाती में सिर डुबा अरण्य-रोदन कर रही है। बूढ़े बाप की आँखें भी गीली हैं। शायद बेटी की वेदना का परिचय भी मिल चुका था। मुनीम ने सजल नयनों से अर्चना को उठाने का हजार प्रयत्न किया, पर वह न जाने क्यों अपने दुलारे बाप का आसरा छोड़ना नहीं चाहती थी। अचानक मोती बाबू को हिचकी सी आई। अर्चना चौंकी और जबतक सम्हल कर बाप के मुख का अवलोकन करे...एक झटके में ही बूढ़े की गर्दन निष्प्राण हो लटक गई। श्वाँस का पंछी पिंजड़ा तोड़ उड़ गया...मोती बाबू मर गये...

"बापू !!!"

चौंक कर अर्चना, छाती फाड़कर और भी अधिक वेग से चिल्लाती बाप की मृतदेह से लिपट गई। हड़बड़ा कर मुनीम भी दौड़े हरदेव बाबू की ओर—"बड़े बाबू ! उठो...मोती बाबू को क्या हो गया !" हैं...क्या हो गया...क्या हो गया मेरे मित्र को ?" सन्नीपात में ही सुध-बुध भूल बूढ़ा लपका मोती बाबू के कक्ष की ओर...।

और यहाँ...सब कुछ समाप्त...

"बेटी ???"

बूढ़ा हरदेव भी कोहराम कर लुढ़क गया अर्चना की देह पर ही। सारी हवेली में रोना-कूकना मच गया। शायद

बाप, अपनी बेटी का अंतिम बार मुँह देखने के लिये ही जी रहा था, सो अभी साध पूरी होते ही अनजान देश को, जीर्ण चोला तज चल दिया !

कौन जाने बूढ़ा अपनी मौत मरा या बेटी की विषम वेदना के आभास से उसका 'हार्ट फेल' हो गया। उफ ! आह री अभागी अर्चना।

१२

कहते हैं समय का चक्का पल भर भी रुकता नहीं। अगर किसी दिन इसकी गति अवरुद्ध हो पाती, तो देखते कि सृष्टि का कलेवर क्यों और कैसे रह पाता? यह समय ही तो है जो मनुष्य के बड़े से बड़े घाव को आप ही भर देता है। प्रिय का वियोग, प्यारे की मौत और दुलारे का सदा के लिये बिछोह, चाहे किसी के दिल में कितना भी बड़ा आघात क्यों न पहुँचाए, मरहम पट्टी कब और कैसे हो जाती है, यह कोई क्या जाने?

विजया अपने पति और अर्चना के यों विश्वासघात करने पर भी अभी तक जी रही थी। मरने की इच्छा तो कई बार हुई, पर यह बात उसके वश में थोड़ी ही थी जो मनचीती कर ले। जीने का संबल उसे कैसे मिला, यह नियंता ही जाने, पर वह अब भी जीती थी अवश्य। अवि भी सुबह-शाम विजया

का परोसा हुआ भोजन कर लेता, पर न तो अब पत्नी मनुहार कर उसे खिलाती और न अवि ही उस दिन के बाद विजया से कभी बोला। चुपचाप भोजन कर या तो वह दफ्तर चल देता, या फिर अपने कक्ष में प्रवेश कर सोने का उपक्रम कर लेता। दो-एक बार राजू ने दोनों का भाव लक्ष्य कर संधि कराने का प्रयास भी किया पर वह सफल नहीं हुआ।

यद्यपि दोनों यह स्पष्ट अनुभव कर रहे थे कि यों जीवन का निभना मुश्किल है, पर जब चुप रहने के सिवाय अन्य कोई चारा नजर नहीं आता, तो वे क्या करते?

विजया दो एक-बार कोशिश करने का साहस भी करती हुई प्रतीत हुई, पर न जाने क्यों अविनाश से कुछ पूछने के लिये, मन ठीक समय पर मुकर जाता। इसका कारण या तो विजया का वह डर था जो पुनः अशान्त वातावरण का सृजन करना नहीं चाहता था, या फिर स्वाभिमानिनी नारी का वह 'अहम्', जो अपने को पूर्ण निर्दोष मान, अपराधी से ही झुकने की याचना करता था। एक कारण और भी हो सकता था कि दोनों के अंतर में झिझक की शायद कोई दीवार खड़ी हो गई जो उन्हें सीमा से बाहर आ सम्मिलन की स्वीकृति नहीं देती थी।

विजया इस बात को अच्छी तरह जानती थी कि अवि को अपने साधारण दैनिक कार्यों में भी उसकी सहायता की आवश्यकता होती है, पर अवि तो अब स्वयं ही सब कार्य कर लेता,

फिर वह अभागी क्या करे ? भोजन करते समय वह पति के सामने बैठती अवश्य थी, पर अवि मौन बना, जैसे तैसे एकबार परोसा हुआ ही खाकर उठ जाता। लाख लाख बिच्छुओं के दंशन की पीड़ा विजया को होती, पर वह क्या कर सकती थी ? अवि भी शान्त था सो बात तो नहीं। उसे भी न तो भोजन रुचता था न यह गूंगापन ही। पर उपाय तो उसको भी कोई न सूझता था।

जीवन के प्रति यों अवि के इस विराग से विजया को बहुत दुख होता था। उसका जी अब इस विडम्बना का अंत करने को बहुत लालायित रहने लगा। दिन में कई बार उसका मन होता कि वह अपना अहम् त्याग अवि को मना ले, पर न जाने क्यों उसके सामने आते ही वह इतनी शिथिल हो जाती कि मुँह खोल बात करने की भी हिम्मत न रहती। यह तो वह जरूर अनुभव कर रही थी कि अगर यों ही वह अपना मान लिये बैठी रही, तो दोनों के बीच की दूरी शनैः शनैः बढ़ती ही जायगी, पर बहुत विचारने पर भी उसे अपनी तो कोई भूल नजर नहीं आती थी। अवि ने उसके साथ विश्वासघात किया था, अर्चना ने उसे भुलावा देकर छला था, लेकिन फिर भी न जाने क्यों, विजया के अंतर में दोनों ही प्राणियों के लिये घृणा उत्पन्न न हो सकी थी। हाँ, यह अवश्य सत्य था कि शायद उसका अंतर सदा अवि में अपने को समर्पित करते समय विरोधाभास व्यक्त करेगा और अवि एवं अर्चना तो कभी

उसके सामने अपनी ईमानदारी का दम ही नहीं भर सकेंगे, फिर भी इन दोनों को त्याग करने का संकल्प अभीतक बिजया ने नहीं किया था। जिस समय भी उसने अपने भावी पर गम्भीरता से विचार किया, उसकी आत्मा से यही आवाज आई—'पगली ! जल्दी न करना, मनुष्य भूल का ही परियाय-वाची शब्द है, जो उसके जीवन के साथ सदा लगा रहता है" और इस आवाज के बल पर ही विजया ने नियंता की मर्जी पर अपने को छोड़ना श्रेयस्कर समझा था।

आज दोपहर से ही विजया कुछ अधिक उदास थी। उसने अन्तर-द्वन्द्व से पीड़ित हो आज यह निर्णय-सा कर लिया था कि अब और अधिक वह इस परिस्थिति में नहीं जी सकेगी। शायद उसका दम इतना घुट रहा था कि अवि के आने पर वह बरबस ही ढुलक पड़ने को व्याकुल हो जायगी। न तो किसी कार्य में मन लगा और न वह तनिक देर के लिये भी शान्त हो सकी। घर के नौकर-चाकर और यहाँ तक कि उसका छोटा भाई राजू भी इस बात को लेकर कई बार प्रश्न कर चुके थे कि वह अवि बाबू से क्यों नहीं बोलती। पर उन सब को उसने झुँझलाकर सदा यही जबाब दिया कि उन्हें क्या पड़ी है जो तंग करने आये हैं। और वे बेचारें निराश ही लौट जाते। लेकिन अभी विजया का मन ऐसा जरूर हो रहा था कि कोई आकर उनकी संधि करा दे या दोनों के बीच में फिर वही, रूठने और मनाने वाली अवस्था उत्पन्न कर दे, पर कौन था जो

इस कार्य में उसका सहायक बनता ?

अंत में कोई भी साधन न देख उसने अंतिम निर्णय किया कि आज शाम के भोजन पर वह अवि से जरूर बोलेगी। अगर वहाँ असफल रही तो फिर सोते समय पलंग पर जा इतना रोयेगी कि जब तक अवि स्वयं उसे गोद में भर हजारों मनौतियाँ नहीं करेगा, वह रुकेगी ही नहीं। अतः ऐसा इरादा कर वह और भी व्यग्रता से अवि का इन्तजार करने लगी।

संध्या के झुटपुटे में अवि जब लौटा तो नित्यकर्म के बाद रसोई घर की शरण लेने आया। विजया ने थाली परोस जब उसके सामने की तो एक नजर अवि ने पत्नी पर डाली। वस्तुतः विजया ने स्पष्ट अनुभव किया कि वे कातर निगाहें ठीक बहेलिये के बाण से घायल दम तोड़ते उस मृगा की सी है जो अपने प्यार का लुटता हुआ संसार याचना भरी नजरों से देखता है। पर बेबसी उसे मायूस और बेजार कर देती है। यद्यपि अवि खाने लगा, पर वस्तुतः उसकी अवस्था अब स्वाभाविक नहीं जान पड़ी। न जाने क्यों मुख का ग्रास पेट में उतरता ही नहीं था। दो-चार बार पानी भी पिया और तनिक सा ही खाकर अब वह हाथ भी धोने लगा। विजया अब अपने को अधिक जब्त न रख सकी। उसने साहस कर कहा—"इतना जुल्म करना किस तरह सीख गये हो . उम्र भर निभ सकेगी क्या ?"

अवि ने लम्बी श्वाँस छोड़ते हुए कहा—"मजबूरियों में भी

इन्सान जी लेता है... और बेबस को समय जुल्म करना नहीं सहना सिखा देता है।" इतना कहकर अवि उठ खड़ा हुआ। बिजया ने रोकते हुए कहा—

पूरा भोजन किये बिना जा न सकोगे...फिर इसका भी निर्णय करना है कि जुल्म किसने किस पर किया है...?"

"रुकने की आज्ञा देने से पूर्व तुम्हें विश्वास हो गया क्या कि उसका पालन होगा ही ? फिर मैंने तो तुम्हें आलोचना करने के लिये निमंत्रित नहीं किया।" कहकर अवि पुनः बैठ गया।

विजया ने सीने पर प्रहार का असर अनुभव कर दबी जुबान से ही कहा—"आज्ञा तो नहीं दी थी, अनुरोध अवश्य किया था और इस विश्वास के साथ ही कि उसको टालने का साहस तुममें नहीं है। फिर जिसे तुम आलोचना की संज्ञा देते तो, उसके लिये भी तुम्हारे निमंत्रण की आवश्यकता नहीं, जैसे आजतक कहती आई हूँ अब भी कहूँगी ! फिर कैफियत पूछने की मनाही तुमने कभी की है क्या ?"

अवि ने अधीर होते हुए कहा—"यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अब भी किसी रूप में तुम्हें मुझ पर विश्वास है। यद्यपि अंतर इस कथन को न जाने क्यों नहीं सत्य मानता, पर मैं इसे जैसा का तैसा स्वीकार किये लेता हूँ।...लेकिन कैफियत पूछने वाली बात जँची नहीं। शायद सत्य भी नहीं, इसे तुम भी मानोगी।" सुनकर विजया हताश सी होती बोली—'क्यों ? क्या इसका अधिकार मुझे नहीं रहा...तो फिर आज यह भी

स्पष्ट कह दो कि क्या क्या न करने की मनाही है ? मैं अपने समस्त अधिकारों को छिनते देख सकती हूँ, पर कोई तुम्हें मुझसे छीने यह मुझे सहन न होगा—"

"तो अभी तक तुम खामोश क्यों थी ? कभी अर्चना के साहस का तुमने बिरोध क्यों नहीं किया ? क्या तुम पति कहे जाने वाले पुरुष से कैफ़ियत नहीं पूछ सकती थी कि उसने तुम्हारे बिश्वास की हत्या क्यों की ? इस तरह असहयोग का आन्दोलन छेड़ तुमने बदला लेने की योजना जरूर अच्छी बनाई, पर चतुर मनुष्य तो अपने शत्रु को इसीलिये जिन्दा रखता है कि उस से जी भर बदला लिया जा सके। फिर इतनी समझदार होकर तुमने मुझे मारने का क्यों प्रयास किया ?" अवि रोष में बोल गया। मन का गुबार एकबारगी ही प्रकट हो गया। सुनकर बिजया अधमरी हो गई। उसी पर लाँछन लगाया गया कि उस ने अपने पति को मारने की योजना बनाई। वह क्रुद्ध भी हुई और वेदना-विदग्ध भी। आँखों में आँसू छलक पड़े। रुँधे गले से कहा—"इन तानों में तुम्हें क्या मजा मिलता है ? फूटे भाग्य में तो यों ही बहुत दुख है, फिर तुम्हें क्या दोष दूँ......? शायद तुम्हारी यह शिकायत है कि मैंने तुम से अर्चना के साथ हुई घटना की कैफियत क्यों न तलब की ? पर मेरी जिस समझदारी का तुम दम भरते हो, क्या उसीने मुझे यों नहीं समझा दिया कि इन्सान परिस्थितियों का गुलाम है। भूल करना उसका स्वभाव है, जिससे तुम और अर्चना भी नहीं बच सके।

फिर मुझे तुम्हारे किसी एक दिन शराब पी लेने से तो भय नहीं, डर तो उसकी आदत डालने से है, जो तुम से सम्भव नहीं। तो फिर मैं क्या पूछती ? विजया तो स्वयं ही तुम्हें मिलने से पूर्व पतिता थी। जब तुमने परिणय के समय अंतर की विशालता का परिचय दिया तो मैं तुम्हारी ही पत्नी होकर क्या तनिक भी तुम्हारा गुण न अपना सकूँगी ? अर्चना को मैंने कभी का क्षमा कर दिया। हाँ, तुम्हें बक्शने से पहले मन ने चाहा था कि या तो तुम इतनी ताड़ना दो कि उसके भय से क्षमा कर दूँ।...या फिर मेरी इतनी मनुहार-मनौतियाँ हों कि बर्फ सी पिघल कर तुममें घुल-मिल जाऊँ। लेकिन कितने जिद्दी तुम हो।...झुकने का जब जब समय आया मुझे ही नमना पड़ा...तुम हिमालय से अटल ही रहे...।"

सुनकर अवि आत्म-विभोर हो गया। पल भर में जैसे उस के सारे पाप धुल गये। विजया साक्षात जगद्धात्री माँ सी मालूम हुई। तनिक देर तो वह यह अवस्था ही भूल गया कि पत्नी कही जाने वाली नारी के सम्मुख वह अवस्थित है। मन के समस्त विकार निकाल वह सिसकती हुई विजया के पाँवों में लोट कहने लगा—

"ले मानिनी नारी ! आज तुझे नहीं झुकना पड़ेगा, मैं ही अपने समस्त अपराधों के लिये तुम्हारी क्षमा का दान माँग लेता हूँ। अब कोई दुराव नहीं—कोई शिकायत नहीं...।" विजया को तो संसार का ऐश्वर्य ही मिल गया। अवि की गोद में

लुढ़कती बोली—"अब और क्यों सता रहे हो? पापन तो हूँ ही...।......और पाप चढ़ाना अच्छा है क्या? तुम देवता हो न जिसे पैरों में नहीं, मन के मंदिर में बैठा कर पूजा जाता है। अब खालो, कई दिन से भूखे ही उठते थे, यह मैं जानती हूँ। शायद मुझे भी व्रत तोड़ना है। तीन दिन से उपवास ही तो हो रहा था।"

"तो फिर देर क्यों करती हो विजया।" अवि बोला—आ मेरी ही थाली में तुम्हें प्रसाद पाना है। मैं तेरा भगवान हूँ न री! ..तेरी सारी मलिनता धो डालूँगा।"

और विजया आँसू पोंछ सचमुच में अवि की थाली में और भी भोजन परोस कर, उस के साथ ही खाने को बैठ गई। आज यह पहला ही अवसर था, जब उसने अपनी उस झूठी लज्जा का परित्याग किया था, जो उसे पति के सन्मुख खाने तक का कभी संबल न दे सकी। और अब तो वस्तुतः अवि और विजया निर्मल-निर्विकार से अंतर की मानो सारी खाई पाट भोजन कर रहे थे।

लज्जा के अवगुंठन में सिकुड़ी सिमटी विजया से अवि ने पूछा—एक बात कहूँ विजया...! इतना दुख सहने से पहले भी तुम चाहती तो संधि हो सकती थी। मैंने लाख बार चाहा कि तुम मुँह से कुछ बोलो, पर तुम भी जिद्दी कम नहीं। फिर मैं तो साहस ही नहीं कर पा रहा था। वस्तुतः इसका अनुमान ही नहीं लग रहा था कि तुम्हारे अंतर में क्रोध की कितनी मात्रा है।...

मेरा कलंक कभी धुल भी सकेगा, इस पर सहसा ही विश्वास नहीं होता था।" विजया ने सुनकर एक बार पुनः भरी आँखों से अवि की ओर देख कर कहा—

"तुमसे कुछ छिपाऊँगी नहीं। सच तो यह है कि मुझे अपने से ही बहुत लड़ना पड़ा है। मन ने बार बार कहा "पगली ! जीवन पर्यन्त इस घटना को भूलना नहीं।" अर्चना से सौतिया-डाह उत्पन्न हुए बिना रहा नहीं। पर अवि रे ! मन आदमी को सदा गुमराह ही किया करता है। हितैषी तो आत्मा है न ! उसने आज मुझे समझा दिया—"नादान औरत ! काम को शङ्कर और नारद ऐसे योगी भी नहीं जीत सके। फिर शकुन्तला की जन्म कहानी तुम भी नहीं भूले होगे। मेनका की एक चितवन पर ब्रह्मयोगी विश्वामित्र को भी जब लुटना पड़ा, तो बेचारे अवि-अर्चना की क्या बिसात ?" इसलिये होनी का इसे वरदान मान कर ही मैंने सब कुछ नियंता की मर्जी पर छोड़ दिया। वैसे मन की ऊहापोह में आराम कहाँ ? दुख ही दुख हैं। कबतक पल भर के दुराव को जीवन भर का अश्रुमय इतिहास बनाती ? क्या सबकुछ खोने से, यह अच्छा नहीं कि जो भी बचा है उसे ही सँजो कर इस तरह सुरक्षित रखा जाय कि फिर कोई उसमें से तो न छीन सके। जो बचा है वही मुझ अभागी के लिये बहुत है।"

विजया की आँखों में आँसू इस बार भी छलक पड़े थे। अवि को उसके अंतर की पूर्ण थाह तो नहीं मिली; पर वह

इतना जरूर जान गया कि विजया ने उसे पुनः अपना लिया। अतः आत्म-विभोर होता सा वह बोला—

"विज्जी, आज मेरा आपा, मुझे बड़ा ही न आन पड़ता है।...न जाने कबतक मेरे असंख्य गुरु अपराधों को क्षमा कर तुम मुझे दबाती रहोगी। वस्तुतः तो मेरी मांग यह थी कि मुझे इस बार इतनी घृणा और अवहेलना तुम्हारी ओर से मिलती कि या तो मैं गलकर धूल में मिल जाता......या फिर समस्त विकारों को हरा विशुद्ध रूप में तुम से आ मिलता। पर तुमने तो यह अवसर भी नहीं दिया।...इतनी क्षमा किसी देवनारी में भी सम्भव है क्या...?

"ढीठ कही के! झूठ बोलने की तुम्हें आदत लग गई है? मन तो तुम्हारा यह चाह रहा था कि मैं तुम्हारी खुशामद करूँ, तब तुम मानो।...पुरुष हो न! अपना अपराध नहीं समझोगे। सदा यही याचना करोगे कि ताड़ना भर्त्सना देने पर भी नारी नित्य तुम्हें बदले में सम्मान और प्यार ही देती रहे। फिर मैं कैसे अपवाद बनती...?...समर्पण हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है रे! उसी का उपयोग तो मैंने किया...।"

अवि मुग्ध होता सा बोला—"तभी तो अय नारी! तू पुरुष की पत्नी ही नहीं, उसकी जननी भी है।...जगद्धात्री तुम्हें कोटि कोटि प्रणाम।"

और जैसे ही अवि ने खाना छोड़ श्रद्धा सहित विजया को प्रणाम किया, उसने हास्य के लहजे में वरदान दिया—"अभागे

नर ! तू हजार अपराध कर... और हम उन सब के बदले में तुझे क्षमा कर दें।"

"अरे राम ! यह वरदान दे रही हो या अभिशाप ? फिर भी सादर ग्रहण कर लूँगा . क्योंकि इसी तरह तो मुझे मरने से बचा लेती हो। जीने में फिर रस मिल जाता है। तेरे इन गुलाबी अधरों की शराब...अमृत से कम नहीं .."

और झपट कर अवि ने विजया को बाहों में भर चूम लिया। वह कराह सी उठी—"छोड़ न बेशर्म ! कोई देखेगा तो क्या कहेगा..."

"कुछ भी कोई कहे...हाँ यह तो कहो—हमारा अंश कब तक धरा पर उद्भूत होगा ?"

"क्यों, किसलिये पूछ रहे हो ? कहीं इसी लालच में तो संधि नहीं की ?"

विजया ने चुटकी ली। अवि शरीर बना बोला—"अगर ऐसा भी समझो तो असंगत नहीं। स्वार्थ का पुतला मनुष्य, मौत को भी स्वार्थ वश ही अपनाता है। विश्वास करो तो कह दूँ विजया ! बच्चे के लोभ में ही तेरी मनौतियाँ कर ली...वरना क्या पड़ी थी ?" इतना कहकर अवि शैतानियत की मुद्रा में विजया की ओर देखने लगा। वह छलक कर उसकी गोद में समाती बोली—"तुम कितना भी चिढ़ाओ अब मैं झगड़ने वाली नहीं...।"

सुनकर अवि खिलखिला कर हँस पड़ा।

× × × ×

फिर यों ही पुनः जीवन की धारा स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होने लगी। लेकिन शायद् विधना को यह् स्वीकार नहीं था। तभी तो आज दोपहर को दफ़्तर में कार्यरत अवि को मुनीमजी का तार मिला। पढ़कर दिल बैठ गया। काका ने अर्चना के पिता की मृत्यु का सम्वाद दे, अनुरोध किया था कि इस विषमकाल में हतुभागी अर्चना को धीरज बँधाने वह लखनऊ चला जाय।

तार पढ़कर अवि अत्यन्त विक्षिप्त हो गया। मानस में जान पड़ा कि जैसे अभागी अर्चना की झाँझर जीवन-नैया, तूफानों के बीच, विनाश के समुद्र में समा रही है। मन तो हुआ कि इस नाजुक समय में—बरबस ही अर्चना को गोद में छुपा, दुनियाँ के सारे दुख दर्द स्वयं झेल ले। संसार की इस भरी महफिल में, सभी तो अपने कहकहों में डूबे हैं...बस वही अभागी, चुपचाप, किसी कोने में शमा सी जल रही है—परित्यक्त, उपेक्षित। और अवि अत्यन्त अधीर हो अर्चना के पास दौड़ पड़ने को व्याकुल हो गया। पर दूसरे ही क्षण, मनमें किसी ने विरोध किया—क्या कर रहा है रे यह? फिर पत्नी को छलेगा क्या? और अवि झुँझलाकर बड़बड़ाया—चुप रहो...मुझे पथभ्रमित न करो। अभागी अर्चना के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करना पाप है क्या? फिर मैंने तो उसका सब कुछ लूट लिया, क्या रहा उस अभागी के पास,...जिस पर

वह कभी गर्व भी कर सके ? उफ ! बचपन से यौवन तक की हसरतें उस हतभागी ने मुझ पर परवान चढ़ाई। फिर रहा-सहा कौमार्य भी जो अछूता था, अभागे अवि ! उसको भी तूने शायद दूषित कर दिया। अब कौन उसे अपनावेगा ? और कैसे वह किसी दूसरे पुरुष को छल सकेगी ? उसकी अवस्था तो विजया से भी हीन हो गई। वह तो केवल तन से दूषित हुई थी, मन तो पवित्र था, पर अभागी अर्चना का तो तन और मन दोनों तुमने भ्रष्ट कर दिया। कहीं का भी न रखा उस बदनसीब को।

अवि अर्चना की अवस्था का स्मरण कर इतना बौखला गया कि सहसा ही सामने की फाइलों को पटक अभी ही लखनऊ जाने को उठ पड़ा। उसे विचारों में यों खोये रहने से यह ध्यान नहीं रहा कि बगल में छोटी तिपाई पर पिउन दोपहर का नाश्ता-चाय रख गया है। हड़बड़ी में तिपाई अवि से टकराई और तश्तरी-प्याले छलक कर चूर चूर हो गये। चौंक कर अवि जो खड़ा हुआ तो मस्तिष्क में एक झटका सा लगा और विचार उत्पन्न हुए—कहाँ जा रहा है ? क्या विजया तुझे जाने की इजाजत देगी ? भला कोई कैसे अपने देवता को जान करके खोना पसन्द करेगा। अभागे ! वह जानती है... तू अर्चना के बिना जिन्दा नहीं रह सकता... तू उसे देखे बिना चैन नहीं पा सकता और तू उसी के लिये जा रहा है... अपनी वासना को रस पिलाने जो विजया को कतई स्वीकार नहीं।

फिर क्यों हड़बड़ा रहा है ? वह तुझे हर्गिज नहीं जाने देगी...
और अगर तू जबरन गया तो फिर इस मानिनी विजया की
सूरत देखने को जीवन भर तरसता रहेगा। सोचकर कदम
उठा...वरना बहुत पछताना पड़ेगा...।

और इन विचारों के आते ही अवि फिर हताश सा अपनी
कुर्सी पर धम् से गिर पड़ा। मस्तिष्क का मंथन फिर प्रारम्भ
हुआ। अंतर-द्वन्द्व में मानस पूरा मथा गया। अंत में इसी
निर्णय के साथ अवि ने घर की राह ली कि क्यों न विजया से
मुनीमजी की बीमारी का हवाला दे दिल्ली जाने की इजाजत ले
ली जाय। इस बात पर तो वह कभी आना-कानी नहीं करेगी।
कारण वह काका को पिता से ज्यादा प्यार करती है। इस
नाम पर वह उसे जरूर जाने देगी।

अत: अवि जब घर आया, विजया कोई छोटा मोजा बुन
रही थी। मुमकिन है राजू के लिये . या फिर हो सकता है
अपने होने वाले बच्चे ही के लिये। अवि ने क्षण भर यह
दृश्य देखा तो बर्फ सा पिघल गया। दिल में विचार उठे—
कितनी हसरतों से यह मासूम अपने आनेवाले सुनहले भविष्य
के ताने-बाने बुन रही है और तू है कि इसी सुख भरे घर को
जलाकर राख कर देना चाहता है। अभागे ? क्यों छल रहा
है इस भोली नारी को ? आखिर कौनसा अपराध किया है
जो तू इतनी कठोर सजा दे रहा है ? पल भर तो अवि का मन
हुआ कि वह यह भूल जाय कि अर्चना नाम की कोई नारी है

जिसे अवि जानता है, पर दूसरे ही क्षण अर्चना की उस दय-नीय तस्वीर ने, जो अवि की आँखों में घूम रही थी, उसे उलझने दिये—खुदगर्ज इन्सान! बरबादियों के शोलों में झोंक कर, दूर खड़ा अब तमाशा देख रहा है क्या?

मैं मौत के बाद भी तेरा पीछा करूँगी...वरना चला आ... जलना है तो गर्दिश की आग में एक साथ ही जलेंगे, कम से कम तुम्हारे संग जुदाई का दर्द तो नहीं रहेगा...आ चला आ..." और अवि इन कल्पनाओं में बौखला सा गया। विजया ने थोड़ी देर बाद नजर घुमाई तो देखा अवि भावशून्य सा कुछ खोया खोया मूक खड़ा है। वह तनिक घबराहट में ही बोली—

"कहीं झगड़ा करके आये हो क्या? यों लग रहा है जैसे दुनियाँ की तमाम उलझनें तुम्हारे ही सर पर आके गिर गईं... और तुम एक को भी सुलझा नहीं पाते...कुछ मेरी सहायता की जरूरत हो तो करूँ...यों मन तो अच्छा है न...कहीं बीमारी का बहाना किया तो मुझमें इतनी शक्ति नहीं जो रात दिन तुम्हारी सेवा करती रहूँ...मुझे तो तुमने ही रोगी बनाया है। विजया की बात सुन अवि मन में हजार ताकत बटोर उसके निकट पलंग पर बैठता बोला-'मैं तो अच्छा ही हूँ ..पर दिल्ली में मुनीम काका बीमार हैं...हालत अच्छी नहीं, तार आया है।"

सुनते ही विजया घबरा गई—"अरे राम...क्या हुआ है उन्हें? हजार बार तुमसे कहा—उन्हें यहाँ ले आओ... ...वो अकेले वहाँ कितने कष्ट उठाते होंगे...पर तुम सुनते ही नहीं...

अब मैं नहीं मानूँगी...तबीयत अच्छी रहती तो मैं भी चलती, अब तुम जाकर उन्हें ले ही आओ। अगर ज्यादा अवस्था खराब हो तो तार कर देना, मुझे अपनी जिन्दगी से ज्यादा उनकी जान प्यारी है...कहीं कुछ होगया तो दुख-सुख में किसकी गोद में मुँह छिपा कर रोऊँगी...अवि रे...मेरा जी घबरा रहा है...तुम आज ही चले जाओ" और विजया अवि के हाथ में फैले हुए तार को नहीं उसके मुख को जिज्ञासा से निहारने लगी। इधर अवि को तो मनचाही मुराद मिल ही गई थी। भला उसको इतना शीघ्र आसानी से अनुमति मिलने की कहाँ आशा थी? सो विजया से और भी अपनी सरलता प्रगट करते हुए कहा—"लेकिन तुम्हारी अवस्था भी तो ठीक नहीं विजया...? अभी उस दिन बेहोश होगई थी......तुम्हें अकेला छोड़ जाना उचित है क्या?"

"इतने स्वार्थी कब से होगये अवि? "विजया ने पूछा" अभी कल ही हमारे कलकत्ता आते समय काका, ढ़ाँढ़ाँ बच्चों की तरह रोये थे...मालूम पड़ता था उसके अपने बेटा बहू परदेश जा रहे हैं..और तुम हो कि उनकी बीमारी का हाल जान कर भी न जाने की अटकलबाजियाँ लगा रहे हो। आखिर एक आशा लेकर ही तो उन्होंने तार दिया है न? वरना साधारण अवस्था में वो हमें कब कष्ट देने वाले थे? अगर बिना देखे ही, भगवान न करे, उनको कुछ होगया तो हम से मिलने के लिये सदा उनकी आत्मा भटकती रहेगी...उन्हें स्वर्ग में भी चैन

नहीं मिलेगा। अवि ! मेरा खयाल छोड़ दो...मुझे कुछ न होगा...तुम आज ही चले जाओ...रात में दिल्ली मेल खुलता है न, देर करना उचित नहीं रे।"

विजया वेदना विदग्ध होगई। अवि ने लम्बी श्वाँस भरते हुए कहा—"तुम्हारे कहने से जा तो रहा हूँ...पर डरता हूँ कहीं ब्याज के फेर में मूल तो नहीं गवाँ बैठूँगा? अगर तुझे कुछ होगया तो विजया मैं अँधेरे में भटक भटक कर मर जाऊँगा। यों तो मुझे अपने से भी अधिक तुम पर विश्वास है। डरता हूँ तो केवल तेरी जिद से। कहीं शरीर भारी हो और तुम डॉक्टर ही न बुलाओ तो? नहीं, तुम पहले वादा करो कि आवश्यकता पड़ने पर डॉक्टर को बुला लोगी...।"

"हाँ रे हाँ, मुझ पर विश्वास करते हो तो छले न जाओगे। यों नारी का क्या भरोसा...? बदल भी सकती है?" विजया ने चुटकी ली। अवि गम्भीरता का सृजन करता हुआ बोला—"अगर ये ही शब्द हमारे होने वाले बच्चे ने कहे होते तो दुनियाँ स्थिर रह सकती क्या? जननी भी तो नारी ही होती है विजया।"

"तुम तो हर बात में बच्चे को ले आते हो -" विजया लजाती सी बोली—"मालूम होता है कोई अवतार हो रहा है।" और अधिक शर्म से वह और भी साड़ी के नीलिमांचल में दुबक गई। अवि विभोर होता सा बोला—"शर्मीली नारी! याद रख मेरा अंश किसी अवतार से कम नहीं होगा जिसके

स्पर्श मात्र से अपनी युग युग की मलिनता धुल जायगी।"

"बस अब चुप भी रहो—" और लजाती विजया उठकर चल दी। अवि ने सहज ही मनोवांच्छित फल मिल जाने से विजयोल्लास में अभिमान से गर्दन हिलाई। असत्य की नींव पर देखें उसके अरमानों की इमारत कैसी खड़ी होती है?

१३

पिता की मृत्यु के बाद अर्चना के जीवन में और भी जहर घुल गया। वे ही तो एक ऐसा केन्द्र-स्थल थे जिससे जीवन-डोर का सम्बन्ध जोड़े अभागी अर्चना परिक्रमा करती रहती थी। अब क्या रह गया था उसके जीवन में ? न जाने किस मनहूस घड़ी में उसका जन्म हुआ था, सो बचपन में ही माता का देहान्त, यौवन के प्रारम्भ में ही जीवन-साथी का बिछोह और उसके बाद ही ममता की छाँव में पाल पोसकर बड़ा करने वाले बापू का चिर-वियोग—इतना बुरा भाग लेकर वह कबतक जी सकेगी ? अवि के बिछोह ने ही जीवन-विपट को घुन की तरह खाना शुरू कर दिया था, अब पितृ-वियोग के झंझावात ने खड़ा रहने की शक्ति भी उससे छीन ली, तो अर्चना, कैसे न बीमार रहने लगती ?

यद्यपि उस दिन विजया का इतिहास बड़े बाबू से सुनकर उद्वेग में अर्चना ने हरदेव बाबू को बहुत भला-बुरा कहा था, पर आज केवल उन्हीं की एक साया अपने सिर पर देख, मानो वह सभी कुछ भूल गई। बड़े बाबू अब उसका दिल बहलाने के लिये बहुत प्रयास करते। जीवन की निःसारता, संसार की क्षण-भंगुरता और जीवन की महत्ता आदि न जाने क्या क्या ज्ञान धर्म की बातें कर वे यही प्रयत्न करते कि अर्चा बेटी अपने गम को भूली रहे। पर यह कहाँ हो पाता था?...

यों तो अर्चना अपने को जब्त रखना बहुत सीख गई थी, सहसा ही रो पड़ने की आदत और बात बात में अश्रु-पात करने वाला स्वभाव अब गम्भीरता का चोला पहन चुका था, फिर भी जब वह एकान्त में होती, अवि के लिये अब भी उसका दिल धड़का करता। उसकी इच्छा यह नहीं थी कि अविनाश पुनः उसके जीवन में आये, वरन वह यही अधिक सोचा करती थी कि उस हतभागे ने भी कितना दर्द जीवन में घोल लिया। आदर्शों के इतने विशाल हिमालय पर अभिलाषाओं-अरमानों की हत्या कर—स्वयं को अवस्थित करने वाला काम के वशीभूत क्यों कर हुआ? क्यों उसने अर्चना के सौन्दर्य में रुचि ले उस पार्वती सी पवित्र विजया का जीवन नरकमय कर दिया? आह अभागे प्राणी।

बड़े बाबू भी अब इस बात को जान गये थे कि बाप की तरह, बेटी भी असमय ही दम तोड़ेगी। अतः वे सतत् यही

प्रयत्न करते थे कि अर्चना विगत को भूल वर्त्तमान को सँवारे। काश, अवि इसके जीवन में लौट आता—यह इच्छा, जाने अनजाने उनका मन व्यक्त करता। पर आत्मा कहती अभागे! क्यों उनका बुरा मनाता है, जो तेरे जहन्नुम से दूर...कहीं दम भर सुख की श्वाँस ले रहे हैं? तू उनको विलग करने का यत्न न कर। फिर भी बूढ़ा इस पर सोचने से बाज न आता।

आज ढलते सूर्य की उदास रश्मियों में हरदेव बाबू अर्चना रानी से ज्ञान-विज्ञान की चर्चा कर रहे थे। बड़े बाबू की मंशा तो थी कि बेटी का दिल टटोल किसी अन्य योग्य पात्र के साथ लग्न कर देने की योजना का रूप आंका जाय, पर सहसा ही अवि को सदेह सामने देख बड़े बाबू, अर्चना, जमीन-आसमान, घर-आँगन सभी आश्चर्य से स्तम्भित से रह गये। हरदेव बाबू तो जीवन में मिलने की आशा छोड़ ही चुके थे। अर्चना भी बस इतनी इच्छा भर ही करती थी कि श्वाँस की डोर टूटते समय काश अवि उसकी मांग में सिन्दूर भर कह देता—ले सौभाग्यवती नारी! मोक्ष का द्वार तेरे लिये खोल दिया। तू भी विवाहिता होकर जा और प्रतीक्षा का प्रदीप लिये किसी अदृश्य लोक में चिर-सम्मिलन के हेतु इन्तजार कर। कभी लौटकर आऊँगा ही तुझे अपनाने। विजया से भी यों केवल क्षमा-याचना ही भर अर्चना चाहती थी।

इधर अवि भी, यद्यपि अपनी पत्नी विजया से, काका की बीमारी का हवाला दे—दिल्ली जाने को कह कर आया था, पर

वस्तुतः लखनऊ आने के लिये ही वह घर से चला था। काका का तार पाकर तो वह इतना ही सोच सका था कि इस विषम घड़ी में अर्चना को सहारा देना अनिवार्य है, क्योंकि बड़े बाबू के ऊपर या तो उसका ध्यान ही नहीं गया कि वो अर्चना के पास हैं या फिर उसे यह बात मालूम ही न थी। तभी तो इच्छा से लखनऊ आकर भी अभी वह अत्यधिक आश्चर्य की मुद्रा में मूक खड़ा था।

अर्चना और बड़े बाबू दोनों ने ही अवि को देखा और बड़े बाबू तो आनन्दातिरेक में खड़े भी हो गये, पर जान पड़ता था जैसे तीनों ही की जीभ को लकवा मार गया जो बोला कोई भी नहीं। अर्चना ने अवि को देखा और अवि ने अर्चना को। हरदेव बाबू ने बेटे को देखा और अवि ने अपने पालन हार को। बूढ़े के अन्तर में तो पितृ-वात्सल्य का सागर लहराता जान पड़ा, पर अवि की आकृति कठोर ही मालूम हुई।

अर्चना की भी अजीब अवस्था थी। पाषाण-प्रतिमा सी न जाने वह किस भाव तरंग में विभोर या विह्वल थी जो कुछ बोल ही न पा रही थी।

हरदेव बाबू के अधर फड़फड़ाये—कुछ अस्फुट सा स्वर भी फूटा। पर अवि जैसे मुकर गया हो, उसी लहजे में हाथ की अटैची जमीन पर रख वह पुनः निश्छल भाव से खड़ा हो गया।

अवि को अटल खड़ा देख हरदेव बाबू और अर्चना दोनों के अंतर में संघर्ष का घोर संग्राम होने लगा। पर ऊपर से

ऐसा ही जान पड़ता था कि जैसे तीनों प्राण-हीन प्रस्तर-प्रतिमा के रूप में खड़े हैं।

इस तरह तनिक देर तो ऐसी स्थिति हो गई कि जैसे महा-प्रलय का अभिनंदन करने के हेतु, प्रकृति मानो अपने समस्त कार्य स्थगित कर अंतिम बार क्षण भर के लिये संतोष की श्वाँस ले रही है। फिर बेटा नहीं, बाप को ही झुकना पड़ा—"स्वाभि-मानी बेटे! तू अपना मान लिये जी। ले, मैं ही अपराधी की तरह झुक जाता हूँ। देखूँ तेरा पुरुष कितना कठोर है? पिता न सही—जिसने तुझे बेटे की तरह पाला—तेरे हजार अपराध क्षमा किये, तू उसका एक भी कसूर भूल सकता है क्या?" सुनकर अवि तो पानी पानी हो गया। शब्दों ने तलवार से भी तीखा घाव किया।

बेटा स्थिर न रह सका। अनजाने ही, तिलमिला कर झुक पड़ा और बड़े बाबू के चरणों की मिट्टी ले, माथे से लगा ली। बूढ़ा विभोर हो गया। गद्गद् स्वर में बोला—"हजार वर्ष जी बेटा! तू क्या जाने रे कि आज मुझे कितनी खुशी हुई। अपने भगवान से बहुत बार कहा है—अगले जन्म में मुझे फिर मनुष्य बनाना। ठीक तेरी ही औलाद, ताकि मैं भी तुम्हें ठुकरा कर दिखा सकूँ कि बाप को बेटे के बिछुड़ने पर कितनी पीड़ा होती है..." और बड़े बाबू रोने लगे। डबडबाई आँखों से अवि की ओर हसरत से देखकर कहा—"अवि रे! काश मेरी यह इच्छा पूरी हो जाती तब तू मेरा दर्द जान पाता" और

हरदेव बाबू मुँह घुमा, सावन-भादो से बरसते हुए चल दिये। अर्चना भी स्थिर नहीं थी। बड़े बाबू के चले जाने पर, एक बार अवि का मुँह निहार, मूर्छना में ही झुक गई उसके पाँवों में। अभागा अवि, बिसूर बिसूर कर रोने लगा। अर्चना को बाहों में झुलाता वह इतना ही बोला—"अपने को सम्हालो अर्ची! क्यों सबका जीना हराम कर रही हो?"

"मेरा सब कुछ लुट गया रे..." और अर्ची अवि की छाती पर सिर रख फूट-फूट कर विलाप करने लगी।

दोनों इसी तरह कितनी ही देर आँसू बहाकर जब तनिक स्थिर हुए तो वृद्ध मुनीम ताऊ आ गये।

"हाथ मुँह धो लो बेटा! अब रोने से क्या लाभ?"

"हाँ ताऊ! अवि के लिये जलपान का प्रबन्ध कर दो—" और अर्चना अपने को संयत कर वहाँ से टल गई। थोड़ी देर बाद जब लौटकर आई और टेबुल पर दूध ढालने लगी तो अर्चना ने गुमसुम बैठे अवि से पूछा—"तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि बापू अब नहीं रहे। विजया ने यहाँ आने की स्वीकृति दे दी क्या?"

"दिल्ली से काका ने तार दिया था, फिर विजया मुझे कैसे रोकती?"—बाबू काशी से कब आये?"

"वो तो मेरे कलकत्ता जाने के पूर्व से ही यहाँ हैं। पक्षाघात से पीड़ित पिता को उन्हीं के आश्रय तो छोड़ गई थी। तुम्हारे यहाँ तो कोई अवसर नहीं आया न, जो इनकी चर्चा चलती...

तो क्या तुम इनके सामने नहीं आना चाहते थे। रोष की मलिनता को उनके आँसू नहीं धो सके क्या ?"

"ऐसी बात तो नहीं है—" अवि ने तनिक झेंपते हुए कहा—"फिर भी यहाँ आने से पूर्व, अगर इनका पता चलगया होता, तो शायद अंतर यहाँ आने के लिये विरोध करता" सुनकर अर्चना दंग रह गई। अवि के हृदय की कठोरता का परिचय पा, वह प्रसन्न नहीं हुई। अंतर में न जाने किस झुँझलाहट का भाव जागा, सो दूध का प्याला अवि की ओर सरकाती वह व्यंग में ही बोल पड़ी—"चाहो तो अब भी लौट सकते हो .. बड़े बाबू को पाँव न पकड़ने दूँगी।" अवि ने भेद भरी पलकें उठा अर्चना के मुख का भाव जानना चाहा। वह तनिक मुलायम होती हुई बोली—"मुझमें इतनी शक्ति कहाँ है जो तुम्हें रोक सकूँ। अपनी मर्जी से आये हो, और जाते समय आरजू-मिन्नतों के बाद भी रुकोगे नहीं, यह मैं जानती हूँ।"

सुनकर अविनाश तिलमिला गया। उसके अंतर ने अनुभव किया कि अर्चना भी कम स्वाभिमानिनी नहीं। यद्यपि दिल तो कहता है कि अवि का सामीप्य सदा मिलता रहे, पर उसका 'अहम्' अपनी कमजोरी व्यक्त करना नहीं चाहता। प्याले से दूध पी कर अवि ने अर्चना के अंतर की वेदना का आभास पा, कहा—"तेरा मुझ पर कोई अधिकार नहीं रहा क्या ? मन इस बात को स्वीकार करलेगा न कि अवि से कभी भी पहचान नहीं थी ?" सुनकर अर्चना तनिक रोष में ही बोली—"अधिकार

का अपहरण तो बहुत पहले ही हो चुका। किस बूते पर अपनी सत्ता का दम भरते हो ? मेरे ईमान से खेलने में तुम्हें आनन्द मिलता है न ?"

"ऐसी बात तो नहीं है।"

"तो फिर क्यों बार बार भूल करने के लिये उकसा रहे हो? जानते तो हो कि बचपन में लगी आदत से मजबूर हो, अनजान में जो भूल कर गई, उसका प्रायश्चित तो जन्म भर के आँसू नहीं कर सकेंगे। अंतर की बात मान कर अब कितना दर्द घोलूँगी ? अवि रे ! अर्चना को अधिक नहीं जीना। जो कुछ अपना है, उसी से संतोष कर लूँगी। अदेय की याचना नहीं करूँगी।" अवि ने अर्चना की वाणी में विराग की स्पष्ट झलक देखी। मन तो हुआ कि अरण्य-रोदन करे। भला यह अन्याय नहीं तो और क्या—जो इस मासूम कली को उसने खिलने से पहले ही, यों झकझोर के रख दिया। दबे स्वर में अवि बोला-"जीवन से जोग लेना चाहती हो क्या ? इस उम्र में यह संगत होगा न ?"

"भोग की शिक्षा तुमसे नहीं लेनी है ? संगत असंगत की विवेचना भी मुझ पर ही छोड़ दो। सच तो यह है कि स्वार्थ की कहानी में परमार्थ की चर्चा अच्छी नहीं जान पड़ती।" अविनाश के हाथ से दूध का प्याला छूट गया। नीचे जो गिरा तो झन्न् से शब्द हुआ और पात्र टुकड़े टुकड़े हो बिखर गया। अवि की स्थिति भयानक हो गई। अर्चना का संभाषण उसे

रुचा नहीं। वह झुँझला कर कुछ बोलता, कि इतने में हरदेव बाबू आ गये।

"अर्ची बेटा! इस बदगुमान से कहो—अपना घर न सही, रैन बसेरा समझ कर ही कुछ दिन ठहरने का उपक्रम कर ले वरना यों बाहर ही सामान पड़ा रहेगा क्या?" बड़े बाबू बोले। अर्चना ने जिज्ञासा से अवि की ओर देखा। कुढ़ा हुआ तो वह था ही। क्रोध में ही बोला—"रहने के लिये तो नहीं आया न? आज ही लौट जाऊँगा अर्ची!" सुनकर अर्चना भी उफन गई-"जाने वाले को क्यों कर रोकोगे बाबू! याचना भी तो पात्र देखकर ही करनी चाहिये न? रुकने का अनुरोध करने से क्या लाभ? बार बार अपमानित होना अच्छा नहीं। हाँ अवि! बुरा न मानो तो भोजन कर के भी जा सकते हो। वरना स्टेशन तक तो मैं भी हो आऊँगी। शिष्टाचार का यह तकाज़ा है न बाबू!" अर्चना की इस बेरुखी पर हरदेव बाबू चौंके। अवि जल-भुन कर खाक हो गया। वह काले नाग की तरह फुँफकार कर बोला—"भोजन स्टेशन पर भी मिलता है। फिर शिष्टाचार के लिये ही तुम्हें कष्ट नहीं दूँगा। अर्ची! जब बिना बुलाये आया हूँ तो लौटते समय इस अभ्यर्थना की स्मृति अकेला ही ढो लूँगा।" और अवि झटक कर उठ खड़ा हुआ। बड़े बाबू तो मृतप्राय से हो गये। अर्चना अब भी अविचल थी। हरदेव बाबू ने वेदना विदग्ध हो कहा—

"इतनी याचना करने पर भी नहीं रुकोगे?"

"हाँ अवि ! सुबह भी जा सकते हो। घर वैसा का वैसा ही मिलेगा।"

यह अर्चना शायद बड़े बाबू की अवस्था से पसीज कर ही बोली।

अवि अपने सामान के निकट आ, इतना ही कह सका—किसी के दिल पर भार बनकर रहना तो अच्छा नहीं न अर्ची? रुकने के इस अनुरोध को, मन आतिथ्य का साधारण चलन ही समझेगा।" अब तो बड़े बाबू एकदम से बिगड़ खड़े हुए—"तू उम्र भर सब काम अपनी ही मर्जी से करता रहेगा क्या? मुझसे बोलना तुझे पसन्द नहीं। बेहया तो मैं ही हूँ, जो बारबार गिरकर तुझसे मांग किये जा रहा हूँ। अगर थोड़ी भी गैरत जिन्दा है तो रुक जाओ—मुझे तुमसे बहुत कुछ कहना है। वरना भूले नहीं हो—बचपन में तेरी हजार जिद पूरी करने के लिये कई बार रोना पड़ा है—आज भी आँसुओं का सैलाब ले दरवाजे पर खड़ा रहूँगा...और तुम न जा सकोगे।" सुनकर अवि न जाने क्रोध में या दुख में, रो पड़ा। अपनी अवस्था को छिपाने का प्रयास करते हुए वह झटक कर उसी कमरे की ओर चल दिया, जो कभी अवि के लिये ही सुरक्षित रहा करता था।

बड़े बाबू के मुख पर सुख की आभा झलकने लगी। वे अर्चना को सम्हालते हुए मन ही मन मोद मनाते अपने कक्ष की ओर चल दिये।

यद्यपि अर्चना यह कभी नहीं चाहती थी कि अवि फिर उसके जीवन में आये, पर फिर भी अवि के आने से मन न जाने क्यों एक प्रकार से आनन्द तिरोहित था, इसे अर्चना ने स्पष्ट अनुभव कर लिया था। हरदेव बाबू से बिलग हो, अपने कमरे में पहुँचकर उसने बड़े से आइने में छवि को निहारा। मुख पर सहसा मलिनता छा गई। भला वह रूप कहाँ चला गया, जिसकी एक झलक देखने के लिये कभी देहरादून में सैकड़ों आँखें तरसती रहती थीं। अकेला अवि केवल अर्चना का सहवास पाने के कारण कितनों के डाह का कारण बना हुआ था। तो क्या वह इसी रूप में अवि के सामने अभी थी? सहसा उसे बड़ी ग्लानि हुई। अनजाने ही उसने बालों में कंघी की, कुछ पाउडर भी लगाया और आँखें सुरमयी सींक का चुम्बन कर बड़ी-बड़ी सी भी लगने लगीं। अब कपड़े ही तो थे जो उस शरीर पर फब नहीं रहे थे। अर्चना ने उन्हें भी बदल डाला। कीमती जौरजेट की साड़ी और आसमानी रंग का ब्लाउज, ऐसी सजी कि दुबली-पतली अर्चना अभी अभी झील के नीलिमांचल की गोद में खिली सरसिज की नवकलिका सी उद्भासित हो उठी। अब जो उसने अपना रूप दर्पण में देखा तो स्वयं अपने पर ही मुग्ध हो गई। माथे पर केवल एक बिन्दु की कसर थी उसे भी जब वह पूरा करने लगी तो अचानक हरदेव बाबू पर उसकी दृष्टि पड़ी, जो न जाने कब से अपनी बिटिया का शृंगार मंत्र-मुग्ध हो देख रहे थे। इतने

दिनो बाद, आज पहले पहल उन्होंने अर्चना को आषाढ़ के पहले बादल की तरह हवा को पांखों पर मस्त उठान भरते देखा था।

मन मयूर अनजाने ही सुनहले भविष्य की मधुर कल्पना में विभोर हो गया। पर अर्चना न जाने क्या सोचकर गम्भीर वाणी में बोली—

"कब से खड़े हैं आप... और मैं हूँ कि अपने ही में डूबी रही ..।"

हरदेव बाबू मुस्कुराते से बोले—"बिटिया...बहुत बार जीवन में ऐसा भी समय आता है जब मनुष्य प्रसन्नता में बौरा कर स्वयं को भी भूल जाता है। पर अवि कितना अभागा है, जिसने कभी आँख उठाकर तुम्हारी ओर देखा भी नहीं ? वरना वह निष्ठुर कभी मेरी देव बाला को छोड़, उस जंगली विजया से विवाह करता ? खैर, अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा। इस भूल का सुधार तो अब भी हो सकता है।"

"यह क्या कह रहे हो बाबू—" चौंककर अर्चना ने कहा—",तुमने कभी विजया को पहचाना नहीं। वह साक्षात् देवी है। मैं तो उसके नाखून के बराबर भी नहीं।" और अर्चना ने अपने शृंगार को विकृत करना प्रारम्भ किया। बड़े बाबू ने उसे रोकते हुए कहा—

"क्या कर रही है बेटी ! मुद्दत के बाद तो आज तुझे सजा सँवारा देखा है। तनिक जी भर आँखों को सुख तो उठा लेने दे। अवि देख कर अपने किये पर हजार बार पछतायेगा।"

"नहीं बाबू — अवि को रिझाने के लिये तो मैंने कुछ नहीं किया। फिर मैं यह भी तो नहीं चाहती कि किसी भी कारण से विजया के साथ विश्वासघात करूँ। उस देवी के श्राप से मैं जिन्दा जल जाऊँगी बाबू! वस्तुतः अब मेरा शृंगार किस काम का है? न जाने आज मुझे वास्तविकता का ज्ञान क्यों नहीं रहा? वरना किसे दिखाने को यह सब किया?" अर्चना की वाणी दर्द में सन गई थी, इसे बड़े बाबू ने स्पष्ट लक्ष्य कर लिया। वे गीले स्वर में बोले—"बेटी! अगर इजाजत दो तो तुम्हारे बारे में अवि से पूछकर देखूँ। शायद वह अपने किये पर पछताता होगा। मैं विजया को इतनी दौलत दे दूगा कि वह उसके लालच में अपने अवि का पीछा छोड़ देगी। ऐसा मेरा मन कह रहा है री!"

बाबू कोई दूसरी बात करो—" अर्चना ने तनिक नाराज होते हुए कहा—"विजया जिस मिट्टी की बनी है, उसे तुम नहीं जानते। वह अवि के लिये संसार को ठोकर मार देगी। दौलत क्या चीज है? यों मैंने तो कभी भी अवि को उससे छीन लेने का विचार करना भी पाप समझा है। फिर ऐसी बातें कर मेरा दिल क्यों दुखा रहे हो?"

सुनकर हरदेव बाबू गम्भीर हो गये। उन्होंने स्पष्ट जान लिया कि अर्चना जो कुछ कह रही है, कर्त्तव्य के वशीभूत होकर ही। वरना मन तो उसका भी यही चाहता है कि अवि केवल उसीका बनकर रहे, पर यह तो सम्भव नहीं। 'क्या

किसी तरह भी ?' यह एक ऐसा प्रश्न था जिसका उत्तर सहल नहीं, पर हरदेव बाबू इसे यों ही छोड़ना भी नहीं चाहते थे। अतः वे मन ही मन कुछ विचारते हुए वहाँ से फिलहाल टलना श्रेयस्कर समझ यह कहते हुए चले गये—"तुम जो कहो बेटा ! पर मेरा मन अवि को तुमसे अलग नहीं देखना चाहता। यों ईश्वर की मर्जी पर अपना वश भी नहीं चलता।" और वे बाहर चले गये।

× × × ×

कलकत्ते से अवि को गये हुए पाँच दिन व्यतीत हो गये। इस बीच विजया ने न तो कोई पत्र पाया और नाही कोई तार उसे बड़ी चिन्ता हो रही थी कि आखिर बात क्या है, जो अवि ने पहुँचने तक की खबर नहीं की ? कहाँ तो यह वादा था कि दो-एक रोज में ही वह काका को लेकर लौट आयेगा और कहाँ आज यह नौबत कि पाँच दिन बीतने पर भी कोई सम्वाद नहीं। हो न हो, काका कहीं ज्यादा बीमार तो नहीं हो गये ? कहीं वे मृत्यु शैय्या पर तो ..छी...कैसा सोचने लगी मैं ? और इस विचार के आते ही विजया अपने पर ही झुँझला उठी। चित्त तो चंचल था ही; अब विजया ने यह भी चाहा कि अवि का आज कोई संवाद अवश्य आ जाय वरना जरूर कोई अशुभ अदृश्य में हो रहा है। उसे आज न तो खाना-पीना अच्छा लग रहा था, न कहीं कमजोरी के कारण टहलना ही। अचानक दफ्तर के नौकर ने आकर बहूरानी को आवाज

दी तो विजया हड़बड़ाई सी कमरे के बाहर आई। देखा—सरजुग कोई लिफाफा लिये खड़ा है। वह लो, जिसके लिये वह इतना परेशान थी, वही तो आखिर आ गया। ऐसा कहते हुए उसने चञ्चल मन से चिट्ठी ले ली और कमरे में आकर झट उसे खोल पढ़ने लगी। एक दो पंक्तियाँ पढ़कर ही वह इतनी अधीर हो गई कि आँखों के सामने अचानक अंधकार छा गया। आगे पढ़ना जैसे असंभव सा हो गया। उलटकर झट देनेवाले का नाम देखा, तो शंका पूर्णतः दृढ़ हो गई। वस्तुतः पत्र मुनीम काका का था, जिसमें उन्होंने अवि को सम्बोधित करते हुए लिखा था :—

'बेटा...तुम्हारा अभी तक कोई संवाद नहीं आया। चिन्ता हो रही है। कहीं तुम लखनऊ तो नहीं चले गये? वहाँ बड़े बाबू से मिलना होगा रे? मेरी भी तबीअत अब अच्छी हो गई है। अगर होता तो एक बार बहूरानी के हाथ की चाय पी लेता। वरना इस पके आम का क्या भरोसा? कब डाली से टूट गिरे। तो तुम मेरी बिटिया को लेकर एक बार यहीं आ जाओ न? मैं तुम्हारी राह देखूँगा।'

टोह टोहकर अशक्त बनी विजया ने पत्र जो पढ़ा, तो पृथ्वी एक साथ ही घूम गई। ओह भगवान? तो अवि कहाँ चला गया? अगर उसे कुछ हो गया तो?...नहीं नहीं भगवान इतने निष्ठुर नहीं—वो मुझे इतना दुख नहीं देंगे।' और विजया विक्षिप्त सी इस नई समस्या पर गम्भीरता से विचार करने

लगी। अचानक मस्तिष्क में यह विचार भी आया, कि क्या यह सम्भव नहीं कि जैसा काका ने लिखा है—अवि दिल्ली की बजाय लखनऊ चला गया हो ? लेकिन 'क्यों' ?...और इस 'क्यों' के उत्तर में मन ने कहा—'पगली वहाँ अर्चना है—उसकी रंगीन जवानी, जो अवि पर परवान चढ़ाना चाहती है। भला अवि ऐसा कमजोर पुरुष, इस लोभ का संवरण कर सका होगा ? . हो न हो वह अर्चना के ही पास गया है।

और इस विचार ने विजया को और भी दुखी कर दिया। कहते हैं—नारी तलवार से भी अधिक सौत से डरती है। सो विजया इतनी घबरा गई कि उसी अशुभ दिन की तरह, मानो आज भी अर्चना-अवि उसकी नजरों के सामने ही बिहार कर रहे हैं—और वह जल भुनकर खाक हुई जा रही है। मन ने कहा—'तू क्यों दो दिलों के बीच दीवार बन, खड़ी हो गई ? नादान ! अवि तेरा कैसे हो सकता है ? वो दोनों बचपन से एक साथ रहे हैं। जवानी में कितनी बार, एक दूसरे के दिलों की धड़कने सुनी हैं। शादी तो, अवि ने केवल अपने पिता कहे जाने वाले पुरुष के पाप का प्रायश्चित समझ कर, की है। नैसर्गिक प्रेम तो, अवि ने कभी उससे नहीं किया। सदा ही तो वह डरते डरते उसके सामने आया करता है। तो फिर ऐसी अवस्था में वह क्या करे ? बारबार अवि का मन उसे अर्चना के पास खींचता है...और बारबार वह, विजया तेरा बंधन तोड़ने के लिये हाथ पाँव मारता है। पर तू है, जो उसे छोड़ना

ही नहीं चाहती। पगली! क्यों दो जीवन बरबाद कर रही है? हट जा—इन दोनों के रास्ते से हट जा—और किसी ऐसी जगह चली जा, जहाँ अवि के विचार भी नहीं पहुँच सकें। ओह भगवान ?"

और हतभागी विजया, अन्तर के इन विचारों से इतनी पीड़ित हो गई कि राजू जो स्कूल से लौटकर उसके समीप आया, उसकी उसे खबर भी नहीं। अचानक मूक बने भाई पर उसकी नजर पड़ी, तो वह अपनी अवस्था छिपाने का प्रयत्न कर, उसे गोद में खींचती बोली—

"कब आया रे! तू चुपचाप क्यों खड़ा था?"

"तो क्या करता दीदी! तू तो जब से जीजा गया है, बस उसीके ध्यान में खोई रहती हो।"

"नहीं भैया! अब ऐसा नहीं करूँगी। सचमुच मैं तुम्हें भूल गई थी रे! तू ही तो एक मेरा सहारा है। बाबू तो हमें छोड़कर चला गया न? अच्छा राजू! हम यहाँ से चलें तो, तुम्हें बुरा तो नहीं लगेगा? अब अपना घर तो नहीं रहा न?"

सुनकर राजू को बड़ा आश्चर्य हुआ! अभी उस रोज जाते समय अवि बाबू ने उससे कहा था—"राजू! अपनी दीदी का ख्याल रखना मैं जल्दी ही लौटूँगा। देखो उससे लड़ियो नहीं? वरना आकर मैं इतनी मार मारूँगा कि टहलना भी बंद हो जायगा—" और इधर दीदी कह रही है कि वो आयेंगे ही नहीं। फिर दीदी की आँखें भी गीली हैं। अतः किसी अशुभ

की अनजान आशंका से राजू ने कहा—"क्यों दीदी ! क्या बाबू हमसे नाराज हो गये ? फिर उन्होंने तो ब्याह किया है न ? वो तुम्हें छोड़कर कहाँ जायेंगे ? रह भी सकेंगे क्या, वो तेरे बिना ?"

"हाँ रे हाँ, वो ब्याह तो एक मजाक था रे ! तेरे बाबू अर्चना दी के पास चले गये। तू भी जायेगा क्या ?" विजया ने रुँधे गले से कहा।

"मैं जाऊँगा...तो तुम किसके पास रहोगी ? दीदी ! .. तुम चिन्ता न करो। अब तो मैं बड़ा हो गया हूं। किताब पढ़ना भी आ गया। मैं खुद कमाऊँगा दीदी ! तुम्हें कोई चिन्ता नहीं।"

"मेरा राजा भैय्या ! अब तेरा ही सहारा है रे ! दुनियाँ बदल सकती है। पर बहन से भाई तो नहीं बदलेगा न ? राजू ! हम ऐसी जगह चलेंगे—जहाँ धोखेबाज नहीं रहते। तेरे बाबू ने हमें बहुत ठगा है। इतनी बड़ी चोट पहुँचाई है कि घाव उम्र भर नहीं भर सकेगा।"

"तुम्हें मारा है क्या बाबू ने ? देखूँ, कहाँ चोट लगी है ?"—विस्मय से राजू ने पूछा। विजया ने ढुलके हुए आँसुओं को पोंछकर कहा—"एक घाव हो तो दिखलाऊँ भैय्या ! सारा शरीर ही छलनी हो गया रे ! खैर, वो सुखी रहें। अपने तो दुख के आदी हो चुके हैं। यह दुख भी उठा लेंगे।"

"तो कब चलोगी दीदी ? कहाँ चलना है ?"

विजया ने राजू को छाती से चिपका कर रोते हुए कहा—

"जिनका घर बार लुट गया, उनके लिये सारा संसार ही घर-बार है रे! इतनी बड़ी दुनियाँ में गज भर जगह मिल ही जायगी भैय्या! तू दुख न करना। अपने भाग में सुख नहीं रे...वरना माँ-बाप और घर-गृहस्थी ही क्यों छूटते? बस दो-एक दिन में ही चले जाना है। जा तू अभी खाले। गोपाल जलपान लिये बैठा होगा।"

"दीदी...तुम्हें रोता देख, मुझे खाना अच्छा लगेगा क्या?"

"रोती नहीं रे! ये आँसू तो आँखों के साथी बन चुके हैं। लो इन्हें पोंछ लेती हूँ। तू खाले।"

"नहीं दीदी! मैं नहीं जाऊँगा।"

और राजू भी अधीर हो गया। विजया को और भी रुलाई आ गई। "अब तू भी मेरी बात नहीं मानेगा न? बस तेरा ही तो एक सहारा है....।...जब तू ही रूठ जायेगा तो मैं मर न जाऊँगी?"

"ऐसा न कहो दीदी! लो मैं खाये लेता हूँ। तेरे बिना मेरा कौन है!" और राजू आँखें पोंछता, उठ खड़ा हुआ विजया पलंग पर औंधे माथे गिर, बिलख बिलख कर रो पड़ी। आज फिर उसे अपनी नौका समन्दर के बीच, मौजों में बे पतवार ठोकरें खाती हुई जान पड़ी। अवि अर्चना के पास गया है—इसकी संभावना मात्र से ही, आज उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि अवि का सहारा भी टूट कर रहेगा। और वह लहरों के थपेड़ों पर भटकने को छोड़ दी जायगी।

विजया कबतक रोती रही, यह तो ज्ञात नहीं, पर अंधेरी रात की इस सघन कालिमा में हरदेव बाबू की आँखों को लखनऊ में तनिक भी चैन नहीं था। वो बत्ती बुताये हुए भविष्य पर सोच रहे थे। मानस में अवि और अर्चना को फिर से मिला कर, विजया को दूर किसी गर्त्त में ढकेलने की योजना, उनके मस्तिष्क में पनपना चाहती थी। गम्भीर चिन्तन करने पर भी कोई ठोस विचार अभी तक नहीं आया था। अवि को आये पाँच छः दिन हो गये थे और इस बीच में वह बहुत कोशिश करने पर ही एक आध बार हरदेव बाबू से बोल सका था। अतः वे सोच रहे थे कि जबतक विजया इसके जीवन में है, यह सर्वदा उस बलात्कार वाली घटना को स्मरण किये रहेगा। इस तरह बेटे का रोष किसी भी दिन बाप के लिये कम हो जाय, यह कतई संभव नहीं। तो एक मात्र बाप बेटे के मेल, या फिर अर्चना-अवि के सुनहले संसार के निर्माण का अगर कोई सुगम पंथ है तो यही कि जैसे भी हो विजया को इस रंगमच से बिलग किया जाय। ऐसा सोच कर हरदेव बाबू अपनी योजना को कार्य रूप में परिणत करने का विचार, मस्तिष्क कुरेद कुरेद कर करना चाहते थे। सहसा उनके कानों में अस्फुट पद-चाप सुनाई पड़ी। कान चौकन्ने हुए कि इस अर्ध रात्रि में—कौन है...जो अवि के कमरे की ओर जा रहा है? वे विस्मय में झूलते से, चुप चाप पलंग से उठ कर दरवाजे पर आये। अंधकार में देखा कि एक नारी आकृति—अवि के कमरे के निकट

खड़ी है। एक मन तो हुआ कि पुकार कर पूछें कि कौन है, फिर न जाने क्या सोच कर वो चुप ही रह गये। दूर बरामदे में जलती बिजली के प्रकाश में आकृति का तनिक मुख होते ही हरदेव बाबू जानगये कि यह अर्चना ही है।...पर किस उद्देश्य से ? इसे वे शीघ्र ही नहीं जान सके। तनिक मस्तिष्क पर जोर दिया तो वे अचानक कौंध से उठे—'तो क्या अर्चना अपने को थाम न रख सकी ..? कहीं अंधकार की निर्जनता में उसकी वासना, अपने बचपन के साथी—अवि को इतना निकट देख—उभाड़ तो नहीं खा गई...? तो क्या सम्भव नहीं, कि अर्चना अकेली पलंग पर विवशता में करवटें बदल, मन के वशीभूत हो, अपने को अवि में तिरोहित करने जा रही है ? ठीक तो है-आखिर कबतक वह अपने से लड़े ? जवान दिल का यों बहकना असंगत तो नहीं ? दबी वासना की आग तो शोले बनकर ही भड़केगी न ? उस समय पाप-पुण्य का विचार कौन करता है ?

और बड़े बाबू जब ऐसा सोच ही रहे थे, कि अर्चना ने सिहरते हुए बड़ी सावधानी से अवि के कमरे में आहिस्ते से किंवाड़ खोल प्रवेश किया। हरदेव बाबू की उत्सुकता और बढ़ी—और वे बिना विचारे ही मन्थर गति से अवि के कमरे की खिड़की निकट पहुँच गये। मंद प्रकाश में उन्होंने देखा—अवि निद्रा में बेसुध सोया है। ऊपर पंखा अपनी पूरी शक्ति से घूम रहा है, जिसकी हवा में अवि के रूखे केश, उड़-उड़कर मुख पर आते और चले जाते हैं। अर्चना प्रस्तर-प्रतिमा सी,

नयनों में युग युग की प्यास लिये, एकटक अवि की ओर निहार रही है। अधर बुदबुदा रहे हैं—अस्फुट स्वर में—मानों कह रहे हैं—हमें बेकरार कर, तुम कितने आराम से सोये हो ? पर अभागे ! यह तो सोचो, आग लगाकर कबतक दूर खड़े तापते रहोगे ? जब लपटें-शोले बन घेर लेंगी तो जलना तुम्हें भी पड़ेगा।

और हरदेव बाबू ने देखा—अर्चना धीरे-धीरे अवि के बिलकुल करीब आती जा रही है। मन तो हुआ कि खिड़की से हट जाना ही अच्छा है। वरना इनका सम्मिलन देखना... पाप नहीं है क्या ? पर उस समय मन की सुनता ही कौन है ? वो जैसे के तैसे देखते ही रह गये।

अर्चना अवि के पलंग पर झुक गई। उसका सारा शरीर थर थर काँप रहा था, यह हरदेव बाबू ने स्पष्ट अनुभव कर लिया। श्वाँसें लम्बी लम्बी और शायद गर्म थीं। सारे अवयव इतने उत्तेजित जान पड़ते थे, कि रह-रहकर अनजाने ही विभिन्न अंग फड़क उठते थे। अर्चना वासना के वशीभूत होकर ही तो आई थी। जब हजार मनोतियाँ करने पर भी नींद न आ सकी, और अवि उसके मस्तिष्क से पल भर भी न जा सका, तो वह पागल सी अपने को अवि में लीन कर देने के विचार से ही यहाँ आई थी। लेकिन न जाने कौन सी अदृश्य शक्ति, बारबार उसके पाँव पकड़—उसे रोकना चाहती थी, नादान ! इस मंजिल पर न बढ़। पर मन था कि उसे

धक्का दे देकर अवि के पलंग निकट अनजाने ही ले आया। अर्चना, अवि के मुख पर बिलकुल झुक गई। जान पड़ा— जैसे अपने जलते अंगारे से होठ, वह अवि के अधरों से चिपका—जन्म जन्मान्तर की प्यास बुझा लेगी—जैसे वह अवि की गोद में अपने को डुबा, युग युग की मलिनता धो लेगी। पर सहसा ही न जाने क्या सोचकर वह तनिक रुकी। हरदेव बाबू ने स्पष्ट अनुभव किया कि अर्चना स्वयं अपने से ही बहुत संघर्ष कर रही है। कुण्ठा का व्यापार, शायद उसे पागल कर चुका है। ऐसी अवस्था में न जाने वह क्या कर बैठे। वे किसी निश्चित विचार पर पहुँच भी नहीं पाये कि देखा एक बारगी ही अर्चना बौराई सी, मधुमक्खी की तरह, अवि से चिपक गई। अब तो हरदेव बाबू झटक कर खिड़की से अलग हो गये। आगे का दृश्य देखने की हिम्मत उनमें नहीं थी। शायद परिस्थिति का समुचित ज्ञान, उन्हें हो चुका था।

पर इधर कुछ और ही हाल हुआ। जैसे ही अर्चना बेसुध सी अपने होठों से अवि के दश बीस चुम्बन ले उससे चिपकी-अवि चौंक कर उठा। शरीर पर पड़े हुए अनजान बोझ को जैसे ही उसने झटकना चाहा, अर्चना को वह पहचान गया— "यह क्या ? क्या बात है अर्चना ?" अवि ने विस्मय से पूछा। अर्चना पर तो वासना का पूरा प्रभाव था। वह उसी आवेग में बोली "मैं अपने को अधिक अवरुद्ध नहीं रख सकती अवि ? तोड़ दो आज बंधन—यहाँ तुम्हें विजया का कोई डर

नहीं। अपने जी की तपन मिटा लेने दो। वरना मैं..."

"अर्चना !!" अवि ने सम्हल कर उठते हुए कहा—"यह क्या हो गया है तुझे ? पाप-पुण्य का जरा भी विचार नहीं है क्या ?... फिर यह तो सोचो ! मैं किसी का पति हूँ। बार बार तो विजया के साथ विश्वासघात नहीं करूँगा न ?"

अर्चना क्रुद्ध नागिन सी फुफकार कर बोली—"तो आज मेरा ही गला घोंट दोस्त इस आग की जलन मुझसे बरदाश्त न होगी। मैं जलकर राख हो रही हूँ।"

"जिस दिन तुम जलकर राख हो जाओगी, वही तुम्हारा नया जन्म होगा अर्ची ! लज्जा नारी का शृंगार रही है, उसे त्याग दोगी तो क्या बचेगा तुम्हारे पास ?"

"मुझे कुछ नहीं चाहिये, अवि ! लूट लो मेरा सब कुछ—मैं कबतक तड़पती रहूँ ? मुझे तुम मार ही क्यों नहीं डालते ?" और अर्चना फूट-फूट कर रोने लगी। अवि विक्षिप्त सा कुछ गम्भीर मुद्रा में बोला—"अर्ची ! यों मन के बस में होना अच्छा है क्या ? विजया के भरोसे पर, बार बार आघात करने से एक दिन तुम स्वयं, खून के आँसू रोओगी। उसे मिटता हुआ तो तुम स्वयं भी नहीं देख सकती। जाओ—अपने कमरे में सो जाओ। मैं कल चला जाऊँगा। वस्तुतः भूल तो मैंने ही की, जो यहाँ आकर तुम्हारी वासना को उभाड़ खाने का अवसर दिया। क्या करता तुम्हें देखे बिना, मन तो मेरा भी नहीं मानता ? पर सच जान अर्ची ! अब बारबार

पाप पंक में नहीं धसूँगा। वरना समन्दर का पानी भी मेरे कीचड़ को नहीं धो सकेगा।"

सुनकर अर्चना रोती हुई भागी अपने कमरे की ओर। पलंग पर बेसुध सी गिरकर बिसुर बिसुर कर रो पड़ी। आवाज सुन बड़े बाबू दबे पाँव उसके समीप आये। स्नेह से सिर सहलाते हुए बोले—"रो नहीं बिटिया! यों हताश होने से नहीं बनेगा। अवि को किसी भी कीमत पर हमें लौटाना है री! तू मेरा साथ दे, तो अपने भाग में फिर सुख लौट आये।"

अर्चना ने विक्षिप्तावस्था में ही कड़क कर कहा—"मुझे अकेला छोड़ दो बाबू! जबतक जी भर नहीं रो लूँगी मन की आग झुलसाती रहेगी। तुम चले जाओ न?"

तो अर्चना का विचित्र रूप देख बड़े बाबू लौट आये। लेकिन मुख का भाव यही व्यक्त कर रहा था कि शायद वे अर्चना की प्रसन्नता लौटाने के लिये कोई ठोस योजना बना चुके हैं। तभी तो अर्ध रात्रि की बेला में, जब अर्चना विलाप कर रही थी, अवि घटित घटना का सिंहावलोकन कर रहा था—हरदेव बाबू विजया को पत्र लिख रहे थे :—

जहरीली नागिन! बड़ों ने सच कहा है—प्रतिहिंसा की भावना से विलोड़ित नारी, काली सर्पिणी से भी अधिक विषधर होती है। मैंने जो कामान्ध हो उत्तेजना में पाप किया, उसका इतना भयानक बदला तू ने मेरे बच्चे की जिन्दगी से लिया? क्या तू मुझे क्षमा नहीं कर सकती थी? लेकिन याद रख

प्रेम के आभाव में अवि से तू कभी सुख न पा सकेगी। देख, तेरी जादू की नगरी से मुक्त हो, वह आज कितने सुख से अर्चना से घुलता-मिलता है ? और अब तो बस दो चार दिन में उन दोनों का विवाह भी हो जायगा। सुबह का भटका, शाम को घर लौट आया है। अब तेरी दुनियाँ की ओर मैं इसे कभी न लौटने दूँगा। तू रुपये की भूखी थी न? तो ले अभागी—यह लाख रुपये का चेक। चाहे अपनी इज्जत का मोल समझ या अपने प्यार की कीमत। पर तू किसी ऐसे जहन्नुम में चली जा, जहाँ से लौटकर अपना मनहूस शाया, तू कभी फिर मेरे बच्चे-बहू पर न डाल सके। जा चली जा... हमारी दुनियाँ से दूर...बहुत दूर...

तुम्हारा अपराधी
हरदेव

पत्र लिख कर बड़े बाबू ने निश्चिंतता की श्वाँस ली। रात की इस सघन कालिमा में बूढ़े ने जो अपने मन की कलुषता का परिचय दिया, भगवान् जाने वह किस भयानक वातावरण का सूत्र पात करेगा ?

नियत समय पर विजया को जब पत्र मिला—पाँव तले की धरती खिसक गई। आसमान टूट कर सिर पर ही गिर पड़ा। वह तो नहीं दबी, पर अरमानों की लाश, उसी के नीचे दफ़न हो गई। ओह भगवान ! यह क्या हुआ ?? विजया रोयी और बहुत रोयी। मन जब हल्का हुआ, अन्दर से कोई बोल उठा—

'क्यों व्यर्थ के झमेले में पड़ी है ? जब अभागा पति, बार बार अर्चना की गोद में ही शान्ति पाता है, तो पति-सुख के लिये, अपने बन्धन से उसे मुक्त कर दे। यहाँ नहीं, तो किसी अदृश्य संसार में वह तुझे फिर मिल जायगा। वहाँ कोई अर्चना तेरे अवि को न छीनेगी। तू पति-व्रता है न ? तुझे जन्म जन्मान्तर अवि, पति रूप में मिलेगा। डर नहीं...पति-सुख के लिये त्याग कर...।' और इस भाव धारा में लीन विजया ने रात की कालिमा में अब शीघ्र से शीघ्र घर छोड़ने का निश्चय कर लिया। रात्रि में भाई को गले लगा, वह फिर बहुत रोयी राजू ने लाख प्रयत्न किये कि वह कारण जान ले, पर विजया ने कुछ न कहा।

जब सारा संसार निद्रा निमग्न था, गोपाल सिनेमा देखने गया हुआ था, विजया अपने गृह-त्याग की योजना बना रही थी। रात्रि के किस प्रहर में, वह कोई निश्चय कर सकी, यह कौन कहे ? अवि को एक पत्र उसने अवश्य लिखा, पर शायद वही अंतिम पत्र था, जिस के लिखने पर उसकी आकृति और भी कठोर हो गई। हाँ मुनीम काका को अंतिम संदेश देना भी वह शायद नहीं भूली।

और हवड़ा स्टेशन पर जिस समय विजया-राजू को लेकर गाड़ी चल पड़ी, सारा वातावरण मानो विषम वेदना से दर्द में सन गया था। जिज्ञासू राजू ने जब उदास मन से गृह-त्याग का कारण जानना चाहा था तो इतना ही विजया कह सकी—

"भैय्या रे ! इस छलना की नगरी में अपना कोई नहीं। तेरे जीजा हमें छोड़ कर हमेशा के लिये चले गये। अब यहाँ रह कर क्या करती ? कैसे तेरी पालना होती ?"

और वह राजू को छाती से चिपका बिलख बिलख कर और भी रो पड़ी। पता नहीं, जनानी डिब्बे में वो अकेले ही दो प्राणी थे, या अन्य भी कोई इस वातावरण में घुल मिल रहा था ? लेकिन अवि का संसार लुट गया था। उसकी विजया किसी अनजान देश की ओर चल पड़ी थी, रेल की छिक छिक और खड़ खड़ में किस महानाश की प्रति ध्वनि हो रही थी, यह किसे ज्ञात ? पागल-पवन तो बस इतना ही जान सका कि किसी राम की सतवन्ती, सीता आज फिर वन-गमन कर रही थी। पति ने आज्ञा दी या परिस्थिति ने, इसका निर्णय कौन करे ?

१४

कहते हैं परोक्ष में घटी घटना का भी आभास आत्मा को अनजाने ही हो जाता है। विजया के गृह-त्याग का स्पष्ट ज्ञान तो अविनाश को हुआ नहीं, पर जिस रात वह कलकत्ते से किसी अनजान मंजिल की ओर चल पड़ी उसी समय अवि अचानक ही नींद से चौंक कर बेहाल हो गया। दिल इतना बैठ गया कि लखनऊ के घर-आँगन सभी काट खाने को दृष्टिगत हुए। उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे कि शरीर से आत्मा बिछुड़ गयी और पड़ा रह गया केवल अस्थि-चर्म का ढाँचा। जिसमें गति है—जीवन नहीं, प्राण-वायु है—आत्मा की सत्ता नहीं।

अर्ध रात्रि में नींद जो उचटी तो लाख प्रयत्न करने पर भी अवि सो न सका। बेचैनी का कारण तो ज्ञात नहीं हुआ, पर

अवि को इतना अनुभव अवश्य हो गया कि परोक्ष में कोई अशुभ का वज्रपात हो गया। घबरा कर विजया के बारे में वह बहुत कुछ भला बुरा सोच गया। चित्त इतना चंचल हो गया कि शीघ्रातिशीघ्र कलकत्ता पहुँचने का विचार करने लगा।

सुबह तक बिछौने पर करवट बदलते अवि ने अब दृढ़ निश्चय कर किया कि आज और अभी ही वह रवाना हो जायगा। एक पल भी रुकना, शायद किसी अनहोनी का आह्वान करना है, सो अवि ने सहसा ही अपने कपड़े अटैची में भरने शुरू कर दिए।

अर्चना जो 'बाथ-रूम' की ओर जा रही थी, अवि को यों अचानक कपड़े सँजोते देख सहमी। वियोग की घड़ी का अनुमान करके ही वह अधमरी सी हो गयी। घबराई अवस्था में कमरे में प्रवेश कर वह अवि से बोली—"यह क्या कर रहे हो? जाने का इरादा कर लिया है क्या?"

"हाँ, अर्ची।...जाने क्यों रात भर नहीं सो सका। विजया की ओर से बड़ी चिंता हो रही है। दिल रात से ही बैठ गया है।"

"नहीं रे, ऐसी बात क्या है? दो एक दिन और ठहर जाते।" "रुकूँगा नहीं अर्ची। मैं अभी ही जाऊँगा।" और अवि यात्रा के लिए बिल्कुल प्रस्तुत हो गया। अर्चना एकदम घबरा गयी। दर्द भरे स्वर में बोली—"बुरा न मानो तो कह दूं.. कि तुम उस रात की घटना से ही डरकर जा रहे हो। रहो

तो विश्वास करा दूं कि वैसी परिस्थिति फिर उत्पन्न होने पर अर्चना तुम्हें मान के आसन से नहीं गिरायेगी, स्वयं ही आत्म-हत्या कर लेगी। फिर निर्भय हो एक दिन रुक जाते...।"
अवि ने कपड़े सँभालते हुए कहा—"सच तो अर्चा यही है कि मुझे स्वयं पर भी भरोसा नहीं, फिर तुझे क्या दोष दूँ ? स्वयं से मुझे कम लड़ना पड़ा है क्या ? फिर विजया को तो मैं दिल्ली का नाम लेकर आया था...।"

सुनते ही अर्चना चौंकी—अरे तो अवि ने उस दिन झूठ कहा ?—फिर भी वह अपनी उत्सुकता को दबाकर इतना ही बोली—"एक दिन और नहीं ठहर सकते क्या ?"

"क्या होगा एक दिन रहकर ? कोई विशेष प्रयोजन है क्या ?"—सुनकर अर्चना को रुलाई आ गयी। मुँह घुमाकर उसने आँसू अवरुद्ध किए। फिर अवि की ओर देख कर बोली—"अवि रे। यही एक दिन तो अभागी अर्चना के लिए जीवन की निधि बनकर रह जायगा—अभी तो मैंने जी भर बात भी नहीं की। फिर मुझे बहुत से अपराधों के लिए क्षमा माँगनी है न...? शायद यही हमारा अंतिम मिलन होगा।... यों तो मैंने कलकत्ते से लौटकर ही ऐसा निश्चय कर लिया था कि अपना कलंकित रूप लेकर फिर कभी तुम दोनों के सामने नहीं आऊँगी ! पर ऐसा हुआ कहाँ रे ? मेरे दाग को धोने का कोई उपाय है क्या ? मैं कभी भी विजया के सामने न आ सकूँगी न ?"

"ऐसा क्यों कहती हो अर्ची—अवि बोला—"विजया ने उस घटना को परिस्थिति का श्राप समझ तुम्हें कभी का क्षमा कर दिया...उसकी नजरों में अभी भी तुम पूर्ण-पवित्र हो।"

"तभी तो मैं उसे देवी कहा करती हूँ अवि। क्षमा का इतना विशाल सागर जगत्धात्री के अंतर में ही समा सकता है रे...। पर उससे कहना—अर्चना में अब इतनी शक्ति नहीं जो उस देवी के सामने आ सके। मैं उसे यहीं से रोज प्रणाम करती हूँ। अगर आजीवन आँसू बहाने से प्रायश्चित हो सकता है तो मैंने उसका व्रत ले लिया है।...पर मन तो अभी भी यही कहता है—अभागी अर्चना! तेरा कलंक कभी न धुल सकेगा, जन्म-जन्मान्तर तू पतिता ही रहेगी।" और अर्चना वेदना में और भी सन गयी।

अवि भी पीड़ा में तिरोहित हो गया। अचानक बड़े बाबू उधर से ही गुजर रहे थे कि इन दोनों को यों अश्रुपात करते देख अन्दर आ बोले—"क्या बात है बेटी! अवि जा रहा है क्या?"

"हाँ, बाबूजी।"—अर्चना ने आँसू पोंछते हुए कहा—"इन्हें काम है। वहाँ विजया अकेली है न?"

सुनकर बड़े बाबू असमंजस में पड़ गए। सोचा, तो क्या अपनी योजना असफल ही हो जायगी? विजया, अवि के जीवन से दूर नहीं होगी न? नहीं, वे ऐसा नहीं होने देंगे—और ऐसा विचार कर वे अवि से बोले—"अवि, तुम अभी

नहीं जाओगे— यह मेरा आदेश है।" सुनकर अवि विचलित सा एक नजर उनकी ओर देखकर बोला—"मेरा जाना अति आवश्यक है। वहाँ विजया अकेली है।"

"और यहाँ तेरा बाप और अर्चना अकेले रहेंगे—कभी यह भी सोचा है?" बड़े बाबू ने बीच में ही रोष से कहा। अवि ने स्पष्ट अनुभव किया कि हरदेव बाबू आज अपने अतीत गौरव से हीन नहीं। पहले जैसे डाँट बताया करते थे, वही भाव आज दृढ़ स्वर में लक्षित हुआ था। ..पर अवि को इसकी क्या परवाह? वह गंभीर वाणी में बोला—"मेरा रुकना किसी भी कीमत पर नहीं होगा। अच्छा है हम शांत वातावरण में ही विलग हों।" सुनकर हरदेव बाबू कड़क उठे—"अवि, तुमने बाप का ममता भरा दिल ही देखा है। उसकी जिद्द नहीं देखी। अगर यों चले जाओगे तो पहुँचने के पहले मेरे मरे की खबर सुनोगे।" अबकी हरदेव बाबू तरकश का अंतिम तीर फेंककर अवि के मुख का गंभीर अध्ययन करने लगे कि देखें इस कथन का उस पर क्या प्रभाव पड़ा। अर्चना व्याकुल सी दोनों का मुँह निहार रही थी। अवि अडिग हिमालय सा हाथ में सूटकेश उठा बड़े बाबू के निकट आया और तनिक ठहर उनके मुँह की ओर एक बार देखकर चरणों में झुक गया। हरदेव बाबू कुचले साँप से भड़क कर अलग होते बोले—"खबरदार जो मेरे पाँव छूए। जब तुम्हें अपनी ही जिद्द रखनी है तो जो मन भावे सो करो। मेरी लाश को कभी हाथ भी लगाया तो तुम्हें

तेरे भगवान की सौगन्द है।" और इतना कहकर वह तूफान की तरह कमरे से निकल गए। अवि ने जाते हुए पिता पर एक नजर डाली और फिर अर्चना की ओर देखकर बोला—"अच्छा अर्ची...बिदा...।"

अर्चना रोते हुए उसके चरणों में झुक, पाँव की मिट्टी को सिर से लगा, वहीं मुँह में साड़ी का पल्ला ठूँसती बैठ गयी। अवि चुपचाप हवेली से निकल गया। उससे किसी ने यह भी नहीं पूछा कि वह कहाँ जा रहा है।

लखनऊ से चलकर अवि सीधा दिल्ली आया। उसके लिए यह अति आवश्यक था कि वह अपने मुनीम काका का पूरा हाल जान ले। इसलिये संध्या के झुटपुटे में जब वह दिल्ली पहुँचा तो स्टेशन से सीधा मुनीमजी से मिलने हवेली चल पड़ा। उस समय अवि के मन में तरह-तरह के विचार उठ रहे थे। दालान पहुँचकर जब उसने काका को आवाज दी तो मुनीम जी हड़बड़ाए से बाहर आए। हाथ में अभी की डाक से आयी विजया की चिट्ठी थी। उसे फैलाए हुए ही वे अवि को देख बोले—"ले अभागे...तेरा ही इन्तजार कर रहा था। तू कब कलकत्ते से आया रे और इतनी जल्द कैसे तेरा मन विजया से भर गया जो तू अर्चना से शादी रचाने चला है? रे निर्मम मैंने कहा था न कि विजया टेशू की वह कली है जो गम के एक ही थपेड़े में सूख जायगी...पर...तू था कि।"

"काका...यह क्या कह रहे हो?"—अवि को तो आधी

बात सुनकर ही हवेली की दीवारें सिर पर टूटती हुई मालूम पड़ी। हाथ की सूटकेश धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ी और वह मानो दम तोड़ रहा हो ऐसी ही अवस्था में मुनीमजी की ओर जिज्ञासा से देखता हुआ बोला—"कैसी शादी ? तुम किसकी शादी का जिक्र कर रहे हो ?... काका मैं सात-आठ दिन पहले ही तो आया हूँ।"

मुनीम जी अश्रुपात करते हुए अवि को विजया का पत्र दे बोले— "ले पढ़ इसे... यहाँ तो घर उजड़ गया और तू भोलेपन का अभिनय कर रहा है ? बिटिया के संसार में आग लगाकर आया है, और अब पूछ रहा है कि मकान क्यों जल गया ? तुमको किसने कहा था कि विजया की अवहेलना कर अर्चना में रूचि ले ? बिना वजह ही बिटिया रूठी होगी क्या ?" और मुनीम काका रोष और वेदना में जोर-जोर से हाँफने लगे। अवि विषय की वास्तविकता और गहनता का अनुमान लगाता हुआ काका के हाथ से विजया का पत्र ले शंकित मन से पढ़ने लगा। अक्षर क्या थे - अवि के लिए मौत का पैग़ाम—एक-एक शब्द आग के वे शोले थे .. जिनकी गर्मी से अवि का सारा बाह्य-अंतर सुलग उठा। धूँआ तो नहीं उठा पर आँसुओं के पनाले दो-चार पंक्तियाँ पढ़कर ही बाँध तोड़ बहने वाले पानी की तरह प्रबल वेग से प्रवाहित हो गए। काका माथे पर हाथ रख वहीं धड़ाम से बैठ गया और अवि पत्र को मुश्किल से पढ़ता हुआ कटे वृक्ष सा वहीं लुढ़क पड़ा।

"काका...मेरा, सर्वनाश हो गया।"—कहते हुए, अवि के हाथ से पत्र छूट गया और वह ढ़ाँ-ढ़ाँ रोते हुए बोला—"वह चली गयी काका—अब मैं उसे कहाँ पाऊँगा ? कैसे उसकी यह गलतफ़हमी दूर कर सकूँगा ? बाबू मुझे इतना बरबाद करेंगे—यह मैंने स्वप्न में भी न सोचा था। किस जन्म का बदला लिया उन्होंने ?"

"अब दूसरों पर क्यों लाँछन लगाता है ?" मुनीमजी रोते हुए बोले—"क्या तुमने अर्चना से शादी की चर्चा नहीं चलायी थी ? फिर यह मसला उठा कैसे रे ? तू दिल्ली क्यों गया था ? विजया को अकेला छोड़कर आने का अर्थ क्या था ? फिर बड़े बाबू ने क्या किया है जो दोष दे रहा है ?" अवि म्रियमाण सा बोला—"यह चेक देखते हो न काका...यह बाबू ने ही विजया को मेरी कीमत लगाकर भेजा था। फिर अर्चना से शादी की बात भी उन्होंने विजया को लिखी है। वरना सत्य का इसमें लेश भी नहीं।...मुझे तो तुमने ही तार देकर लखनऊ जाने को लिखा था न ! वरना मैं आता ही क्यों ? काका...मेरा तो सब कुछ लुट गया। विजया माँ बनने वाली है...वह कहाँ ठोकरें खाती होगी ?...काका, तुम अभी लखनऊ चलो। अब मैं अर्चना से जरूर मिन्नतें करूँगा कि हमें तबाही से बचाने के लिए वह कहीं भी हो जल्द शादी कर ले। नहीं तो उम्र भर विजया नहीं लौटेगी काका। वह बड़ी मानिनी है। उसके मनमें यह बात घर कर गयी कि अर्चना के बिना मैं नहीं रह

सकूँगा—इसका निपटारा केवल इसी तरह हो सकता है काका। तुम भी अर्चना को समझाना कि वह जरूर अपना विवाह कर ले।"

सुनकर मुनीमजी विस्मय में डूब गए। मस्तिष्क में विजया की बरबादी का स्पष्ट चित्र घूमने लगा। सारी बातों पर गंभीरता से मनन करने पर अब उनकी समझ में सब कुछ आ रहा था। बड़े बाबू का यों अवि को अर्चना से उलझाने में यही तो स्वार्थ था कि विजया के न रहने पर ही बाप-बेटे में सुलह संभव है। बरना तो विजया का नाम ही हरदेव बाबू के पापमय संसार का इतिहास कहता रहेगा। इसलिए यही तो हुआ है कि अवि के दिल्ली आने पर उन्होंने अर्चना को अवि की ओर उकसाया होगा और उधर विजया को यह लिख दिया कि अवि-अर्चना की शादी हो रही है। अतः वह फिर कभी अवि के जीवन में न आवे। अवि की कीमत के रूप में उन्होंने ये रुपए भी उसे भेज दिए। ये सारी बातें मुनीमजी स्पष्ट समझ गए, पर यह उनकी समझ में अभी भी न आया कि विजया ने अर्चना को कब देखा और कैसे इतनी शीघ्रता से अवि पर अविश्वास कर वह इसे मान गयी कि अवि-अर्चना की शादी होना सत्य है। इसलिए अवि से उन्होंने पूछा—"बिटिया ने अर्चना को कब देखा रे.. फिर उसे इतना विश्वास कैसे हो गया कि तू उससे विवाह कर लेगा?"

अवि कराहते हुए बोला—"काका यही तो बदनसीबी है...

अर्चना मुझे खोजती हुई कलकत्ता गयी थी न। वहाँ मोटर-दुर्घटना का शिकार हो महीनों विजया के साथ ही रह गयी। उस समय मैं अपने को जप्त नहीं रख सका था। विजया ने मेरी कमजोरी को कई बार लक्ष्य कर लिया था। तभी तो अर्चना अपराधिनी बन वहाँ से लौट आयी थी। सचमुच में वासना में अंधे हो, विजया की आँखों के सामने ही हमने उसके विश्वास का एक दिन खून कर दिया था।...लेकिन वह इतनी महान् थी जो इस गुरु अपराध पर भी हम दोनों को क्षमा कर दिया। मैं ही अभागा, तुम्हारा तार पाकर काका ! विजया से यह न कह सका कि मैं लखनऊ जा रहा हूँ। मैं तो दिल्ली का नाम लेकर आया था...लेकिन मैं यह कब जानता था कि केवल इसी कारण मेरा सर्वनाश हो जायगा—बाबू मुझे इस तरह तबाही के रास्ते पर डाल देंगे।"

मुनीमजी ने अब सारी बातें समझते हुए कहा—"चल अब लखनऊ चलकर अर्चना बिटिया को पहले विवाह के लिए राजी करें। घबरा नहीं रे। उसकी कहीं शादी हो जायगी तो बिटिया जरूर लौट आयेगी।...उसकी भ्राँति दूर हो जायगी न ?"

"हाँ, काका ! चलो अभी लखनऊ चलें"—अवि ने कहा। और दोनों यथा शीघ्र बिना किसी तैयारी के वैसे ही चल पड़े।

सुबह तक अविनाश और बूढ़ा मुनीम लखनऊ पहुँच गए। अर्चना उन्हें देखते ही इतनी चकित हुई कि भंगिमा ही बदल गयी। ऐसा जान पड़ा कि दूर आसमान का चाँद बिलकुल

अर्चना की गोद में आ गया और वह पगली हर्षातिरेक में बौरा गयी। भला वह कैसे विश्वास करती कि कल हजारों मनोतियाँ करने पर भी नहीं रुकने वाला अवि, आज स्वयं ही उसके इतना सन्निकट क्यों कर आ गया।

हड़बड़ा कर अर्चना ने काका और अविनाश की अभ्यर्थना की। विभोर हो जब उसने लजीली आँखें अपने अवि की ओर उठायी तो न जाने वह किस अज्ञात भय से सिहर उठी। अवि के मुख पर वेदना के शत्-शत् बादल मड़रा रहे थे। नयनों में सर्वस्व लुटे बे सहारा पंथी की बेबसी झलकी।

अर्चना अचानक ही सिहर उठी। भय, विस्फारित नेत्रों से जब काका की ओर देखा तो वे बोले—"बहूरानी ! अवि का सब कुछ लुट गया रे। विजया हमें छोड़कर चली गयी" और उन्होंने चिट्ठी अवि के हाथ से लेकर अर्चना की ओर बढ़ा दी। चौंककर अर्चना ने अवि के नाम का पत्र पढ़ा—' निर्मम देव ! यह जानकर मन भारी हो गया कि तुम्हें मेरी पूजा में तृप्ति नहीं मिली। यद्यपि मैंने बहुत प्रयत्न किया रे कि तुम्हें अपनी भक्ति से विभोर कर दूँ। तुम दीन-दुनियाँ को भूल, केवल मेरे ही बनकर रह जाओ। पर न जाने कहाँ त्रुटि रह गयी जो तुम्हें आज दूसरे पुजारी की आवश्यकता हो गयी। खैर दोष मैं तुम्हें नहीं दूँगी। भाग्य का लिखा मान, संतोष कर लूँगी। चिन्ता न करना, विजया को तुम्हें अर्चना के साथ देखकर प्रसन्नता ही होगी। बस एक ही विश्वास के साथ जा

रही हूँ कि तुम्हें यहाँ नहीं तो वहाँ अवश्य प्राप्त कर लूँगी। शिकायत बस इतनी ही है कि तुम कह कर भी जाते तो मैं दीवार बनकर रास्ता न रोकती। अर्चना ने मुझे नहीं समझा—यही दुःख है। वरना तो तेरा हाथ माँगने पर भी इन्कार न करती। खैर, मन तो करता था—आत्म-हत्या कर लूँ। पर तेरा कर्ज लेकर नहीं जाना चाहती। जो भी मुझ पर उपकार किए—उनके प्रतिदान स्वरूप तेरे अंश को सकुशल जन्म दे तुम्हें सौंप सकी तो उऋण हो जाऊँगी। वरना यह वरदान तो तुम दे ही चुके हो कि मेरा अंत तेरी ही गोद में होगा। यह ले, बड़े बाबू का चेक लौटा रही हूँ जो तेरी कीमत के स्वरूप उन्होंने भेजा था। उन्हें देते हुए कह देना—विजया बड़ी माननी थी! जरा सा अपने पति का मन फिरा देखकर ही वह सदा के लिए उससे मुँह मोड़ लेगी। फिर इन रुपयों की क्या आवश्यकता? बस तेरे बच्चे को तुम्हें सौंपने भर का उत्तरदायित्व और अंतिम बार तेरी चरण-रज को माँग में भरने की लालसा लिए जा रही हूँ। अर्चना को मेरा प्यार कहना—तुम्हें अपनाने की खुशी में इस अभागी के पास क्या है जो उसे उपहार दे। हो सके तो इन अश्रु-बून्दों को मेरी ओर से प्रदान कर देना—बस विदा—अलविदा—अर्चना से शादी मुबारक। मानो तो तुम्हारी ही,

विजया।

पत्र पढ़कर अर्चना का सिर घूमने लगा। आँखों के सामने

अंधकार छा गया। वह मूर्च्छित सी होती बस इतना ही बड़-बड़ाई—"मैंने तुम्हारे घर में आग लगा दी अवि ! मैं बिजली बन टूट पड़ी— मेरा गला घोंट दो—मुझे मार डालो।" उसकी चिल्लाहट सुन हरदेव बाबू दौड़े। बैठक में मुनीमजी और अवि को देख विस्मय से बोले—

"अरे मुनीमजी कब आए ? छोटे सरकार को मना लाये न ? बहूरानी को क्या हुआ ? वो क्यों रो पड़ी ?" बड़े बाबू के इतने सवालों का जवाब अब मुनीमजी दे तो क्या दे ? वे बेजार से अवि के मुख की ओर देखने लगे। हरदेव बाबू को देख अवि के क्रोध की सीमा नहीं रही। उसने चेक काका को देते हुए कहा—"काका, चेक इन्हें लौटाते हुए कह दो— विजया इतनी नीच नहीं जो चाँदी के अम्बार देख गिर पड़े।"

सुनकर बड़े बाबू जल-भुन गए। चेक देखते ही उनकी समझ में सारी परिस्थिति आ गयी। वे बिना कुछ बोले रोष से मुनीम जी की ओर देखते हुए अपराधी से खिसक गये। क्रोध से नथुने फूल रहे थे। झुरियाँ पड़ा चेहरा पाप की कालिमा या सेंध पर पकड़ाए जाने से इतना विकृत हो गया था कि लावण्य खोजने पर भी न मिलता।

अवि ने जाते हुए बड़े बाबू पर अवहेलना से एक नजर डाली और बुद बुदाया—"काका, बाबू उस बहेलिये से कम नहीं जो मासूम चिड़िया का गला घोंट अपनी विजय पर इतराता है।"

सुनकर मुनीम जी ने कहा—"नहीं रे नहीं, होनी सब करा

रही है। तू अर्चना रानी को मना। मैं बड़े बाबू को सम-झाता हूँ।"

और मुनीम जी—सचमुच में उधर ही चल दिए जिधर-हरदेव बाबू गए थे। अवि तनिक देर चुपचाप खड़ा रह अंत में अर्चना के कमरे की ओर बढ़ गया।

पलंग पर अर्चना रानी लाश की तरह बेजान पड़ी थी। तकिए में मुँह दबाये वह इतनी सिसक रही थी कि देखकर बर-बस ही परित्राण के हेतु मानवात्मा विकल हो जाय। अवि का पुरुष भी दया से पिघले बिना न रहा। उसने स्पष्ट अनुभव किया कि इस हत् भागी नारी ने अवि से प्रेम कर दुःख ही दुःख उठाये। इसका क्या दोष था जो भाग्य इतना सता रहा है। उसने वाणी में संवेदना घोलकर अर्चना का माथा सहलाते हुए कहा—"अब इतनी व्याकुल बनी तो अवि का जीना और भी मुश्किल हो जायगा। अभी तो जीवन के अंतिम दाव पर मुझे तुम्हें ही रखना है। देखना है अबकी पासा अनुकूल पड़ता है या नहीं। अर्ची! अवि आज फिर तुम से मांगने आया है। दे दोगी तो जिन्दगी है, वरना मौत का अंधेरा भी इतना कष्ट दायक नहीं होगा, उसे ही अपना लूँगा।"

सुनकर अर्चना अपने मासूम चेहरे को आँसुओं के समुद्र की सतह पर तैराती रूँधे स्वर में बोली—"अवि के लिए अर्चना की कौन सी वस्तु अदेय है। फिर अबतो प्राण लेने पर भी तुम्हारा और विजया का जीवन बन जाय तो मैं अपने को परम्

सौभाग्यवती ही समझूँगी। माँग लो—जो कुछ माँगना है। वरना कहीं जीवन ने मेरे साथ असमय ही छल किया तो यह दान भी तुझे नहीं दे सकूँगी।" कहकर अर्चना अपने आँसू पोंछ अवि के मुख की ओर देखने लगी। वह भाव-विभोर सा वेदना के स्वर में ही बोला—"अर्ची! तुम विवाह करलो। बस यही अब विजया के विश्वास को लौटा सकता है। तुम किसी से भी शादी कर लोगी तो वह शायद कभी भी लौट सकती है। वरना वह नहीं आयेगी री!"

सुनकर अर्चना पर दूसरा वज्रपात हुआ। वह भयानक अशुभ की कल्पना में सिहर कर बोली—"इससे अच्छा तो था तुम अर्चना को फाँसी का हुक्म सुनाते। एक और जीवन नष्ट करने का विचार है क्या? तुम अवि के बिना अर्चना की कल्पना कर लोगे न? पति कहे जाने वाले पुरुष को नारी जिस गौरव और सम्मान से कौमार्य का दान करती है—वह दौलत मेरे पास अक्षुण्ण है क्या?"

"अर्ची! भावना में इतनी न बहो। पुरुष नारी के कौमार्य का नहीं, त्याग से की हुई सेवा का मूल्यांकन करता है, री! और त्याग की भावना तुम में कितनी है, यह अवि को बताना नहीं पड़ेगा।" अर्चना मायूस होती सी बोली—"अवि, तुम नारी के जिस त्याग को जीवन की कसौटी बता रहे हो उसमें अधिकांश तो विवशता की भावना का समावेश रहता है। स्वार्थी पुरुष उसे बलिदान की संज्ञा प्रदान कर मतलब साध

लेता है ! बुरा न मानना—तुम उस स्वार्थान्ध पुरुष से कम नहीं। मेरा सर्वस्व अपहरण कर त्याग का उपदेश देना संगत है क्या ? अर्ची तुम से शिकायत नहीं करेगी। जब विधना ने मुझे तेरे ही उपभोग हेतु निर्मित किया है तो जैसा चाहो अपने निर्माण हेतु कार्य ले लो। तुम्हें अगर अर्चना का यही स्वरूप पसंद है कि वह छलना की प्रतिमूर्त्ति बनकर ही रहे, तो जाओ, पात्र-चयन का भार तुम पर ही रहा। मुझे जिसके साथ भी जीने को कहोगे—उम्र के बाकी दिन गुजार लूँगी। पर इतना जान लो, अर्चना के नारीत्व का लग्न नहीं, उसकी लाश का होगा, जो पत्नीत्व से हीन होगी।" कहकर अर्चना इतनी व्याकुल हो गयी कि मुख पर गम के बादल आ-आकर बरसने की कोशिश कर रहे थे। अवि पर शब्दों का प्रभाव इतना पड़ा कि नग्न सत्य का स्वरूप देख आँखें झिलमिला गयीं। हजार कोशिश करके ही वह अर्चना से नयन मिला सका। उसके मुख पर गम की यों कालिमा देख, अवि परकटे पंछी सा कराह कर बोला—"तुम भावना में बह गयी अर्ची! परिस्थिति का मनन करोगी तो निर्णय ऐसा देना ही होगा कि अर्चना से जब अवि लग्न नहीं कर सकता तो किसी अन्य से तेरा विवाह करना अनिवार्य है न ? हम ने किसी दिन भावना के वशीभूत हो अपराध अवश्य किया था, पर अर्ची! तुम उसे रोग के उपचार की संज्ञा क्यों नहीं दोगी ? फिर यह भी तो संगत नहीं कि पल भर की दुर्वृत्ति को उम्र भर की सद्वृत्ति

संतुलित न कर सके। जितना मेरे जीवन-निर्माण में स्वार्थ सन्निहित है, उससे कुछ ही कम क्या यह नहीं कि मुझे तेरा भी जीवन बनाना है। अवि ने अभी तक तुझे विनाश के गर्त्त में ही ढकेला है। सदा के लिए यही कलंक माथे पर लगा रहने दोगी क्या ? यह मुझे भी विदित है कि अपना कलंक समुद्र का सारा पानी भी नहीं धो सकता, पर पतित को इतना भी अवसर नहीं दोगी क्या कि किसी एक भी सत्कार्य के लिए वह कभी किसी समय तो अभिमान का अनुभव कर सके। तुम लग्न कर ही लो, पात्र मैं अब खोजूँगा ही।"

सुनकर अर्चना प्रसन्न नहीं हुई। फिर भी इतना उसने अवश्य कहा—"चतुर पुरुष ! तुम आज फिर नारी को छल रहे हो। पर कोई बात नहीं। अर्चना को संतोष है कि गर्दन पर छुरी चलाने वाले हाथ वही थे, जिन में कभी जीवन की झाँझर नैया ने अपनी पतवार दी थी। दे... दो .. अवि... तुम्हारी ही वस्तु हूँ। बिल्कुल निःसहाय अबला ! विरोध की भावना से शून्य। जहाँ कहोगे, चली जाऊँगी। जब पत्नीत्व का अभिनय ही करना है तो वास्तविकता पर इतनी बहस क्यों ? पर यह तो कहो—विजया की ओर से निश्चित बैठना ठीक है क्या? क्यों नहीं कलकत्ता चलकर यह जानने की कोशिश की जाय कि वह कहीं वहीं तो नहीं ? संभव है, इसी अभियान में मेरे लग्न हेतु भी पात्र का चयन हो जाय।" "हाँ, अर्ची !"—अवि ने लम्बी साँस भरते हुए कहा—"हम आज ही कलकत्ता

जायँगे। तुम जिस अभिनय की चर्चा छेड़ चुकी हो, वह अचरज वाली नहीं। वस्तुतः जीवन ही अभिनय है। संसार को रंग मंच की ही संज्ञा दी गयी है न? फिर गंभीरता से चिंतन करोगी तो—मेरा विचार उतना बुरा न लगेगा।" अर्चना बीच ही में बोल पड़ी—"मैंने तो अभियोग नहीं लगाया न? तुम सफाई क्यों देने लगे? कहीं जिस मुकदमे की पेशी तुमने की—वह इतना कमजोर तो नहीं कि फैसला सोलह आना विपक्ष में ही होना जँचे?"

नहीं अर्ची! अब सब कुछ नियंता की इच्छा पर छोड़ दो। ऐसा विश्वास होता है कि शायद अपने दिन भी बदलेंगे। तुम आज ही चलने की तैयारी कर लो।" गंभीर होती अर्चना बोली—"जैसी तेरी मर्जी। लेकिन तनिक तू मुझे अकेला छोड़ दे तो इस नयी समस्या पर विचार कर लूँ। वरना फिर कोई ग़लत कदम उठ गया तो एक ओर जीवन बर्बाद हो जायगा।" और इतना सुनने पर अवि लम्बी श्वाँस भर उठ गया। अर्चना न जाने कबतक इस परिस्थिति पर विचार करती रही। पर इतना तो निश्चित ही था कि उसे अवि के साथ आज ही कलकत्ता लौटना होगा—वह बे मन से उसकी तैयारी करने लगी।

१५

तो कलकत्ता पहुँच कर अवि-अर्चना और काका ने विजया को बहुत तलाशा, पर कोई भी उसका ठिकाना न बता सका। हताश-निराश तीनों ने दिन-रात एकान्त में घुट घुटकर आँसू बहाये। पर इससे क्या होता ? अवि के मन में अब विजया की खोज से भी अधिक अर्चना के योग्य, पात्र की तलाश के लिये अतीव बेचैनी थी। एक दिन अचानक ही उसकी डॉक्टर रमण से सड़क पर मुलाकात हो गई। अवि ने नहीं, रमण ने ही अर्चना की चर्चा छेड़ी। पहले तो अवि कुछ मायूससा हुआ, फिर न जाने क्यों, होनी का ऐसा संकेत था क्या जो उसने स्पष्ट कह दिया—"डॉक्टर ! मुझे अर्चना के योग्य, वर ढूँढ़ना है—उसका ब्याह करूँगा।"

सुनकर रमण ने हास्य के लहजे में ही कह दिया—"मित्र

बुरा न मानो तो यह दान, इस अकिंचन की झोली में डाल दो—निहाल हो जाऊँगा—इस विभूति को पाकर" अवि को मन की मुराद मिल गई। रमण को हर्षातिरेक में गले से लगा, वह इतना ही कह सका—"तुमने मरने से मुझे बचा लिया डॉक्टर! लेकिन तुम जानते हो न, कि वह फूल कभी मेरे उपभोग हेतु ही बना था। मुमकिन है मैंने उसकी सुगन्ध का पान भी कर लिया हो। यह सब जानते हुए भी क्या तुम शादी के लिये प्रस्तुत हो?"

"हाँ रे हाँ—हम देवता तो नहीं जो चढ़े फूल को हेय समझ मुँह फेर लें—तुम मनुष्य से इन्सानियत छीन लेना चाहते हो क्या? ऐसा कह दूँ न—कि तुम अर्चना को अपने से विलग देखना नहीं चाहोगे। लो विश्वास कर लो—कि मैं उसे तेरी अमानत समझकर ही जीवन भर पहरेदार रहने का वचन दे रहा हूँ। वस्तुतः अर्चना का किसी भी रूप में सहवास मेरे एकाकी जीवन का संबल होगा। तुम जब भी चाहोगे, मैं उसे लौटा दूँगा।"

"मैं निहाल हो गया डॉक्टर।" और भावावेश में अवि ने रमण के हाथ चूम लिये।

उस दिन के बाद दश दिन भी ठीक से नहीं बीते कि अर्चना और रमण का शुभ लग्न कलकत्ते में ही सम्पन्न हो गया। पता नहीं अर्चना प्रसन्न थी या असीम उदास? पर डोली में बैठते समय तनिक स्मित हास्य का अभिनय सा कर केवल

अवि से वह इतना ही कह सकी थी—"मैं नहीं जानती कि इस नये जीवन के लिये तुम्हें बधाई दूँ या स्वयं को—पर इतना जान रखना—मैंने तेरी इच्छा से ही इस रूप को ग्रहण किया है। किसी दिन आवश्यकता हुई तो सारे बंधन तोड़ फिर चली आऊँगी—और मुझे कोई नहीं रोक सकेगा।"

"भगवान करे वो दिन कभी न आये"—अवि ने लम्बी श्वाँस भर केवल इतना ही कहा था।

थोड़े दिनों के बाद काका दिल्ली लौट गये। बड़े बाबू पुन: काशी में कछार वाली कुटिया में जीवन यापन करने चल दिये। रह गया अभागा अवि ही, अकेला—मायूसी का दर्दनाक मंजर लिये। विजया की खोज में दर् दर् भटकता घर घर अटकता-पर उस निर्मम का कोई चिन्ह भी नहीं मिला।

एकान्त में बैठकर अवि ने बहुत अश्रुपात किये थे, पर इधर में आकर वेदना को जीवन संगिनी समझ उसे पलकों की ओट में रखने का ही अभ्यास वह अधिक किया करता था। कभी कभी वह चाहे अनचाहे अर्चना के यहाँ हो आता था। डॉक्टर और अर्ची, दोनों ही दिल खोलकर उसकी आवभगत करते थे, पर न जाने क्यों वहाँ से लौटकर वह सदा ही अधिक उदास हो जाता। फिर तो अर्चना के द्वारे न जाने की वह शपत सा खा लेता, पर मन जो था—सो यदा कदा उसे जबरन अर्चना के पास खींचकर ले ही जाता था। इसमें क्या लोभ था, यह तो ठीक से ज्ञात नहीं, लेकिन अवि के जाने पर यही

दृष्टिगत होता था, जैसे अर्चना उसको देखकर अन्दर ही अन्दर धधक रही है। उसका अंग प्रत्यंग जैसे सड़ रहा है—सो अवि यह नहीं चाहता था कि इन दोनों के जीवन में कोई व्यति-क्रम या व्यवधान उपस्थित हो। इसलिये इन दिनों वह अर्चना से भी कतरा कर रहने लगा।

× × × ×

इधर हतभागी विजया को भी चैन थोड़े ही था। कलकत्ते से जाते समय सौभाग्य से गाड़ी में ही देहात के मंदिर की पुजारिन मीरा—६५ वर्ष की बुढ़िया—से जान पहचान हो गई थी। विजया उसीके साथ दिल्ली के निकट रामपुर में चली आई थी। बुढ़िया ने राजू और विजया को बहुत सुख से रखने का यत्न किया, पर वह अभागी विजया के दुःखी मन की दवा कैसे कर पाती। बुढ़िया तो केवल इतना ही जानती थी न कि यह अबला किसी अनजान राम की परित्यक्ता सीता है जो पति के तिरस्कार या आदेश से वनवास भोग रही है। निश्चित अवधि पूरी होने पर एक दिन राम आकर अवश्य इसे ले जायगा। इससे अधिक माननी विजया ने कभी हवा से भी थोड़े ही कहा था—जो बुढ़िया जान पाती।

लेकिन इस मीरा की छाया भी अभागी विजया पर अधिक दिन न रह सकी। चार मास पूरे भी नहीं हुए कि दो दिन के ताप में ही बुढ़िया टन् बोल गई और क्रिया-कर्म करने के पूर्व ही विजया ने प्रसव वेदना से अत्यन्त पीड़ित हो पैदल ही

अपने एकमात्र सहारा—राजू के साथ शहर की सड़क नाप ली।

गिरती पड़ती अधमरी अवस्था में वह दिल्ली की मुख्य सड़क पर पहुँच कर बेहोश हो गिर पड़ी। राजू कोहराम करने लगा। शायद मां की मौत का नजारा उसकी आँखों के सामने नाच उठा। आते-जाते राहगीर इकट्ठे हो गये और किसी भले की सलाह पर विजया जच्चा-बच्चा अस्पताल में भर्ती करा दी गई। दो दिन तक अनवरत संघर्ष करने पर शल्य-शास्त्र के विशेषज्ञों ने पेट चीरकर अवि के अंश को धरा पर उद्भूत किया और होश आने पर विजया के म्रियमाण अधरों पर हास्य की धूमिल रेखा खिंच गई। ओपरेशन तो सफल हो गया, पर अब विजया जीना थोड़े ही चाहती थी जो उसकी अवस्था सुधरे। पति की विभूति को जन्म देने भर का उत्तरदायित्व लिये ही तो वह अभी तक जी रही थी। जब यह कार्य सम्पन्न हो गया तो अब इस दुनियाँ में रहने का क्या प्रयोजन ?

तो प्रसव के सातवें दिन अचानक उसकी अवस्था अत्यन्त संगीन हो गई। बड़ी मुश्किल से डॉक्टर उससे अवि का पता जान, कलकत्ता तार कर सका। अभागा अवि तीसरे ही दिन काका को लिये तूफ़ान की तरह दौड़ा आया। मृत्यु-शैया पर अपनी सतवन्ती-सीता को देख, वह राम से भी अधिक अरण्य-रोदन कर बिलख पड़ा। डॉक्टर और काका ने लाख धीरज बँधाई, पर क्या होता ? बेहोश विजया को गोद में छिपा वह मौत से जूझ लेना चाहता था, लेकिन डॉक्टरों ने उसे रोक

लिया 'कोरोमाइन' की सूई देने से तनिक जागृति के लक्षण विजया में प्रगट हुए। अवि को संसार का ऐश्वर्य मिल गया। विजया ने आँखें जो टिमटिमाईं तो अवि कोहराम कर लिपट गया—"विजया...मेरी विजया" काका और राजू भी रो पड़े। पर मानिनी विजया तनिक सम्हल कर इतना ही बोली—"जीवन भर तो रुलाते ही रहे हो। अब अंतिम समय भी दिल ही दुखाओगे ?" अवि वेदना के उफान में ही बोला—"तुम मुझे छोड़कर क्यों चली आईं? तुमने मुझे गलत क्यों समझा ? मैंने अर्चना को पति के साथ ही बुलाया है-विज्जी वो मेरी गवाही-"

"अर्चना को किससे ब्याह दिया ? एक जीवन और बर-बाद किया है क्या ?—" विजया बोली।

"तो मैं क्या करता ? यही तो तुम्हारे विश्वास को लौटाने का रास्ता था—" और अवि पुनः रो पड़ा। विजया को भी रुलाई आ गई। वह कराहकर इतना ही बोली- "तुम जिद्दी हो—सदा मनचाही करते हो—और मैं क्या कहूँ ? ज्यादा समय नहीं—बाबू और अर्ची से कह देना—मैंने सबको क्षमा कर दिया...लाओ जरा तेरे अंश को अंतिम बार चूम लूँ—"

"विजया ! यह क्या कह रही हो ? मैं तुम्हें नहीं मरने दूँगा—नहीं मरने दूँगा—" और अवि पागल सा विजया से लिपट गया।

डॉक्टर के संकेत पर नर्स ने बच्चे को विजया के अधरों के निकट किया। अंतिम बार उसे जी भर चूमकर विजया

बोली—"ले यह तेरा ही अंश है—अब तेरा कोई कर्ज मुझ पर नहीं रहा, राजू को सम्हालना—काश! काका के ऐसा बाप और तुझ सा पति फिर मिलता—लो अंतिम बार चरण छू लूँ—"

और जैसे ही विजया ने अवि के पाँव के निकट हाथ बढ़ाया-श्वाँस का पंछी फुर्र से उड़ गया। अवि-काका-राजू—सभी मृत-देह पर पछाड़ खाकर लुढ़क पड़े। सारा अस्पताल कोहराम कर उठा। अवि की विजया—सीता की तरह वसुन्धरा की विभूति ही थी—जो राम के अंतिम दर्शन कर फिर वसुन्धरा में ही समा गई।

× × × ×

अपनी प्राण-वल्लभा को आग की धू धू लपटों में भस्मसात कर साँझ में अवि जब घर लौटा था—उसका चेहरा पूर्ण गम्भीर था। काका ने हजार प्रयत्न किये थे कि अवि जी भर कर रो ले, पर वह किवाड़ बंद कर जो कमरे में घुसा, सो फिर मुनीम काका के सामने भी नहीं आया। काका ने भी उसे विशेष तंग नहीं किया।

सुबह जब राजू का हाथ पकड़े काका अवि के कमरे में आये तो विस्मय से देखा—बिस्तर खाली है। केवल पलंग पर मोड़ा हुआ एक कागज पड़ा है, जिसे काका ने कौतूहल से उठाकर पढ़ा—

"काका! विजया के बिना तेरी दुनियाँ मुझे नहीं भायेगी—इसलिये जा रहा हूँ—कहाँ?—यह तो मैं भी नहीं जानता।

हाँ, तुम्हीं पर यह भार दिये जा रहा हूँ कि– बड़े बाबू को बुला-कर विजया का श्राद्ध कर्म करा देना और उनसे कहना—उस जानेवाली का उन पर बहुत कर्ज है। इसलिये मेरी सारी जायदाद राजू के नाम कर दें और जबतक जीयें उसकी पालना करें। और सुनो—

अर्चना भी आयेगी। उस अभागी ने अवि को प्राप्त करने की बहुत कोशिश की। उससे कहना—अवि न मिला तो उसके अंश से ही संतोष कर ले। मेरे बच्चे के पालने का उत्तर-दायित्व उसी पर है। अगर जिन्दा रहा और कभी तेरी दुनियाँ की ओर लौटने की इच्छा हुई तो जान रखना—मैं विजया के अंश को अर्चना से ही माँगूगा—यह उसे स्पष्ट बता देना। हाँ मनमाने तो इतना विश्वास कर लेना—कि एक बार और, मैं तुम सबसे अवश्य मिलूँगा। बस विदा—"

और काका पत्र पढ़ कर वहीं माथा पकड़ कर बैठ गये। राजू सुबक सुबक कर विलाप करने लगा। नवजात शिशु को भी विधाता ने इस बरबादी का संकेत कर दिया था क्या, जो वह भी इसी समय पालने में रो पड़ा। काका अपनी वेदना को भूल उसी की ओर लपके और उसे छाती से लगा बच्चों की तरह बिलख पड़े। जमीं और आकाश सभी कोहराम करने लगे। दुर्बादल पर पड़े जल-कण, पता नहीं प्रकृति के आँसू थे या ओस की बूँदें।

— बस —

और ये मेरे आँसू

दो वर्ष से वेदना की टीस दबाये जीने का यत्न करता रहा, लेकिन किसी भी रात पूर्णतः चैन से सो सका हो तो शपथ ले लूँ। न जाने किस मनहूस घड़ी में मेरा परिचय इन पात्रों से हुआ जो अकसराँह सोते समय मुझे झकझोरते और फिर तो रात्रि के अंतिम प्रहर में ही बड़े यत्न के बाद सो पाता।

११ नवम्बर १९५५ की रात बड़ी भयावनी थी। जब सारा संसार निद्रा-निमग्न था, मैं विजया, अवि और अर्चना से संघर्ष कर रहा था। हार मेरी ही हुई और विवश हो मैं ने लेखनी पकड़ी। फिर तो यह सिलसिला प्रत्येक रात के ग्यारह बजे आरम्भ होता और दुर्वादल पर बिखरी ओसकी बूँदों का हृक्पात करने से पूर्व ही थकान से चूर हो मैं बेहोश हो जाता। एक मास सोलह दिन तक जवानी का खून पिला इन पात्रों से सत्तरहवें दिन, जब कि रश्मि-रथि ओस की बूँदों का अस्तित्व

विलीन कर रहे थे, मैंने निजात पाने की ठान ली। लेखनी तो छोड़ दी, पर मनको अब भी शान्ति कहाँ? रह रह कर विजया की याद, अवि का हवाला और अर्चना का, अब का परिचय जानने को व्यग्र हो जाता। अब क्या करूँ? अवि ढूँढ़े से मिलेगा नहीं, बिजया को उसी दुनियाँ में देख सकूँगा-और अर्चना से मैं पता-ठिकाना जान कर भी मिलना नहीं चाहता—क्यों कि डरता हूँ, कहीं वह मेरी टीस को और भी न बढ़ादे। फिर भी मन नहीं माना। एक दिन कलकत्ता पहुँच ही गया, बड़े संकोच से अर्चना के समीप गया। देखा-कृश तन-मृणाल अब भी कान्ति से हीन नहीं। अवि के अंश को गोद में भरे वह दिलके तूफ़ान को पुत्र-वात्सल्य की चादर में लपेट लेना चाहती है।

डॉक्टर रमण दिखाई नहीं पड़े। अतः नमस्ते कर बिना दुविधा के अर्चना के निकट जमीं पर ही बैठ गया। उसकी अवस्था पर मुझे रोना आ रहा था। वेदना के उभाड़ को दबा केवल इतना ही बोला—

"अर्ची रानी! डॉक्टर नहीं है क्या? उनसे काम था?"

"वो लम्बे अर्से के लिये विदेश गये हैं। आप कब, आये?"—वह बोली।

"आप नहीं गईं क्या?" मैं ने पूछा।

"नहीं... अवि लौट कर आयेगा न? मुझे न पाकर वह बौरा जायगा।" और अर्चना रो पड़ी। मैं सहम गया।—

"एक बात कहूँ रानी"—मैं वेदना विदग्ध हो बोला। वह भरी आँखों से एक बार मेरी ओर देख भर सकी। मैंने तनिक रुक कर कहा—"एक विवाहिता नारी की पराये पुरुष में इतनी अभिरुचि संगत है क्या ?"

"संगत-असंगत की विवेचना नहीं करूँगी"—वह बोली।—"और तुम लोग अधिक तंग करोगे तो अपने अवि की दीवानी बन, मतवाली मीरा की तरह घर घर अलख जगाती फिरूँगी...।"

अर्चना ने उपर्युक्त वाक्य किस ध्येय से कहे मैं आज तक न जान सका। पर उसके मुख पर दृढ़ निश्चय का भाव मुझे लक्षित हुआ था, ऐसा स्मरण आता है। उस दिन मैं और दो चार बातें कर लौट आया था। लेकिन अब समझ रहा हूँ—मेरा वहाँ जाना अच्छा नहीं हुआ। वरना तो मेरे जीवन में और भी दर्द क्यों कर घुलता ? भगवान जाने-अवि कभी लौटेगा भी-जो अर्चना के साथ साथ मेरी पीड़ा का भार भी कम हो ? नहीं तो, न जाने और कितनी रातों की नींद हराम होगी और मैं यों ही रोता रह जाऊँगा—उफ कितना साम्य है इन दोनों में—ये ओस की बूँदें—और ये मेरे आँसू—

प्रह्लाद
२५-५-५६